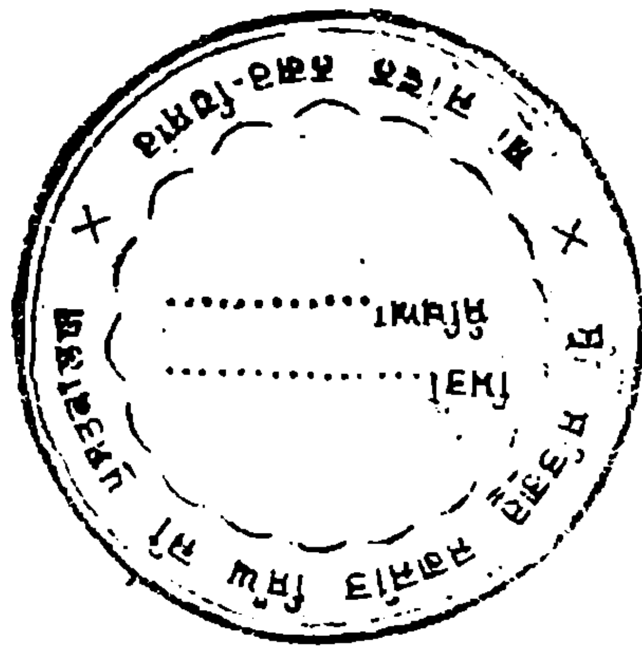
गोविन्द रामायण




ਪੁਸਤਕ ਨੰ.
ਅਲਮਾਰੀ
ਸ੍ਰੀ ਭੈਣੀ ਸਾਹਿਬ

१ ॐ श्री वाहि गुरु जी की फ़तह

समर्पण

जिन्होंने

राष्ट्रिय एकता के विचार से

हिन्दू-सिक्खों की कड़ी मिलान का

सदा प्रयत्न किया और

जिन्होंने भारत, भारती तथा भारतीयता के लिए

तन, मन और धन से नये मार्गों का

विकास किया, उन

श्री जुगुलकिशोर जी बिड़ला

के कर-कमलों में

भारतीय एकता की सूचक यह कड़ी

सादर समर्पित है।

सन्त इन्द्रसिंह चक्रवर्त्ती



१ ॐ श्री वाहि गुरुजी की फतह

वन्दना

जिनके

चरणों में बैठकर मैंने कुछ सीखा है

और जिनकी

करुणापूर्ण छाया की शीतलता से मुझे

सदा शान्ति मिली है, उन

श्री १०८ सद्गुरु प्रतापसिंह जी महाराज

के प्रति

कोटिशः वन्दना।

सन्त इन्द्रसिंह चक्रवर्त्ती

सद्गुरुप्रसाद

॥ १ ॐ श्री वाहि गुरु जी की फतह ॥

प्राक्कथन

साहित्य समाज का प्रतिबिम्ब होता है। समय के अनुसार वह अपने रूप बदलता रहता है, इसका प्रमाण इतिहास स्वयं है। तिस पर भिन्न-भिन्न समयों की परिस्थितियाँ कुछ ऐसी भावनाओं को जन्म देती हैं, जिनकी प्रमुखता ही उस काल के साहित्य-निर्माण में सहायक होती है।

बौद्ध धर्म में विकृति आई, तो हिन्दू धर्म के सहयोग से 'सिद्ध-साहित्य' ने जन्म लिया। सिद्धों के तान्त्रिक वातावरण ने जनता को जब उलझाने का प्रयत्न किया, तो 'नाथ-योगी-साहित्य' की सृष्टि हुई। उधर हिन्दू धर्म की अनेक कुरीतियाँ (जैसे—हिंसा, रक्तपात आदि) दूर करने के लिए जैन-साहित्य की सृष्टि हुई। क्रम इसी तरह चलता रहा। फिर जब यहाँ मुसलमानों का आगमन हुआ और उन्होंने राज्य-निर्माण की भावना से जनता को दुःख देना आरम्भ किया, तब कबीर, नानक, दादू आदि के द्वारा ज्ञानमार्गी साहित्य का सृजन हुआ। कबीर का अक्खड़पन जनता नहीं सह सकी। कबीर उसकी नस को पहचाननेवाले थे। जायसी ने प्रेम की अभिव्यंजना के रूप में सूफी साहित्य का मार्ग दिखाया। इस तरह कुछ मनोमालिन्य दूर हुए, दोनों जातियाँ एक-दूसरी के गले मिलीं, और मुसलमान शासकों के मन में कुछ उदारता का समावेश हुआ। ऐसा ही समय सदा साहित्य के लिए अच्छा होता है; फलतः भक्ति-साहित्य का विकास हुआ। आगे चलकर हम देखते हैं कि इस शान्त वातावरण ने विलासिता को भी जन्म दिया। परिणाम स्वरूप ऐसे साहित्य की सृष्टि हुई जिसे हम रीति-साहित्य कहते हैं। शायद समय की परिस्थितियों का चक्कर

अभी और चलना चाहता था। उदार शासक समाप्त हुए। शान्ति ने दूसरी ओर करवट ली, जिसे क्रान्ति कहते हैं। औरंगजेब का शासन-काल आया और चारों ओर का वातावरण हिन्दुओं के लिए भयंकर रूप धारण करके आगे बढ़ा। उसकी भयंकरता समाप्त करने के लिए एक ओर शिवाजी और छत्रसाल जैसे वीर उत्पन्न हुए तो दूसरी ओर श्री गुरु गोविन्दसिंह जी जैसे महापुरुष हुए, जिन्होंने अपनी वाणी द्वारा जनता में उत्साह और वीरता की भावनाएँ भरने के साथ-साथ स्वयं भी रण-क्षेत्र में अवततिरित होकर उस भयंकरता का सामना किया।

यह तो एक तरह की उत्थानिका है जो समय-समय पर होनेवाले साहित्यिक परिवर्त्तनों और परिस्थितियों का चित्र उपस्थित करती है। यह सत्य है कि हम किसी देश के साहित्य का अवलोकन कर उस देश की स्थिति और परिस्थितियों का अनुमान कर सकते हैं। हमारे हिन्दी-साहित्य के इतिहास में वीर-काल अपने दो रूप लेकर आता है। परन्तु पहले वीर-काल की परिस्थितियाँ कुछ और हैं, दूसरे वीर-काल की परिस्थितियाँ कुछ और। इस तरह हम उसे दो रूपों में बाँट सकते हैं। एक को हम चापलूसी और प्रशस्ति-शील वीर-काल कह सकते हैं और दूसरे को जातीय वीर-काल। क्योंकि वस्तुतः पिछले काल में हमें शुद्ध और सत्य रूप में अपनी उमड़ती हुई भावनाओं का जोश और निजत्व की रक्षा की भावनाएँ दिखाई देती हैं। श्री गुरु गोविन्दसिंह जी महाराज को हम दूसरे काल में एक चमकता हुआ अलौकिक प्रतिभावान् नक्षत्र पाते हैं जिसका प्रकाश अभी तक मन्द नहीं हुआ है और न जल्दी होगा ही, बल्कि इससे नित्य नूतन किरणों का प्रकाश होता जायगा।

साहित्य और व्यक्तित्व की बात छोड़कर पहले हमें उन परिस्थितियों का विचार करना होगा जिन्होंने इस महान् आत्मा को जन्म दिया।

यों तो विदेशी आक्रमणकारी सदा अपने अशुभ पाँव लेकर ही आते हैं, परन्तु वे अपने मार्ग में स्वयं ही इतने कंटक बिखेर बैठते हैं कि उनका आगे बढ़ना कठिन हो जाता है। तिस पर भारतीय वीरों ने तो उनके दाँत इतने

खट्टे कर दिये कि वे यहाँ का सदाचार, सभ्यता, धर्म आदि हड़प जाने में असमर्थ होकर पीछे लौट गये; या फिर किसी जन्म में आनेवाले नये दाँतों की आशा में यहीं के यहाँ रह गये। पर हाँ एक दल ऐसा भी आया जिसे केवल भोजन चाहिए था, भले ही दाँत टूट क्यों न जायँ। वह दल मुसलमानों का था। उसे चाहिए था केवल धन, दौलत, हीरा और सोना। कभी वह गजनवी के रूप में आया, कभी गोरी के रूप में। किसी की तो इतनी भूख थी कि वह इस विचार से यहीं रह गया कि कहीं फिर आने का कष्ट न करना पड़े। पहले तो वह दल दूसरों को भोजन की ओर देखने भी नहीं देना चाहता था; पर पीछे कुछ उदार-मना बनकर अकबर, जहाँगीर और शाहजहाँ के रूप में सामने आया। परन्तु कितनी देर! रुकी हुई भूख फिर जागी जिसने औरंगजेब का रूप धारण किया। उसने अपने पिता को कैद किया। भाइयों को मारा, भगाया और मूँछों पर ताव देने की तैयारी की। पर उसने देखा कि अभी कुछ कसर है। यहाँ के रखवाले हिन्दू कभी-कभी ललकार देते हैं जिससे सारा मजा किरकिरा हो जाता है। या तो इन्हें भी मुसलमान बना लिया जाय या रास्ते से हटा दिया जाय। यही एक विचार हर ओर से मूर्त्त रूप लेकर उसकी आँखों के सामने घूमने लगा और इसमें उसकी क्रूर और स्वार्थ-पूर्ण मनोवृत्तियाँ नाचती हुई दिखाई देने लगीं। ऐसी ही मनोवृत्तियों ने उसे प्रेरणा दी कि ऐसे नेताओं को, जो उस समय के समाज का नेतृत्व सँभाले हुए थे, जिनके एक इशारे पर बहुत-कुछ हो सकता था, पकड़कर बलात् या शान्ति से, उत्कोच देकर या जागीरें देकर, धर्म के डर से या शारीरिक कष्ट देकर मुसलमान बनने के लिए बाध्य किया जाय। इसी प्रयत्न में उसने जनेऊ तुड़वाये, मन्दिर गिरवाये, और अनेक ऐसे कृत्य किये जो उसकी मनोभावनाओं के साकार रूप थे। परन्तु यह सब-कुछ एक नाटक-सा होता था। वह जनेऊ तुड़वाकर भी लोगों का मन यवन नहीं बना सकता था। जनता भी ऐसे लोगों को यवन मानने को तैयार नहीं होती थी। इसी कारण यवन-शक्ति ने भयंकर रूप धारण किया और गाय के चमड़े में मढ़कर, तवों पर जलाकर, सिर काट

कर लोगों को ऐसा मानने के लिए बाध्य करना चाहा। उद्देश्य यही था कि जनता मन से नहीं तो तन से ही उन्हें मुसलमान माने। इसके लिए बड़े-बड़े नेताओं का बलिदान माँगा गया। तब किसी ने धर्म के नाम पर, किसी ने जाति-रक्षा के नाम पर और किसी ने परोपकार के लिए प्राणों का मोह छोड़ कर उस भयंकर आग में कूदकर बलिदान का आदर्श सब के सामने रखा। उनमें से एक कर्म-योगी थे श्री गुरु तेगबहादुर, जिन्होंने काश्मीर के पंडितों के बचाव के लिए किसी महापुरुष की आहुति माँगी। उनके पुत्र श्री गुरु गोविन्दसिंह ने उस आहुति के लिए अपने पिता को ही योग्य ठहराया। बस पुत्र का कहना मानकर देश और जाति की रक्षा के लिए उस बढ़ती हुई यवनों की प्यास बुझाने श्री गुरु तेगबहादुर चल पड़े। वहाँ उनसे क्या कहा गया और उन्होंने क्या किया, इस विषय में इतिहास स्वयं साक्षी है।

इतना लिखने का अभिप्राय यही है कि उस दानव-शक्ति के प्रतिकार के लिए श्री गुरु गोविन्दसिंह जी बचपन से ही अपनी दिव्य-शक्ति जगा चुके थे। इस कार्य के लिए उन्हें न पिता के प्यार की चिन्ता थी, और न किसी तरह के कार्य-साधन की अभिलाषा। यह एक मनोवैज्ञानिक तथ्य है कि बचपन से ही जो भाव मन में जम जाया करते हैं, वही बड़े होने पर परिपक्व रूप में सामने आते हैं। श्री गुरु गोविन्दसिंह जी महाराज के भी ये विचार बड़े होने पर फूलों से फलों के रूप में सामने आये।

उनका जीवन

जिस महान् आत्मा के विषय में ये बातें लिखी जा रही हैं, उनके सांसारिक जीवन का थोड़ा-सा इतिवृत्त दे देना भी आवश्यक है।

गुरु महाराज का जन्म १७ पौष संवत् १७२३ विक्रमी को हुआ। माता का नाम गुजरी था और पिता का श्री तेगबहादुर सिंह जी। प्रचलित परम्परा के अनुसार उनके जन्म के समय ज्योतिषियों से परामर्श हुआ। उन्होंने एक स्वर से कहा कि श्री गुरु महाराज के सिर पर छत्र रहेगा और लोग इनके दर्शन से

पवित्र हो जाएँगे ❀ । बचपन से ही ये निडर थे और इसी लिए शस्त्रास्त्रों की शिक्षा में दक्ष हो गये । पठन-पाठन में भी अच्छी दक्षता प्राप्त की । सात वर्ष की अवस्था में पहली बार आनन्दपुर आये । वहाँ आपका विवाह लाहौर के हरजीमल की पुत्री श्री जीतो से सम्पन्न हुआ । उन दिनों यवनों के अत्याचार के कारण आठ-दस वर्ष की अवस्था में ही कन्याओं का विवाह कर दिया जाता था, जिसमें उसकी रक्षा का भार कई जगह बँट जाय । दो साल किसी तरह खेल-कूद में बीते । नवें साल एक ऐसी घटना घटी जिसके कारण उनकी जीवन-धारा में एक ज्वार उठ खड़ा हुआ । कश्मीरी पण्डितों के एक मण्डल ने श्री गुरु तेगबहादुर जी से अपने धर्म की रक्षा की प्रार्थना की । वे चिन्तित भाव से युक्ति सोचने लगे । किसी महापुरुष का बलिदान ही उस विकट समस्या का समाधान सोचा गया । पुत्र ने कहा—'आपसे बढ़कर महापुरुष और है कौन' ! पिता को इसमें उत्साह की लहर दिखाई दी । वे भी चाहते यही थे । अपने होनहार पुत्र को धर्म-सम्बन्धी शिक्षा देकर वे स्वयं दिल्ली चले । वहाँ उन्हें प्राण-दण्ड दिया गया । उनकी लाश तक पहरे में रखी गई थी । पर श्री गुरु महाराज गोविन्दसिंह जी की आज्ञा पाकर दो रँगरेजों ने अपना बलिदान देकर भी उनका सीस लाने की तैयारी की । एक को अपना बलिदान देना पड़ा, पर दूसरे ने उनका सीस लाकर महाराज के आगे रखा ।

बस यहीं से श्री गुरु गोविन्दसिंह जी की वीर-गाथा आरम्भ होती है । गुरुजी ने अपने सभी शिष्यों को लिख भेजा कि जो हमारे दरबार में आवे, वह या तो घोड़ा लावे या उत्तम शस्त्र । ये भावी युद्ध की तैयारी के साधन थे । इस तरह अस्त्र-शस्त्र इकट्ठे होने पर अपने देश, जाति और धर्म के रक्षार्थ बल बढ़ाना आरम्भ किया । इससे आज के हिमाचल प्रदेश के अन्तर्गत विलासपुर (जिसे कहलूर कहते थे) के राजा भीमचन्द जैसे कई पहाड़ी राजाओं को शंका हुई । पर युद्ध में हारकर वे चुप हो गये । खालसा पन्थ के सृजन के

❀ गुरविलास, दशम पातसाही, श्लोक ५१—६१ ।

लिए पाँच प्यारों को अमृत छकाकर उस हतोत्साह हिन्दू जाति में जीवन फूँका गया। इसके बाद उन्हें कई युद्ध करने पड़े। उन्होंने कभी चैन से बैठना पसन्द नहीं किया। इसका जो परिणाम हुआ, उसे इतिहास अपने लाल पन्नों में छिपाये हुए है। उनके पुत्र दीवार में चुने गये। चमकौर युद्ध में दूसरे दोनों पुत्र भी काम आये। उनकी माता श्री गुजरीजी भी शहीद हुईं। इस तरह अनेक शारीरिक और मानसिक कष्टों से संघर्ष करते हुए गुरुदेव कार्त्तिक शुक्ला पंचमी, संवत् १७६५ को नादेड़ में विचित्र ढंग से अन्तर्धान हुए।

यह इनके जीवन की एक झलक भर है। पर इससे ज्ञात होता है कि चोट खाये हुए सिंह की तरह बचपन से ही इनके हृदय में उस सांप्रदायिकता के विरुद्ध भीषण रोष था, जो सारे भारत को हड़पने के लिए मुँह फैलाये हुए थी। उसे रोकने के लिए उन्हें बहुत अधिक त्याग और बलिदान करना पड़ा; फिर भी वे कभी पीछे नहीं हटे। वे अपने इस कथन पर दृढ़ रहे—

सकल जगत मैं खालसा पंथ गाजै।
जगे धर्म हिन्दू सकल भंड भाजै * ॥

गुरु महाराज की अनुपम विशेषताओं के कारण लोगों ने उन्हें ईश्वर का रूप मानना आरम्भ किया। इसके प्रतिषेध में उन्होंने उन्हें सावधान करते हुए कहा—

जे मुझको परमेसर उचरहिं।
ते नर घोर नरक मँह परहिं॥
मैं हौं परम पुरुष को दासा।
देखन आयौ जगत तमासा॥

इन शब्दों में जो महत्ता छिपी है, उसे त्याग और तपस्या की जानकारी रखनेवाले अच्छी तरह समझते हैं।

उनके जीवन सम्बन्धी कुछ मुख्य बातें ऊपर लिखने का तात्पर्य उनकी महत्ता

---

* पाठान्तर—तुरुक दुंद भाजै।

और धर्म-परायणता का महत्त्व दर्शाना है। परन्तु हमारा असली उद्देश्य तो उनके साहित्यिक जीवन से सम्बद्ध है। अब अपने विषय की ओर आना हमारा पहला काम हो जाता है।

साहित्यिक जीवन

साहित्यिक जीवन के आरम्भ में सर्व-प्रथम किसी भाषा का प्रेम होना आवश्यक है। यह कहना उचित होगा कि श्री गुरु महाराज को सब भाषाओं के आदि स्रोत संस्कृत से बहुत अधिक स्नेह था। इसका प्रमाण एक घटना से मिलता है। श्री गुरु महाराज के हृदय में जहाँ अपने शिष्यों को शूर-वीर बनाने की उत्कण्ठा थी, वहाँ उन्हें उच्च कोटि के विद्वान् बनाने की आकांक्षा भी हिलोरें लेती रहती थी। इसी प्रेरणा के वश होकर उन्होंने रघुनाथ नामक एक ब्राह्मण पंडित को अपने प्रिय शिष्यों के पाठन हेतु नियुक्त करना चाहा। यह ब्राह्मण गुरु महाराज को उपनिषद् सुनाया करता था। इसने अहंभाव के कारण शिष्यों को संस्कृत पढ़ाने से इन्कार कर दिया। गुरु महाराज से साक्षात्कार होने पर उसने कहा कि आपके शिष्य अधिकतर छोटी जाति के हैं और शास्त्रों में शूद्रों के लिए विद्या का निषेध है। यहीं हम उनका संस्कृत प्रेम साकार रूप में देखते हैं। श्री गुरु महाराज ने उसे मीठी भर्त्सना से युक्त शब्दों में कहा कि क्या संस्कृत केवल ब्राह्मणों की दासी है? क्या दूसरों का उस पर कोई अधिकार नहीं? याद रखें, जिन्हें आप इतना छोटा समझते हैं, वही अब महान् पंडित बनकर चमकेंगे और आपका यह दम्भ टूटेगा। उसके टूटते हुए सिंहासन के शब्दों से आपके कान बहरे हो जायँगे।

अपनी प्रतिज्ञा निभाने के लिए उन्होंने अपने पाँच शिष्य (श्री रामसिंह, श्री कर्मसिंह, श्री गंडासिंह, श्री वीरसिंह और श्री शोभासिंह) काशी भेजे। आज-कल जहाँ चैतन्य मठ में निर्मले साधुओं का स्थान है, वहीं रहकर उन्होंने संस्कृत अध्ययन किया और महान् विद्वान बनकर श्री गुरुदेव का कार्य संपादन करने में सहयोग दिया। फिर तो परम्परा चल पड़ी और श्री गुरु महाराज के

शिष्य संस्कृतज्ञ होने लगे। इन्हीं पावन शिष्यों के सहयोग से उन्होंने कई संस्कृत ग्रन्थों का भावानुवाद भी करवाया था।

श्रीगुरु महाराज के मन में एक ही उत्कण्ठा बनी रहती थी। वह यह कि हमारे शिष्य शस्त्र और शास्त्र का मर्म अच्छी तरह समझ सकें। उनकी यह उत्कण्ठा उनके जीवन-काल में ही पूरी हुई और साकार रूप में सामने आई।

इस घटना से उनका भाषा-प्रेम स्पष्ट हो जाता है। वे केवल संस्कृत के ही प्रेमी तथा विद्वान नहीं थे, बल्कि फारसी, अरबी, ब्रज और दूसरी भाषाओं का भी उन्हें पूर्ण ज्ञान था। औरंगजेब से उनका जो पत्र-व्यवहार हुआ था, उससे यह पूरी तरह स्पष्ट हो जाता है। उनका 'जफर नामा' इसकी प्रत्यक्ष साक्षी दे रहा है। अपनी रचनाओं में उन्होंने जहाँ 'चौबोला' छन्द का प्रयोग किया है, वहाँ अक्सर चार भाषाओं के शब्दों को इस उत्तमता से रखा है कि वे उस छन्द में ठीक समा गये हैं। यह विशेषता हम इने-गिने कवियों में ही पाते हैं। दो भाषाओं में छन्द-रचना करनेवाले कवि तो अनेक मिलते हैं, पर चार-चार भाषाओं के शब्दों को छन्दोबद्ध कर देना बहुत कठिन और विशेष आचार्यत्व का ही काम है। अभी पिछले दिनों जब पटियाले में अखिल भारतीय कवि-सम्मेलन हुआ तो एक व्यक्ति ने काश्मीर के एक कवि का परिचय देते हुए मुझ से कहा था—"आनन्द जी! आज आप को एक ही घूँट में कई-कई रस पिलवावेंगे।" सम्मेलन के समय उस व्यक्ति ने तीन भाषाओं का सम्मिश्रण करके दो एक पद्य सुनाये जो साधारण जनता के लिए आश्चर्य की वस्तु थे। पर जब मैंने उन्हें श्रीगुरु महाराज के निम्न-लिखित छन्द सुनाये, तो वे आश्चर्य की अन्तिम सीढ़ी पर जा पहुँचे—

रँगे रंग राते मयंमत्त माते मकाबूल गूलाब के फूल सोहैं।
नरागीस ने देख कै नाक ऐंठा मृगीराज के देखतैं मान मोहैं॥
शबो रोज शाराद ने शोर लाया प्रजा आम जाहान के पेखवारे।
भँवें तान कामान की भाँति प्यारी निकामान ही नैन के बाण मारे॥

(ब्रज भाषा, फारसी और खड़ी बोली का मिश्रण)

धाए महावीर साधे सितं तीर काछे रणं चीर वाना सुहाए।
रवाँ कर्द अरकब यलो तेज इम शव चुँ तुंद अजदहो, उम्मिआ जंगाहे॥
भिड़े आए ईहाँ वुले वैन कीहाँ करें वाड़ जीहाँ भिड़े भेड़ भज्जे।
पियो पोसताने भछो रावड़ी ने कहा छै अनीरे धनी ने निहारे॥

(व्रज, अरबी, पंजाबी और राजस्थानी का मिश्रण)

गाजे महाशूर घुम्मी रणं हूर भरमी नमं पूर वेशं अनूपं।
वले वह्ल साईं जिवीं जुग्गाँ ताईं तैंडे घोली जाईं अलावींत ऐसे॥
लगो लार थाने वरो राज माने कहो और काने हठी छाँड़ थे से।
वरो आन मोकों भजौं आन तोकों चलो देव-लोकों तजो वेगि लंका॥

(व्रज भाषा, पंजाबी, राजस्थानी और खड़ी-बोली का मिश्रण)

इन्हीं तीन छन्दों से पता चल जायगा कि गुरु महाराज की रचना-शक्ति कितनी प्रवल थी।

बात हो रही थी उनके भाषा-प्रेम की। इसी भाषा-प्रेम का एक जीवित प्रमाण यह है कि उनके दरबार में भिन्न-भिन्न भाषाओं और भिन्न-भिन्न विषयों से सम्बन्धित रचनाएँ करनेवाले ५२ कवि रहा करते थे जिनके नाम ये हैं—उदयराय, अणीराय, अमृतराय, अल्लू, आशासिंह, आलम, ईश्वरदास, सुखदेव, सुखासिंह, सुखिया, सुदामा, सेनापति, श्याम, हीर, हुसैनअली, हंसराम, कल्लू, कुँवरेश, खानचन्द, गुणियाँ, गुरदास, गोपाल, चन्दन, चन्दा, जमाल, टहकन, धर्मसिंह, धन्नासिंह, ध्यानसिंह, नानू, निश्चलदास, निहालचन्द, नन्दसिंह, नन्दलाल, पिण्डीदास, वल्लभ, वल्लू, विधिचन्द, बुलन्द, वृख, वृजलाल, मथुरा, मदनसिंह, मदनगिरि, मल्लू मामदास, मालासिंह, मंगल, राम, रावल, रोशनसिंह और लक्खा।

इन बड़े-बड़े कवियों ने कई तरह के विषयों से सम्बन्धित रचनाएँ की थीं जिनका संग्रह तत्सामयिक परिस्थितियों के कारण एक ही जगह कर लिया गया था। उस संग्रह का नाम था 'विद्याधर'। परन्तु दुःख से कहना पड़ता

है कि वह ग्रन्थ मुसलमानों की धर्मान्धता के कारण इस तरह बिखर गया कि उसके केवल बासठ पन्ने आनन्दपुर में मिल सके। उन्हीं के आधार पर उन सूर कवियों में कुछ के छन्द मिल सके हैं। हमारे इस कथन की पुष्टि 'सूरज प्रकाश' के इस उद्धरण से होती है—

दोहा

बावन कवी हुजूर गुरु रहत सदा ही पास।
आवैं जाहिं अनेक ही, कहि जस, लै धन रास॥
तिन कवियन बाणी रची लिखि कागद तुलवाय।
नौ मन हूए तोल महिं सूखम लिखत लिखाय॥
'विद्याधर' तिस ग्रन्थ को नाम धर्‍यो कर प्रीत।
नाना विधि कविता रची रखि रखि नौ रस रीत॥
मच्यो जंग गुरु संग वड़ रह्यो ग्रन्थ सो वीच।
निकसे आनँदपुर तज्यो लूट्यो पुनि मिलि नीच॥
पृथक्-पृथक् पन्ने हुते लुट्यो सु ग्रन्थ बिखेर।
इह थल रह्यो न इमि गयो जिस तैं मिल्यो न फेर॥
बाहठ पन्ने कहूँ तैं रहे अनँदपुर माँहि।
तिन तैं लिखे कवित्त इहु गुरु-जस बरन्यो जाहिं॥

युद्ध के कारण ऐसा होना स्वाभाविक ही था। कवियों को एकान्त चाहिए। दिन-रात के युद्धों की परिस्थिति में न तो साहित्य-रचना हो सकती है और न रचे हुए साहित्य की रक्षा। पिछले महायुद्धों में साहित्य और कला की कृतियों का जो घोर विनाश हुआ है, वह किसी से छिपा नहीं है। वैसी ही परिस्थिति गुरु महाराज के समय में भी आई थी। मुसलमानों द्वारा कुस्तुन्तुनिया और भारत के, अनेक पुस्तकालयों के जलाये जाने का साक्षी इतिहास स्वयं है। ऊपर के दोहों में कागजों के तौल के नौ मन होने की कल्पना को कुछ लोग अतिशयोक्ति मानते हैं। पर थोड़ा ध्यान देने से यह बात स्पष्ट हो जायगी कि यह

कोरी कल्पना या अतिशयोक्ति नहीं है। प्रेस आदि न होने से सब कुछ हाथ से लिखा जाता था। ५२ कवि कुछ कम नहीं होते। ऐसी अवस्था में अगर नौ मन कागज हो गये हों तो कोई आश्चर्य नहीं।

इन ५२ कवियों में से कुछ का नाम हिन्दी साहित्य के इतिहास में भी आता है, पर इनकी ओर पूरा ध्यान नहीं दिया गया है। शेष कवियों के सम्बन्ध में पूरी छान-बीन होना आवश्यक है। जो हो, इतना तो मानना ही पड़ेगा कि इन ५२ कवियों में से कई कवि ऐसे हैं जो भूषण, चिन्तामणि आदि के सम-कक्ष माने जाने के अधिकारी हैं। इसके प्रत्यक्ष उदाहरण 'हंसराम' हैं। इनकी रचना-चातुरी देखिए—

कवित्त

अवध अन्हाए कहा, तिलक बनाए कहा,
द्वारका छपाए कहा तन ताइयति है।
कोविद कहाए कहा वेणी के मुँडाए कहा,
काशी के बसाए कहा लाह लखियति है।
मोहन मनाए कहा भूपति रिझाए कहा,
कहा 'हंसराम' जो धरा मैं धाइयति है।
चारहुँ वचन ताके हरनि कलेस गुरु,
गोविंद के चरन मुकति पाइयति है॥

उपर्युक्त कवित्त में कवि सभी स्थानों में प्राप्त होनेवाली गति की मंदता बतलाता हुआ गुरु महाराज के चरणों का ही आश्रय लेने में मुक्ति बतलाता है। इसी प्रकार नीचे के पद्य में उनके यश का वर्णन करता हुआ कवि कहता है—

जहाँ दिनकर को प्रताप दिनमान नाहिं,
जहाँ न दिनेश को प्रताप छाइयति है।
जहाँ न कलानिधि की कला की किरन एक,
जहाँ मृगराजन के धर धाइयति है।

जहाँ सुरपति की न गति रति-पति की,
मति, कहाँ धौलपति हूँ मैं पाइयति है।
जहाँ श्रुति सिम्रृति सुनि न श्रोण सुपनेहुँ,
तहाँ गुरु गोविन्द को जस गाइयति है।

इससे भी आगे बढ़कर यही कवि गुरु महाराज के विषय में अपनी श्रद्धा का परिचय इस प्रकार देता है—

चारों चक्क सेवैं गुरु गोविन्द तिहारे पाँय,
मेरे जाने आज तू ही, दूजो करतार है।
प्रबल प्रचंड खंड खंड महि मण्डल महिं,
साँचो पातशाह जाको साँचो सिर भार है।
कामना के दान वाणि जाकी "हंसराम" कहै,
परम धरम देखै विविध विचार हैं।
परम उदार पर-पीर के हरन-हार,
कौन जानै कौन भाँति लीनो अवतार है।

इसी कवि ने श्री गुरु महाराज के दान-शोर्य का वर्णन करते हुए लिखा है—

दुन्दुभी धुँकारे वाजे, मानो जलधर गाजे,
राजत निशान भय भानु छिपे जात हैं।
हाथिन के हलका हजारनि, गने को हय,
जटत जवाहर जो जगमग गात हैं॥
कोर साजे जोर, करनालन को सोर,
सुनि संकत सुरेश औ नरेश बिलखात हैं।
'हंसराम' कहत विराजो जिन भाजो गुरु,
गोविन्द को माँगै कविराज चले जात हैं॥

यह कवि गुरु महाराज के दरबार का अत्यन्त प्रसिद्ध कवि था। इसकी भाषा और अलंकारों में काफी प्रौढ़ता है। जिन बावन कवियों के नाम ऊपर

आये हैं, उनकी रचनाएँ अवश्य देखनी चाहिएँ; क्योंकि उन रचनाओं की परख ही श्री गुरु महाराज के विद्या-पारखी और कवि-हृदय का परिचय देंगी।

चन्दन—यह भी गुरु महाराज के दरबार का प्रसिद्ध कवि था। जब इसने पहले-पहल दरबार की शरण ली, तब इसने सोचा था कि गुरु-दरबार में प्रायः सभी छोटी जाति के लोग रहते है। ये बिचारे मेरी कविता क्या समझेंगे! तो भी मन मारकर इसने श्री गुरुदेव के कहने से अपनी कवित्व शक्ति प्रकट की—

नव सात तिये[1] नव सात किये[2],
नव सात पिये[3] नव सात पिआए[4]।
नव सात रचे[5], नव सात बचे,
नव सात पिया पहिं दायक पाए[6]।
जीत कला नव सातन की[7],
नव सातन के मुख अंचर छाए[8]।
मानहुँ मेघ के मण्डल मैं,
कवि 'चन्दन' चन्द कलेवर छाए॥

गुरु महाराज को चन्दन की यह पहेली अभिमान भरी नजर आई। उन्होंने अपने एक सेवक से कहा कि जाकर घोड़ों के रक्षक धन्ना (जो कवि भी था) को बुला लाओ। धन्ना के आने पर उसे चन्दन कवि की रचना का अर्थ करने को कहा और उसे उसकी अपनी रचना सुनाने का आदेश दिया। धन्ना ने चन्दन की रचना का अर्थ बहुत अच्छी तरह कर दिया और तब अपनी यह रचना सुनाई—

---

१ सोलह वर्षीया स्त्री, २ सोलह शृंगार किये, ३ सोलह वर्षीय पति, ४ सोलह महीने के पश्चात् आया, ५ सोलह खानोंवाली चौपड़ का खेल, ६ सोलह दाँव, ७ सोलह कला, ८ सोलह कला-युक्त चन्द्रमुखी ने आँचल से मुँह छिपा लिया।

मीन मरे जल के परसे, कबहूँ न, मरे पर पावक पाए।
हाथी मरे मद के परसे, कबहूँ न, मरे तन-ताप के आए॥
तीय मरे पिय के परसे, कबहूँ न, मरे परदेस सिधाए।
गूढ़ मैं बात कही द्विजराज विचार सकै न बिना चित लाए॥

चन्दन ने काफी जोर मारा, पर वास्तविक अर्थ और उसका चमत्कार नहीं ढूँढ़ सका। बेचारा घुटने टेक बैठा। तब श्री गुरु महाराज ने स्वयं इस रचना की व्याख्या करते हुए बतलाया कि इसके पहले पदों में 'परसे' शब्द तक तो प्रश्न है, और 'कबहुँ न' इसका उत्तर है।

इस एक ही सवैये से पता चल जाता है कि ऐसी चमत्कार-पूर्ण रचनाओं का मर्म भी गुरु महाराज तुरन्त जान लेते थे।

सुदामा

आइए जरा 'सुदामा' के विचार भी सुन लें। उसका सख्यभाव इन शब्दों में स्पष्ट झलकता है—

एकै संग पढ़े हैं अवन्तिका संदीपनि के,
सोई सुधि आई तो बुलाई बूझि धामा मैं।
पुंगी-फल होत तो असीस देते नाथ जी को,
तंदुल ले दीने सोइ बाँध लीने फटे जामा मैं।
दीन दयालु सुन कै दयालु दरबार मिले,
एतो कुछ दीनों पाइ अगनित सामाँ मैं।
प्रीत कर जानै गुरु गोविन्द कै मानै तातें,
वही तू गोबिन्द वही बाम्हन 'सुदामा' मैं॥

इन शब्दों में सुदामा की पूर्ण भक्ति प्रकट हो जाती है। वह यहाँ तक कह जाता है कि हम वही गोविन्द और सुदामा हैं, जो कभी एक साथ पढ़े हैं, और अब तक मित्रता का आदर्श सामने रखते हैं।

मंगल—इन सब में मंगल कवि का वर्णन अधिक मिलता है। इसकी

रचना में अनेक भाव मिलते हैं। इसका रचना कौशल बहुत बढ़ा-चढ़ा है और अच्छे से अच्छे कवियों से टक्कर ले सकता है। इसकी रचना में यमक और अनुप्रास तथा उल्लेख अलंकार का चमत्कार अधिक मिलता है। जिसमें गुरु महाराज के दान, शौर्य, यश आदि का अनेक रूपों में वर्णन किया है। इसकी झलक भी देख लें—

> भावैं जाइ तीरथ भ्रमति सेतु-बन्ध हूँ लौं,
> भावैं जाइ कंदरा मैं कंद मूल खाइए।
> भावैं देह द्वारका दगध करै छापे लाय,
> भावैं काशी माँहि जाइ जुग्ग लौं बसाइए।
> भावैं पूजो देहुरे दिवाले सभी जगहुँ के,
> भावैं पट्दर्शन के भेख में फिराइए।
> जो तूँ चाहे मनसा को 'मंगल' तुरत फल,
> गोबिन्द गुरु की एक मौज हुँ में पाइए॥

एक जगह यह कवि गुरु महराज के हाथ की छड़ी का वर्णन करता है—

> असुर बिरारिबे को सुरपति पारिबे को,
> भगत उधारिबे को मुकति की जरी है।
> अरि दल भंजिबे को गाढ़े गढ़ गंजिबे को,
> सभी सुख संजिबे को महा सुख भरी है।
> करति कलोल गुरु गोविन्द के कर माँहि,
> चक्र साथ हुँ ते मारिबे की विधि परी है।
> फतह की निशानी यहि, पूरब जनम हुँ की,
> तबि हुती गदा, अबि श्याम रँग छरी है॥

दूसरा कवित्त भी इसी विषय का है जो ऊपरवाले कवित्त की पूर्णता सिद्ध करता है—

२

कुंज कुंज गलिन बजाई बन बाँसुरी सी,
उनहीं के संग सोई सारदा कहति है।
जमुना के तट बंसी-वट के निकट,
सोई तट शतद्रव[1] आनि साहिबी कहति है।
देखो भूप भूपनि के भूम के भगत लोगो,
भाग या छरी के मो सों कहिबे बनति है।
कान्ह ह्वै कै औतर्‍यो तो मुख ही रहन लागी,
गोविन्द ह्वै औतर्‍यो तो हाथ ही रहति है॥

मंगल की विशेषता केवल ब्रज भाषा तक सीमित नहीं; वह पंजाबी का भी अच्छा कवि है—

समुंदर दे वार पार विच महि मंडल दे,
जैंदा[2] जस देश देश सब्भे लोक गाँवदे।
सेंवदे भिखारी सेई होंदे नीं हजारी हुण,
वारी वारी पढ़ के कवित्त ने सुणाँवदे।
चारों ही वरण खट दरसन जैंदे द्वार,
'मंगल' सुकवि मन इच्छा फल पाँवदे॥
वेखीं वल वाँगूँ[3] कोई छली गुरु गोविन्द जी,
इक लै लै जाँदे, इक लैणे नूँ आँवदे॥

× × ×

और कई कवियों का परिचय अवश्य मिलता है, परन्तु बहुत थोड़ा। लक्खन और भोगराज के विषय में प्रसिद्ध है कि ये दोनों चाँगरे गोत्रज राजपूत थे। लक्खन ने पंच-तंत्र का अनुवाद हितोपदेश नाम से किया; पर भोगराज का कोई विशेष वर्णन नहीं मिलता।

---

१ सतलज। २ जिसका। ३ तरह।

नन्दलाल—इसका बहुत अधिक वर्णन मिलता है। यह फारसी का उद्भट विद्वान् और कवि था। इसके पिता का नाम छज्जूराम था। यह नवाब मुही-उद्दीन गजनो के पास रहता था। १७ वें साल में इसकी माता और १९ वें साल में पिता का देहान्त हो गया था। फारसी के विद्वान् होने के कारण औरंगजेब ने इसे आगरे बुलाया और अपना मीर मुन्शी नियत किया। एक दिन इसने कुरान की किसी आयत का अर्थ इतने सुन्दर ढंग से किया कि औरंगजेब ने इसे मुसलमान बनाना चाहा। तब यह अपने साथी गया-सुद्दीन दारोगा सहित भागकर आनन्दपुर आ पहुँचा।

इसकी रचनाएँ कई हैं—तौसीफो-सना, खात्मा, जंगनामा, जिन्दगी-नामा, दीवान गोया, इन्शा दस्तूर, अरजुल अलफ़ाज आदि*। इसने अपना उपनाम ही 'गोया' रखा था। इसका रचना-कौशल भी कमाल का था। इसके 'बंदगी नामे' को श्री गुरु महाराज ने 'जिन्दगी नामा' कहा था।

अज आबे हैवाँ पुर शुदह चूँ जामे ओ।
जिन्दगी नामा' शुदह ज़ाँ नामे ओ॥

यह कवि एक जगह होली के दिन की झलक दिखलाता हुआ कहता है—

गुले होली ब-बागे दहर बिशुगुफ्त ।
लबे चूँ गुंचः रा फ़रखंदः कर्द॥
गुलाबो अंबरो मुश्को अबीराँ।
चू बाराँ बारिशे अज़ सू बसू कर्द॥

इस कवि ने ७२ वर्ष की आयु पाई थी। इसी प्रकार हंसराज, मनी-सिंह, आदि अनेक कवियों के वर्णन मिलते हैं, जो स्थानाभाव के कारण यहाँ नहीं दिये गये।

इन बातों से इतना पता अवश्य चल जाता है कि श्री गुरु महाराज को

---

*इनमें से कुछ रचनाएँ श्री सन्त इन्द्रसिंहजी चक्रवर्ती के पास मैंने देखी हैं।—आनन्द।

प्रत्येक भाषा से और उस भाषा के अभिज्ञ से कितना अनुराग था। गुरु महाराज के कवि का और साहित्यिक रूप का वास्तविक पता हमें इसी से चल जाता है कि प्रत्येक कवि से उन्होंने कुछ न कुछ लिखवाया और इस प्रकार उन्हें एक नई प्रेरणा दी।

गुरु महाराज का साहित्य और व्यक्तित्व

ऊपर कुछ कवियों और उनकी रचनाओं का वर्णन किया गया है, जिससे श्री गुरु महाराज के काव्य-रसिक होने का पता चलता है। पर यह बात यहाँ समाप्त नहीं होती। प्रश्न उठता है कि जिस महान् आत्मा की रसिकता इतनी गंभीर थी, वह स्वयं कैसा था। इसका उत्तर गुरु महाराज की रचनाएँ और उन रचनाओं में छिपा हुआ उनका व्यक्तित्व देता है। श्री गुरु महाराज स्वयं एक महान् कवि और उद्भट विद्वान् थे। उनकी महान् रचनाएँ यदि अलग-अलग की जायँ तो उन्हें बहुत-से नाम देने पड़ेंगे; इसलिए उन सब को एक ही नाम दे दिया जाता है—दशम ग्रन्थ। फिर भी कुछ रचनाएँ ऐसी हैं जो अपना स्वतंत्र अस्तित्व रखती हैं; जैसे—विचित्र नाटक, जफरनामा, सौ साखी, जाप, चण्डी-चरित्र आदि। हिन्दी इतिहासकार इनमें से केवल एक-दो रचनाओं का उल्लेख करके कर्त्तव्य निभाते हैं।

कुछ लोग कहते हैं कि श्रीगुरु महाराज की रचनाओं में 'श्याम' या 'राम' शब्द उपनाम के रूप में आये हैं; अतः ये रचनाएँ उनकी नहीं हो सकतीं। परन्तु जैसा कि परम्परागत किंवदंतियाँ बतलाती हैं और कई लेखों में भी मिलता है (और यह ठीक भी है), माता श्री गुजरी जी उन्हें प्यार से "मेरा श्याम, या राम" कहा करती थीं। इसका कारण स्पष्ट है। भारतीय सभ्यता कभी आत्म-नाम, गुरोर्नाम, के महत्त्व को भुला नहीं सकती। छठे पातशाह श्री गुरु हरिगोविन्द इनके पितामह थे और स्वयं गुरु महाराज का नाम गोविन्दहरि था। तब यह कैसे सम्भव था कि कि भारतीयता की प्रतीक उनकी पूजनीया माता अपने पुरखों के नाम से उन्हें संबोधन करतीं। आज

भी हमारी सभ्यता यह आज्ञा नहीं देती कि पूर्वज के नाम से पुत्र का संबोधन किया जाय। ऐसी स्थिति में माताएँ अपने पुत्र का नाम प्यार से कुछ और रख लिया करती हैं। यहाँ भी यही बात थी। गुरुदेव को माँ का प्यार भरा सम्बोधन इतना रुचिकर प्रतीत हुआ कि उन्होंने उस परम करुणामयी की स्मृति में उसे उपनाम रूप में अपना लिया। हाँ 'गोविन्द' शब्द भी कई जगह अवश्य आया है। कोमल पदावली और सरस भावों से युक्त कविताओं में 'श्याम' या 'राम' उपनाम ही आये हैं।

कवि का व्यक्तित्व उसकी रचनाओं में झलकता है। आइए, श्री गुरुदेव की रचनाओं में उनके व्यक्तित्व की झाँकी देखें।

काल ही पाप भयो भगवान सु
जागत या जग जाँ की कला है।
काल ही पाप भयो ब्रह्मा शिव,
काल ही पाप भयो जुगिआ है।
काल ही पाप सुरासुर गंध्रव
जच्छ भुजंग दिसा विदिसा है।
और सुकाल सबै बस काल के
एक ही काल अकाल सदा है॥

जितेक राज रंकयं।
हने सुकाल बंकयं॥
जितेक लोक पालयं।
निदान काल दालयं॥

इन पद्यों में हम उन्हें अकाल पुरुष का पूर्ण विश्वासी पाते हैं। वह एक दार्शनिक की तरह कहते हैं—काल ही पाप भयो भगवान सु। क्या वे अन्त

में सभी का नाशवान होना स्वीकार नहीं करते ? इसी लिए वे उस सर्वशक्तिमान् की स्तुति करते हुए कहते हैं—

नमो देव-देवं नमो खड्ग-धारं ।
सदा एक रूपं सदा निर्विकारं ॥
नमो राजसं सातकं तामसेयं ।
नमो निर्विकारं नमो निर्गुरेयं ॥

पर उन्हें इतने से सन्तोष नहीं; वे फिर कहते हैं—

कागद दीप सभै करिकै अरु सात समुंद्रन की मसि कैहो ।
काट बनासपती सगरी लिखबेहु के लेखन काज बनैहो ॥
सारसुती बकता करिकै जुगि कोटि गनेस के हाथ लिखैहो ।
काल कृपान बिना बिनती न तऊ तुम कौ प्रभु नेक रिझैहो ॥

उन्हें उस अकाल पुरुष की स्तुति के लिए जो कुछ इष्ट है, वह सब इस छन्द में व्यक्त कर दिया है । सारी पृथ्वी का कागज और सभी पेड़ों की कलमें तथा समुद्र की स्याही बनाकर यदि सरस्वती भी लिखने बैठे तो भी उस अकाल की सत्ता का बखान नहीं हो सकता । कबीर ने भी तो यही कहा है—

सब धरती कागज करूँ लेखिनि सब बनराय ।
सात समुँद की मसि करूँ गुरु गुन लिखा न जाय ॥

गुरु महाराज अकाल की सत्ता सर्वोपरि मानते हैं । उनके लिए हर अणु में उसी का प्रकाश है । जिस प्रकार योगी के आगे अलख ज्योति जागने पर वह कबीर की तरह पुकार उठता है—

लाली मेरे लाल की जित देखूँ तित लाल ।

ठीक इसी तरह श्री गुरु महाराज ने कहा है—

कहूँ रूप धारे महाराज सोहं।
कहूँ देव कन्यान के मान मोहं॥
कहूँ पीर ह्वै कै धरे बाण पाणं।
कहूँ भूप ह्वै कै बजाए निशाणं॥

परन्तु उन्हें कबीर की तरह अपने बड़प्पन की घोषणा करना नहीं आता। कबीर तो स्पष्ट शब्दों में कह गये हैं—

आगि लगी आकाश में झरि झरि परे अँगार।
कबिरा जल कंचन भया काँच भया संसार॥

पर श्री गुरु महाराज सभी का नष्ट होना स्वीकृत करते हैं। वे अकाल पुरुष का साक्षात्कार होने पर भी अपनी विशेषता नहीं बतलाते। उन्हें जो विश्वास है, उसी के आधार पर वे कहते हैं—

जिनै दीप दीपं दुहाई फिराई।
भुजा दण्ड दै छोनि छत्रं छिनाई॥
करे जज्ञ कोटं जसं नेकु लीते।
वहै बीर बंके बली काल जीते॥
जिनै पातसाही करी कोट जुग्यं।
रसं आन रस्सं भली भाँति भुग्यं॥
वहै अंत को पाँव नाँगे पधारे।
गिरे दीन देखे हठी काल मारे॥
जिनै खण्डियं दंड धारं अपारे।
करे चन्द्रमा सूर चेरे दुआरे॥

जिनै इन्द्र से जीत कै छोड़ डारे।
वहै दीन देखे गिरे काल मारे।

इन पद्यों में जहाँ उनकी दिव्यता झलकती है, वहाँ साहित्यिक रूप भी झलकता है। ठीक एक समस्या-पूरक की तरह वे अपने कर्त्तव्य का पालन करते हैं—वहै दीन देखे गिरे काल मारे। जहाँ स्वयं उन्हें अलख ज्योति का प्रकाश दिखाई दिया, वहाँ वे दूसरों के लिए भी एक प्रेरणा देते हैं—

बिना सरन ताकी न अउरे उपायं।
कहा देव दइतं कहा रंक रायं॥
कहा पातसाहं कहा उम्मरायं।
बिना सरन ताँकी न कोटै उपायं॥

श्री गुरु महाराज के हृदय में सदा वही अलख ज्योति प्रकाशित रहती थी। उसी के प्रकाश में उन्होंने संसार को लाने का प्रयत्न किया। उस समय भारत की, विशेषतः भारतीयता की, जो शोचनीय अवस्था हो रही थी, वह इतिहास के किसी जानकार से छिपी नहीं है। कवि अपना कर्त्तव्य भूल चुके थे। उन्हें दरबारों की रसीली और नशीली चीजों के स्वाद ने निष्क्रिय बना दिया था। वे लोग—

सोइ रसना जो हरि गुन गावै।

का पवित्र आदर्श छोड़कर कामिनी की रसीली 'बतियाँ' और 'छतियाँ' तक ही अपने को सीमित कर बैठे थे। दूसरी ओर समाज पर आये दिन अन्याय का वज्र गिरता रहता था। कहीं पाखण्ड का राज्य चल रहा था, तो कहीं कण्ठी, छापे और तिलक के कृत्रिम प्रदर्शन में लोग फँसे हुए छूआछूत का जाल बुन रहे थे। ऐसी विकट परिस्थितियों में गुरु महाराज का आविर्भाव हुआ था। स्वयं श्री कृष्ण भगवान् कहते हैं—

'परित्राणाय साधूनां विनाशायच दुष्कृताम्।' ऐसी ही परिस्थितियाँ उस अलख ज्योति को अन्धकार दूर करने के लिए बाध्य करती हैं। उस समय भी ऐसा ही हुआ था। श्री गुरु महाराज लिखते हैं—

तप साधत हरि मोहिं बुलायो।
इम कहि कै इह लोक पठायो॥
मैं अपना सुत तोहिं निवाजा।
पन्थ प्रचुर करिबे को काजा॥
जाहि तहाँ तैं धरम चलाइ।
कुबुधि करन ते लोक हटाइ॥

ठाढ़ भयो मैं जोरि कर बचन कहा सिर नाय।
पन्थ चलै तब जगत मैं जब तुम करहु सहाय॥

इह कारन प्रभु मोहिं पठायो।
तब मैं जगत जनम धरि आयो॥
जिम तिन कही तिमै तिम कहिहौं।
औ किस हूँ ते बैर न गहिहौं॥

अपने आगमन के कारण की झलक दिखलाने के बाद उन लोगों को सावधान करने के लिए, जो उनके दिव्य आदर्शों के कारण उन्हें परमेश्वर मानने लगे थे, उन्होंने कहा है—

जो हमको परमेसर उचरिहैं।
ते सब नरक कुण्ड मँह परिहैं॥
मोकौं दास तवन को जानो।
या मैं भेद न रंच पछानो॥
मैं हौं परम पुरख को दासा।
देखन आयो जगत तमासा॥

जो प्रभु जगति कहा सो कहिहौं ।
मिरत लोक में मौन न रहिहौं ॥

क्या गीता का सिद्धान्त पूरी तरह इन पद्यों में नहीं झलकता ? कृष्ण ने जहाँ साधुओं की रक्षा का संकेत किया है, वहाँ दुष्टों का विनाश करना भी बताया है। गुरु महाराज भी कहते हैं—

जहाँ तहाँ तुम धर्म विथारो ।
दुष्ट देखि उन पकरि पछारो ॥

महाभारत में श्री कृष्ण ने भी तो अन्याय का पक्ष लेनेवाले भीष्म पर शस्त्र उठाया था। ठीक इसी तरह श्री गोविन्द ने जहाँ लोगों को दुष्टों के विनाश की प्रेरणा दो, वहाँ स्वयं भी तलवार उठाकर वे क्षेत्र में आये।

उन्हें उस पाखण्ड में कभी विश्वास नहीं रहा, जिसके विरुद्ध कबीर की पुकार थी—

माला तो कर में फिरै जीभ फिरै मुख माँहि ।
मनुआँ तो चहुँ दिसि फिरै यह तो सुमिरन नाँहि ॥

और जिसके विषय में बिहारी ने कहा था—

जप-माला छापैं तिलक सरै न एकौ कामु ।
मन-काँचै नाचै वृथा साँचै राँचै रामु ॥

इस तरह के पाखण्ड को गुरु महाराज ने भी सदा हेय दृष्टि से देखा। उन्होंने कहा भी है—

न जटा मूँड़ धारौं । न मुँद्रिका सँवारौं ॥
जपों तासु नामं । सरै सर्व कामं ॥
न नैनं मिचाऊँ । न डिम्भं दिखाऊँ ॥
न कुकरम कमाऊँ । न भेखी कहाऊँ ॥

ऐसे पाखण्डों का समूलोन्मूलन करनेवाले गुरु की प्रशंसा में अपने शिष्यों को उपदेश देते हुए वे कहते हैं--

जे अपने गुरु तें मुख फिरिहैं। इहाँ उहाँ तिनके गृह गिरिहैं॥
इहँ उपहास, न सुरपुर बासा। सब बातन तें रहे निरासा॥
दूख भूख तिनको रहैं लागी। संत सेवते जो हैं त्यागी॥
जगत विखै कोइ काम न सरही। अंतहि कुण्ड नरक को परही॥
तिनको सदा जगत उपहासा। अंतहि नरक कुण्ड कौ वासा॥
गुरु पग तें जे विमुख सिधारे। इहाँ उहाँ तिनके मुख कारे॥
पुत्र पौत्र तिनके नहिं फरैं। दुख्र दै मात-पिता को मरैं॥
गुरु दोखी सग की मृतु पावै। नरक कुण्ड डारे पछुतावै॥

इससे भी बढ़कर उन्हें पूर्ण विश्वास है—हरि रूठे गुरु ठौर है, गुरु रूठे नहिं ठौर। वे कहते हैं—

बिना बिदा जैहैं तब धामं। सरिहै कोइ न तिनको कामं॥
गुरु दर होइ न प्रभु-पुरि बासा। दुहूँ ठौर तें रहे निरासा॥

इस प्रकार हम देखते हैं कि गुरु महाराज की रचना में आध्यात्मिकता का कितना अधिक पुट है। उनका व्यक्तित्व उनकी रचनाओं में स्वयं मुखरित हो उठा है। इस संसार के रंग-मंच पर उच्च कोटि के अभिनेता की तरह काम करते हुए भी वे स्वयं उससे निर्लिप्त रहने का उपदेश देते हैं।

देखा जाय तो महायोग और महायोगी की परिभाषा यही है कि वह पानी में रहे और आँचल न भींगने दे। परन्तु जब कभी ऐसे महायोगी के योग में कोई बाधा डालने का प्रयत्न करता है, तब उसे ऐसे योग की भी साधना करनी पड़ जाती है जिसे राजयोग और हठयोग का मिश्रण कह सकते हैं। श्री गुरु महाराज ने भी इसी का आश्रय लेकर अपने योग की रक्षा की थी। उनकी रचनाएँ इसकी साक्षी हैं।

श्री गुरु महाराज का उपर्युक्त रूप देखने के बाद हम उनका वह विशुद्ध साहित्यिक रूप लेते हैं, जिसमें उन्होंने 'कवि' शब्द को चरितार्थ किया है।

उनका अस्तित्व रीति काल में था; अतः चमत्कारवादी न होते हुए भी चमत्कारवाद से वे बिल्कुल खाली न रह सके। परन्तु इतना तो कहना ही पड़ेगा कि अन्य चमत्कारवादियों की तरह कोरे चमत्कार को ही सब-कुछ न मानकर उन्होंने उसमें कुछ ठोसपन भी रखा है, जैसा कि उनकी अलंकार-योजनाओं से प्रकट होता है—

पुरं नारि देखे। सही काम लेखे॥
रिपं शत्रु जाने। सिधं साधु माने॥
शिशुं बाल रूपं। लख्यो भूप भूपं॥
लख्यो पौन हारी। भटं शस्त्रधारी॥
निशा चंद जान्यो। दिनं भानु मान्यो॥
गणं रुद्र पेख्यो। सुरं इन्द्र देख्यो॥
श्रुतं ब्रह्म जान्यो। द्विजं व्यास मान्यो॥
हरी विष्णु लेखे। सिया राम देखे॥

यहाँ हम उल्लेख अलंकार को कितनी सुंदर अभिव्यंजना पाते हैं ! इसके साथ ही श्री गुरु महराज की निजी पवित्र भावना भी व्यक्त होती है, जिसमें उन्होंने उसी अकाल पुरुष की सत्ता को सर्व-व्यापक माना है और उसी की अनेक रूपों में स्तुति की है। यदि हम साहित्य में उनकी अभिव्यक्ति देखना चाहें तो स्पष्ट ही समष्टि रूप में श्री राम के रूप की झलक देखते हुए, उनमें श्री गुरु महाराज के व्यष्टि रूप मन की भावना का भी चित्र देखने को मिल जायगा।

एक स्थान पर सीता की सुन्दरता का वर्णन करते हुए वे लिखते हैं—

किधौं देव-कन्या किधौं वासवी है।
किधौं यक्षिणी किन्नरी नागिनी है॥

किधौं गंधरी दैतजा देवता सी।
किधौं सूरजा शुद्ध सोची सुधा सी॥

× × ×

किधौं यक्ष विद्याधरी गंधरी है।
किधौं रागिनी भाग पूरे रची है॥
किधौं स्वर्ण के चित्र की पुत्रिका है।
किधौं काम की कामिनी की प्रभा है॥

इन पद्यों में उनके रचना-सौष्ठव की गहराई देखिए। अनिश्चय-गर्भ सन्देह अलंकार के साथ-साथ अनुप्रास की छटा भी पूरी तरह से विद्यमान है। रीति-कालीन मर्यादा का पालन भी स्पष्ट लक्षित हो जाता है। माना कि वह सीता है, जगदंबा है, पर कवि तो उसे नारी रूप में देखने में ही अपना कौशल समझता है। श्री गुरु महराज उसे नारियों के स्थूल भेद में रखते हुए कहते हैं—'किधौं शंखिनी, चित्रणी पद्मिनी है।' देखिए जरा उनकी सूक्ष्मता। नारी की ये तीनों श्रेणियाँ फिर भी एक दूसरी से कुछ ऊँची मानी गई हैं। परन्तु हस्तिनी जाति का वर्णन नायिका-भेद में कोई विशेष महत्त्व नहीं रखता; अतएव हस्तिनी का नाम भी नहीं लिया गया, यद्यपि छंद-पूर्त्ति 'हस्तिनी' से भी हो सकती थी। फिर एक सूक्ष्मता और देखिए। क्रमशः नाम गिनाकर उसका सौन्दर्य व्यक्त किया है। यदि वह केवल शंखिनी होती तो कोई सौंदर्य नहीं था। हाँ यदि वह एक ओर से शंखिनी की विशेषताएँ रखती है तो साथ ही चित्रिणी और पद्मिनी की विशेषताएँ भी रखती है। नारी के उस वास्तविक रूप की अभिव्यंजना भी उन्होंने की है, जिसके कारण नारी, नारी है। शंखिनी का रूप सीता के वन जाने के आग्रह में प्रकट हो जाता है; चित्रिणी का रूप रावण की अशोक-वाटिका में; तथा पद्मिनी का रूप तो सभी जगह व्यक्त होता है, विशेष कर अग्नि-परीक्षा के समय। इन्हीं बातों की व्यंजना श्री गुरु महाराज के इन तीन नामों ने की है।

ऊपर का वर्णन सीता-स्वयंवर का है। उस रूप की छटा देखनेवाले नर, नारी, देव और असुर सभी हैं जो स्वयंवर में आये हैं। सीता का श्रृंगार पूर्ण है; अतः कवि का ऐसा कहना ठीक भी है।

अब जंगल में जाती हुई सीता का सौंदर्य देखिए—

चंद को अंश चकोरन कै करि, मोरन विद्युल्लता अनुमानी।
मत्त गयंदन इन्द्रवधू भिनुसार छटा रवि की जिय जानी॥
देवन दोषन की हरता, अरि-देवन काल-क्रिया कर मानी।
देशन सिन्ध, दिशेसन विन्ध, जोगेशन गंग के रंग पछानी॥

जंगल में सीता के शरीर पर कोई श्रृंगार नहीं है। फिर वहाँ उसे देखनेवाले शहर के लोग नहीं, बल्कि जंगल के जीव मोर, चकोर आदि ही हैं। उन्हें सीता के ऊपरी श्रृंगार से प्रयोजन भी क्या है? इसलिए वे उसे प्राकृतिक सुन्दरता की मूर्त्ति के रूप में देख रहे हैं। रचना-सौष्ठव की दृष्टि से जहाँ और सब-कुछ है, वहाँ यह भी पता चल जाता है कि देश-काल का ध्यान कितना परिपूर्ण है।

इसी तरह सीता की सर्वांग-सुन्दरता भी निम्न पद्य में व्यक्त होती है—

सुने कूक को कोकिला कोप कीने मुखं देख के चंद दारेर खाई।
लखे नैन बाँके मनै मीन मोहे लखे जात के सूर की जोत छाई॥
मनो फूल फूले लगे नैन झूले लखे लोग भूले बने जोरिए से।
लखे नैन धारे बिंधे राम प्यारे रँगे रंग साराव सूहाव जैसे॥

विवाह के उपरान्त राम के घर लौटने का चित्र देखिए—

बाजत ताल मृदंग अपारं। नाचत कोटिक कोटि अखारं॥
बन बन वीर पखरिआ चल्ले। यौवन पंत सिपाही भल्ले॥
जाय भए थित नृप के द्वारे। महारथी अरु मह(ा) धनुधारे॥
बाजत जंग मुचंग अपारं। ढोल मृदंग सुरंग सुधारं॥
गावत गीत चंचला नारी। नैन नचाय बजावत तारी॥

श्री राम का विवाह हो चुका है। वे सीता और अपने भाइयों सहित अयोध्या आ चुके हैं। उस समय के वर्णन की सजीवता का जो चित्र कवि ने उपर्युक्त पद्य में खींचा है, वह बहुत सजीव है। क्या सचमुच ऐसा नहीं होता ? जिन्होंने किसी राजा के विवाह का दृश्य देखा हो, वे इसकी कल्पना सहज ही में कर सकते हैं। साहित्य के औचित्य संप्रदाय के अंतर्गत आये हुए सभी तत्त्व इसमें पूर्ण-रूपेण घटित होते हैं।

बाण भट्ट ने अपने 'हर्ष-चरित' में राजा के मत्त हाथी दर्पशात का वर्णन किया है, और तब घोड़ों का वर्णन करते हुए उनसे कुछ शब्दों की पुनरावृत्ति हो गई है। उससे भी कुछ अधिक विशेषता रखते हुए घोड़ों का वर्णन श्री गुरु महाराज ने इस प्रकार किया है—

नागरा के नैन हैं कि चातुरा के बैन हैं,
बगूला मानो गैन कैसे तैसे थहरत हैं।
नर्तकी के पाँव हैं कि जूय कैसे दाँव हैं,
कि छल को दिखाव कोऊ तैसे बिहरत हैं।
हाँकि बाजि वीर हैं तुफंग कैसे तीर हैं,
कि अंजनी के धीर हैं कि धुजा से फहरत हैं।
लहरैं अनंग की तरंग जैसे गंग की,
अनंग कैसे अंग ज्यों न कहूँ ठहरत हैं॥

जरा देखिए, चंचलता के सभी प्रतीक इसमें भर दिये हैं। आकाश में उठनेवाले बगूले की उपमा उनकी अपनी सूझ है। नर्तकी के पाँवों की कल्पना चंचलता के पक्ष में बहुत अच्छी है। नागरा के नयनों और चातुरा के वचनों की कल्पना तो चंचलता और भी पूर्ण रूप से प्रकट कर देती है। इस पुस्तक में ४१ और ४२ पृष्ठों पर आया हुआ घोड़ों का वर्णन भी उनकी श्रेष्ठ रचना-चातुरी प्रकट करता है।

श्री राम के राज्य की महिमा प्रायः सभी ने गाई है। श्री गुरु महाराज ने अपनी उक्तियों को पिष्ट-पेषण से बचाकर थोड़े में ही वर्णन चरम सीमा तक पहुँचा दिया है—

कमी न कौन काज की।
प्रभाव राम राज की।

और

देश देशन की क्रिया सिखवंत हैं द्विज एक।
बान और कमान की विधि देत आन अनेक॥
भाँति भाँतिन सौं पढ़ावत बार-नारि सिंगार।
कोक काव्य पढ़ैं कहूँ व्याकरण वेद विचार॥

यहाँ सभी को अपना-अपना कार्य करने की स्वतन्त्रता है। कहीं (बार) बालक पढ़ाये जा रहें हैं,तो कहीं नारियों को श्रृङ्गार की शिक्षा दी जा रही है। अगर व्याकरण पढ़ाया जाता है तो साथ ही कोक-शास्त्र तथा काव्य आदि की शिक्षा भी दी जाती है। वेदों पर भी विचार किया जा रहा है। सबको स्वतन्त्रता है। कितनी सच्ची और सही कल्पना है राम-राज्य की। ऐसे ही आदर्श राज्य की कामना ने गुरु महाराज को इस क्षेत्र में अवतीर्ण किया था।

दशरथ की दृष्टि में श्रीराम के विषय में गुरु महाराज की कल्पना देखिए—

नृदेव देव राम हैं। अभेद धर्म धाम हैं॥
अबुद्ध नारि तैं मनै। अशुद्ध बात को भनै॥
अगाध हैं, अनंत हैं। अभूत सोभवंत हैं॥
कृपालु कर्म-कारणं। बिहाल द्यालु तारणं॥
अनेक संत तारणं। अदेव देव कारणं॥
सुरेश भाय रूपणं। समृद्ध सिद्ध भूपनं॥

श्री गुरु महाराज यद्यपि रीति-कालीन परम्परा में हुए, परन्तु उनके सामने उस पवित्र राम-राज्य का चित्र था, जिसमें सभी को स्वतन्त्रता है। परन्तु ऐसे

राज्य के लिए इन कामिनियों के नख-शिख वर्णन की और उनके रूप-सागर में डूब जाने की इच्छा नहीं होनी चाहिए।

इसी लिए उन्होंने दशरथ के पश्चात्ताप में वीर पुरुषों को चेतावनी देते हुए लिखा है—

अजित्त जित्ते अवाह वाहे। अखंड खंडे अदाह दाहे॥
अदंड दंडे अडंग डंगे। अमुंड मुंडे अभंग भंगे॥

अतएव इस जाग्रत वासना रूपी नारी से बचने का सन्देश स्पष्ट शब्दों में व्यक्त किया है। परन्तु जहाँ इस तरह का संकेत है, वहाँ नारी के शक्ति-रूप का संकेत भी गौण रूप से कर दिया है।

इससे भी आगे बढ़कर ऐसे पुरुषों को, जो समय की गति न समझते हुए केवल कामिनी को सब-कुछ मान बैठते हैं, लक्ष्मण के शब्दों में उन्होंने कैसी फटकार बताई है—

बात इतै इह भाँति भई सुनि आइगे भ्रात शरासन लीने।
कौन कुपूत भयो कुळ में जिन रामहिं बास बनै कहुँ दीने।
काम के बाण बिंध्यो बस कामिनी कूर कुचाल महामति हीने।
राँड कुभाँड के हाथ बिक्यो कपि नाचत नाच छरी जिमि चीने॥

ऐसी स्त्रियों को भी, जो वीर पुरुषों के कर्त्तव्य में बाधा डालती हैं, उन्होंने लक्ष्मण के शब्दों में फटकारते हुए कहा है कि ऐसी स्त्रियों का यह लोक तो विनष्ट होता ही है, पर-लोक भी नष्ट हो जाता है—

काम को दंड लिये कर कैकई बानर ज्यों नृप नाच नचावै।
ऐंठन ऐंठ अमैठ लिए ढिग बैठि सुआ जिमि पाठ पढ़ावै॥
सौतिन सीस पै ईश को ईश पृथीश जूँ चाम के दाम चलावै।
कूर कुजाति कुपंथ दुरानन लोक गयो, परलोक नसावै॥

कैसी मार है उन लोगों के लिए जो अपनापन भूलकर वीरता का मार्ग

छोड़ बैठे हैं। कैकेयी के रूप में ऐसी नारियों से और दशरथ के रूप में ऐसे पुरुषों से उन्हें जो विरक्ति थी, उसका पता भी हमें उपर्युक्त पद्यों में मिल जाता है।

गुरु महाराज की वीर रस-युक्त रचना पढ़ते समय तो वीरता साकार रूप में सामने आ खड़ी होती है—

विचित्र चित्रितं सरं वहंत दारुणं रणं।
ढलंत ढाल अड्ढलं ढुलंत चारु चामरं॥
दलंत निर्दलो दलं पपात भूतलं दितं।
उठन्त गद्द सद्दयं निनद्द नद्द दुब्भरं॥
नचंत बजि तीछनं चलंत चाचरी कृतं।
लिखंत लीक उब्बियं सुमंत कुंडली करं॥
उडंत धूर भूरियं खुरीन निर्दलीं नभं।
पड़ंत भूर भौंरनं सुभौर ठौर जूँ जलं॥

इन पद्यों में आये हुए अलंकारों की व्यंजना भी देखने योग्य है। इस वीरता की व्यंजना प्रहस्त और रावण के युद्ध में और भी निखर उठी है।

युद्ध का वर्णन तो बहुत ही चमत्कारपूर्ण शब्दों में हुआ है। पंजाबी बोली से मिश्रित रचना में भी यह विशेषता देखने योग्य है—

दोहीं धौंस बजाई संघर मच्चिआ। बाहि फिरं बैराईं तुरे ततारचे॥
हूराँ चित्त बधाई अम्बर पूरिया। जोध्याँ देखन ताईं हूले होइयाँ॥

रावण का युद्ध-वर्णन भी जरा देख लिया जाय, क्योंकि इसी पर सब-कुछ निर्भर है—

धायो कर क्रुद्धं सुभट विरुद्धं गलित सुबुद्धं गहि बाणं।
कीनो रण शुद्धं नचत कबंधं अति धुनि उद्धं धनु तानं॥
धाए रजवारे दुधर हँकारे सुव्रण प्रहारे करि कोपं।
धाइन तन रज्जे दु पग न भज्जे जन हर गज्जे पग रोपं॥

वीरता के इन वर्णनों में कोरा चमत्कार दिखलाने की प्रेरणा ही काम नहीं कर रही है, बल्कि श्री गुरु महाराज के हृदय की ज्वाला भी शब्दों का रूप लेकर सामने आ गई है।

अब हम वे रूप देखना चाहते हैं जिन्हें वाल्मीकि और तुलसी ने भी देखा है।

तुलसी के राम मर्यादा-पुरुषोत्तम हैं, वे सब कुछ जानते हैं। श्री गुरु महाराज के राम भी सर्वज्ञ हैं, अनादि और अनंत हैं। पीछे हम दशरथ के शब्दों में उसकी झलक देख चुके हैं। तुलसी के राम भी माता-पिता-भक्त, संत-रक्षक और परोपकारी हैं। गुरु महाराज के राम भी वही रूप लिये हुए हैं, इसकी झलक गोविन्द रामायण में सर्वत्र मिलेगी। देवताओं का कार्य-साधन और असुरों का विनाश ही श्री राम का मुख्य उद्देश्य था। इसकी पूर्त्ति के लिए ही राम को वन में जाना पड़ा। मन्थरा भी इसमें विशेष कारण नहीं है, वह तो माया के वशीभूत है। तुलसीदासजी ने भी मन्थरा का पक्ष यह कहकर बचा लिया है—

नामु मंथरा मंद मति चेरि कैकई केरि।
अजसु पिटारी ताहि करि गई गिरा मति फेरि॥

गुरु महाराज ने भी उसे इस लोक-निन्दा से बचा लिया है। वे कहते हैं—

मंथरा, गंधर्विणी ब्रह्मा पठी तिह काल।
बाज-साज सने चढ़ी सब शुभ्र धवल उताल॥

यहाँ मन्थरा के लिए एक गंधर्विणी भेजी गई जो उसके शरीर में प्रविष्ट हो गई; और तब वह सब साज-बाज देखकर एक सुन्दर महल पर चढ़ गई। फिर आगे का कार्य उसने साधन किया।

तुलसी के राम भी कई जगह विधि-वशता प्रकट करते हैं। उदाहरण के लिए यहाँ ऐसा ही एक स्थल यथेष्ट होगा।

मारीच मृग बनकर आया है। सीता जी उसे मँगवाना चाहती हैं।

श्रीराम उन्हें समझाते हैं। परन्तु वे यह भी जानते हैं कि आखिर यह सब माया का प्रपंच है। उन्हींके शब्दों में सुनिए––

सीय मृगा कहुँ कंचन को नहिं कान सुन्यो विधि नै न बनायो।
बीस बिसै छल दानव को बन मैं जिह आन तुम्हैं बहकायो।
प्यारी को आयसु मेटि सकै न बिलोक सिथा कहुँ आतुर भारी।
बाँध निषंग चले कटि सौं कहि भ्रात इहाँ करिजै रखवारी॥

क्या इन शब्दों में गुरु महाराज ने श्री राम के पूर्ण-पुरुष होने का संकेत नहीं कर दिया ? श्री राम जानते हैं कि यह प्रपंच है। परन्तु प्रकृति आखिर प्रकृति है। उसे पुरुष से स्नेह है। और पुरुष ? वह भी तो प्रकृति के इशारों पर नाचना चाहता है, भले ही उसे कुछ दुःख क्यों न उठाना पड़े। यदि प्रकृति पुरुष पर विजय न पा सकी तो उसका प्रकृतित्व ही क्या रहा ? इसी में तो उसकी विजय है।

श्री राम के चरित्र के साथ-साथ ऊपर दिये हुए पद्यों में सीता के नारी रूप का भी स्पष्ट पता चल जाता है। सीता आखिर नारी है। भले ही वह माया हो, पर प्रकृत रूप में तो वह केवल नारी है। उसे भी मान करना आता है। वह भी स्वर्ण-मृग के लिए आतुर हो सकती है, और उसे लेने का आग्रह कर सकती है। अंत में उसकी विजय होती है, भले ही वह विजय कितनी ही मँहगी क्यों न पड़ी हो।

आइए, जरा और पात्रों को छोड़कर रावण पर भी दृष्टि डालें। वाल्मीकि का रावण पंडित है, ज्ञानी है; परन्तु दोष है तो यह कि वह अभिमानी है। तुलसी के रावण का तो कहना ही क्या ! वह तो नीच, पतित, दुराचारी सभी कुछ है। परन्तु गुरु महाराज का रावण लंकेश है। वह अभिमानी भी है तो पूर्ण है; परन्तु वह तुलसी के रावण की तरह केवल दूसरों के कहने में आनेवाला नहीं। वह अपने भरोसे सब काम करनेवाला है।

रावण की सभा में अंगद पहुँचा है। दोनों की बात-चीत हो रही है—

देहु सिया दसकंध, छाँहि नहिं देखन पैहो।
लंक छीन लीजिए, लंक लखि जीत लजैहो॥
क्रुद्ध विषै जिन घोर, पिख्ख कस जुद्ध मचैहै।
राम सहित कपि कटक आज मृग स्यार खवैहै॥
जिन करसु गर्व, सुन मूढ़-मति, गर्व गँवाय घनेर घर।
बस करे सर्व घर गर्व हम ए किन मंहिं द्वै दीन नर॥

इनमें पहले अंगद की उक्तियाँ और तब रावण के दिये हुए उत्तर हैं। रावण कहता है—

अगनि पाक कहुँ करै पवन मोर बार बुहारै।
चँवर चंद्रमा धरै सूर छत्रहिं सिर ढारै॥
मद लच्छमी पियाव बेद मुख ब्रह्म उचारत।
वरुण वारि नित भरे और कुल देव जुहारत॥
निज कहत सुबल दानव प्रबल देत धनद जछ मोहिं कर।
वे युद्ध जीतने जाहिंगे कहाँ दोइ ते दीन नर॥

कितनी गर्वोक्ति है इन शब्दों में! रावण भी आखिर राजा है। उसके सामने यह साधारण अंगद कपि उसके शत्रु के गीत गा जाय? नहीं, उसे यह असह्य है। इसी मर्यादा की रक्षा गुरु महाराज के रावण में हम पूर्णतया पाते हैं। रावण और मंदोदरी के संवाद में यह तत्त्व और भी स्पष्ट हो जाता है।

अंगद बात-चीत करके लौट आया है। परन्तु वह अकेला नहीं आया, उसके साथ रावण का भाई विभीषण भी आया है। यह श्री राम की पहली जीत है। श्री राम इससे लाभ उठाना अच्छी तरह जानते हैं; इसलिए आते ही वह उसे 'लंकेश' शब्द से संबोधित करते हैं। मनोवैज्ञानिक तथ्य के अनुसार भेद जानने का पहला साधन यही है कि किसी को उसकी इच्छा से अधिक सम्मान दिया जाय। श्री राम चाहे अवतार हों, परन्तु उन्हें भी लीला तो करनी ही है। इसी लिए वे कहते है—

कहि बोल्यो लंकेश ताहि प्रभु राजिव-लोचन ।
कुटिल अलक मुख छके सकल संतन दुख-मोचन ॥
कुपे सकल कपिराज विजै पहली रण चख्खी ।
फिरे लंक गढ़ घेरि दिशा दच्छनी परख्खी ॥

श्री राम के 'लंकेश' कहने पर पहले तो कपिराज सुग्रीव आदि गुस्से हुए; पर फिर समझ लिया कि यह भी एक राजनीतिक चाल है और युद्ध की पहली विजय है। मनोवैज्ञानिकता के आधार पर सुग्रीव आदि के मन में इस प्रकार के भावों का उदय दिखाकर कवि ने अपना कर्त्तव्य पूर्णतया निभाया है, और किसी शंका के लिए स्थान नहीं छोड़ा।

अभी पिछले दिनों पटियाले में राम-लीला हो रही थी। जब शूर्पणखा और राम के संवाद का प्रसंग आया, तब एक महाशय, जो शायद डाइरेक्टर कहलाते थे, आये और विशेष रूप से उस दिन का दृश्य देखने का आग्रह करते हुए बोले—"आनन्द जी,आज हम एक कमाल दिखा रहे हैं। जनता के सामने, पूरी रोशनी डालकर, और धीरे-धीरे शूर्पणखा की नाक कटने का दृश्य दिखावेंगे; अतः आप आज अवश्य चलिए"। मैं ऐसी जगहों में जल्दी नहीं जाता, जहाँ राम-चरित के नाम पर मनमाने नाटक खेले जाते हों; तो भी मैं वहाँ पहुँचा। मैंने उनका कहना ठीक पाया। नाक धीरे-धीरे काटी गई, भले ही पीछे से मुझे यह पता चल गया कि शहर में एक ऐसा लड़का है, जिसकी स्वतः ही किसी कारण पहले से नाक गायब है। शायद उसी पर मोम आदि लगाकर यह प्रपंच दिखाया गया हो। परन्तु मैं जानना चाहता था कि क्या सचमुच नाक काटी गई थी? क्या लक्ष्मण की वीरता की सीमा यही थी? तब मैंने अपना उत्तर गोविन्द रामायण में पाया। वह उत्तर कितना ठीक और मनोवैज्ञानिक है, यह पढ़ते ही पता चल जायगा।

श्री राम की सुन्दरता पर मोहित होकर शूर्पणखा आई थी। बहुत बातें हुईं। श्री राम ने उसे कुछ समझा दिया। वह बेचारी अपना-सा मुँह लेकर लक्ष्मण के पास पहुँची। परन्तु लक्ष्मण आखिर लक्ष्मण हैं; उन्होंने भी उसे

स्वीकृत नहीं किया। यहीं उसकी नाक कट गई! सुन्दरता का गर्व मिट्टी में मिल गया!

जात भई सुनि बैन त्रिया तहँ। बैठ हुते रणधीर जती जहँ॥
सो न बरे अति रोष भरी तब। नाक कटाय गई गृह को सब॥

लक्ष्मण के चरित्र की, विशेषतया उनके 'जती' होने की रक्षा तो इसी तरह हो सकती थी। तलवार से स्त्री की नाक काटकर 'जती' बने रहना कोई अच्छी बात नहीं। सुन्दरता को कुरूपता में बदलकर अगर कोई अपने को बचा सकता है, तो यह बात साधारण चरित्रों में भी मिल जाती है। परन्तु सुन्दरता होते हुए भी उसकी ओर आकर्षित न होना, यही तो योग है। लक्ष्मण इतने निर्बल नहीं थे कि इन्द्रिय-दमन न कर सकते। यदि ऐसा ही होता तो वह वन में आते ही क्यों? इस तरह उनका चरित्र आदर्श ही चित्रित किया है। साथ ही एक भ्रम भी दूर कर दिया है।

इसी प्रकार उन्होंने कई चरित्र प्रस्तुत किये हैं जो सभी तरह से पूर्ण हैं। आगे श्री गुरु महाराज ने प्रायः वे सभी घटनाएँ ली हैं जो अन्य रामायणों में मिलती हैं, जैसे-सीता की अग्नि-शुद्धि, अयोध्या-प्रवेश, राम-राज्य आदि। परन्तु इतना तो मानना ही पड़ेगा कि इन सब बातों में उन्होंने आदर्श हिन्दुत्व-भावना की पूर्ण रक्षा की है।

श्री गुरु महाराज की रचनाओं में आये हुए बहु-विध अलंकारों और छन्दों की विशेषता पढ़ने और देखने लायक है। उनके छन्दों के रूप जानने के लिए तो कई पुराने ग्रन्थ देखने पड़े। छन्द-शास्त्र के इच्छुकों की सुविधा के लिए छन्द-परिचय भी साथ दिया जाता है।

इन सब बातों का अभिप्राय यही है कि जहाँ गुरु महाराज की रचनाओं में उनके कवि-कर्म की सार्थकता और सफलता लक्षित होती है, वहाँ यह भी ज्ञात हो जाता है कि आज के युग में भी भ्रम में पड़े हुए लोगों को मार्ग बतलाती हुई ये रचनाएँ इस बात की ओर संकेत करती हैं कि सिख-धर्म

और हिन्दुत्व में मूलतः कोई अन्तर नहीं। वह उसी का एक अंग है; और अंगों का काम सदा अंगी की रक्षा करना होता है। समय समय पर होनेवाली बाधाओं से इस अंग ने भी सदा अंगी (हिन्दुत्व) की रक्षा की है, इसकी साक्षी इतिहास दे रहा है। इधर कुछ दिनों से इस अंग को अंगी से पृथक् करने के जो प्रत्न चल रहे हैं, वे हमारे भूत-पूर्व शासक अँगरेजों की ही कृपा के फल हैं।

मेरे विचार में यह पुस्तक अंगी और अंग को मिलानेवाली एक कड़ी है, जिसे हिन्दी जगत के सामने लाने के लिए सन्त इन्द्रसिंह जी विशेष धन्यवाद के पात्र हैं। उनका यह कार्य अत्यन्त प्रशंसनीय है। संत जी ने इसकी भूमिका लिखने का कार्य मुझे सौंपकर—इस पावन यज्ञ में से पुण्य का कुछ भाग देकर—मुझे कृतार्थ किया, इसके लिए मैं उनका कृतज्ञ हूँ। यदि मेरी इन पंक्तियों से हिन्दी साहित्य कुछ प्रेरणा पा सका, और किसी तरह का कुछ भी लाभ उठा सका तो मैं अपना प्रयत्न सफल समझूँगा। इन पृष्ठों के लिखने में सहायता देनेवाले अपने प्रिय शिष्य अरविन्द मुखर्जी और प्रदीप मुखर्जी को तथा कुमारी स्वर्णलता सेठ और कुमारी कृष्णा सेठ को धन्यवाद देना भी जरूरी है। मैं इन लोगों का विशेष कृतज्ञ हूँ।

आनन्द कुटीर
लाल बाग, पटियाला
आश्विन शुक्ला प्रतिपदा
सं० २०१०

ओमप्रकाश आनन्द

दो शब्द

साहित्य की निधि वे ही पुस्तकें हुआ करती हैं, जिनमें स्थायित्व और प्रेरक शक्ति विद्यमान हो। हिन्दी साहित्य में श्री रामचरित मानस ऐसी ही पुस्तक है। श्री राम का पावन चरित अनेक कवियों ने मुक्त कंठ से गाया है, पर जो सम्मान राम-चरित मानस को प्राप्त है, वह औरों को नहीं। गोविन्द-रामायण में भी काव्यत्व और सरसता की दृष्टि से बहुत सी बड़ी बड़ी बातें ढूँढी जा सकती हैं। कहीं-कहीं तो यह अपना एक निजी और विशेष रूप लेकर भी चली है, ऐसा मेरा विश्वास है।

श्री गुरु महाराज का युग विकट संघर्ष का युग था। उस समय की परिस्थितियाँ देखते हुए ऐसे लोक-नायक की भावनाओं से ओत-प्रोत काव्य का सृजन—जिसमें हमारे अपनेपन का चित्र और उसकी विशेषताएँ झलकती हों तथा उसके भाव-रंगों पर पड़ी हुई धूल साहसिक वर्णन-कौशल और पद-रचना द्वारा दूर करने का प्रत्यत्न किया गया हो—उचित ही है। श्री गुरु महाराज ने भी सुप्त भावनाओं को जगाने के लिए पतित-पावन श्रीराम का ही चरित्र लिया है; और विशेष कर उन्हें दुष्ट-दल-दलक के रूप में चित्रित किया है। यही कारण है कि गोविन्द रामायण में जहाँ कहीं किसी राक्षस से युद्ध का वर्णन आया है, वहाँ उसका ख़ूब ही वर्णन हुआ है। ऐसे स्थल गोविन्द रामायण में जगह-जगह मिलेंगे। देखा जाय तो यह ऐसी भावनाओं से संघर्ष था, जिन्हें हम आसुरी भावनाएँ कह सकते हैं। गुरु महाराज ने हर जगह आसुरी भावनाओं पर दैवी भावनाओं की विजय दिखाई है, क्योंकि वे नहीं चाहते थे कि औरंगजेब का राज्य स्थिर रह सके और तापस वेष में रहनेवाले मुक्त पुरुषों को भी ऐसे शासकों के हाथों अपमानित होना पड़े। अतएव उस सोई हुई भारतीयता की वीर भावना को जगाना उन्होंने अपना कर्त्तव्य समझा; और इसी लिए ऐसे चरित्र की विशेषताएँ सामने देखते हुए श्री राम को ही

चुना। यह बात नहीं कि राम को ही चुना हो, बल्कि चण्डी-चरित्र और विचित्र नाटक आदि में भी यही स्वर सुनाई देगा। यों गुरु महाराज ने श्री कृष्ण-चरित्र और भी अधिक विस्तार से गाया है। उसमें उनके काव्यत्व का निखार और भी ऊँचा हो गया है। हाँ श्री कृष्ण पर केवल ब्रज की दृष्टि काम करती है; परन्तु उनके राम के प्रत्येक काम पर त्रिलोकी की दृष्टि रहती है।

वे वीर रस के उपासक और उसी की टंकार सुनने के अभ्यस्त थे। इसी लिए ऐसे रीति-काल के समय भी, जब कि अन्य कवि मुग़ल दरबारों में पड़े पड़े कामिनियों की संभोग-दशा से शिथिल साँस-उसाँसों का वर्णन करने में अपने को धन्य समझ बैठे थे, श्री गुरु महाराज ने ऐसे शासकों को, जो अत्याचार के बल पर शासन करना चाहते थे, अपनी तलवार द्वारा, और ऐसे कवियों को जो उस शासन में अपने को धन्य समझ बैठे थे, अपनी लेखनी द्वारा सावधान किया है, और सही मार्ग की ओर संकेत किया है। सिक्ख समाज में तो यह भावना मंत्र का काम कर रही है। सिक्ख जाति ने कभी ताल और स्वर में विलासिता के गीत गाने को प्रोत्साहन नहीं दिया। हाँ ताल उसके पास भी हैं, स्वर उसके पास भी हैं; परन्तु या तो उनसे भक्ति का स्रोत बहाया जा सकता है या रण-वाद्य बजाये जा सकते हैं। इसी लिए उसके स्वरों में "सत्य श्री अकाल" और "वाहि गुरु जी की फतह" का स्वर गूँजता है। उसे सदा ऐसे ही साहित्य से प्यार रहा है, जिसमें ये सभी विशेषताएँ हों।

यह दृष्टि-कोण सामने रखकर यह गोविन्द रामायण हिन्दी जगत के सामने रख रहा हूँ। यद्यपि इसकी देव नागरी प्रतिलिपि के समय अनेक आपत्तियों और दैवी बाधाओं का सामना करना पड़ा, परन्तु उत्साह को ही मूल-मंत्र समझकर इसमें लगे रहना मैंने अपना कर्त्तव्य समझा।

पहले तो यही कठिनाई थी कि पंथी ज्ञानियों तक ने इस रचना में आये हुए शब्दों के अर्थ के बदले अनर्थ कर दिये थे; या मनमाने अर्थ लगाकर इसे अपने ही तक सीमित बना लिया था। कहीं-कहीं तो ऐसी मजेदार कल्पना है कि पढ़कर हँसी आती है। जैसे—

काम को दंड लिए कर केकई वानर ज्यों नृप नाच नचावै ।

इस पद्य में आये हुए – 'काम को दंड' के स्थान पर एक ज्ञानी जी ने 'काम-कोदंड' समझकर उसका अर्थ 'धनुष' करके अपने अज्ञान के धनुष द्वारा सरसता की हत्या करने का प्रयत्न किया, यद्यपि बन्दर को नचाते समय मदारी को धनुष की आवश्यकता नहीं। इसी तरह एक अच्छे ज्ञानी जी ने एक पद्य का और भी सुन्दर अर्थ किया है।

राजा दशरथ को पश्चात्ताप हो रहा है और वह स्त्रियों के कारण उत्पन्न दोषों का वर्णन कर रहे हैं—अकंग कंगे अभंग भंगे। ज्ञानी जी ने लिख दिया—"इन्हाँ सत्रीआँदे कारन अकंगाँ नूँ कंगिआ गिया ते अभंगा नूँ भंगिआ गिआ (अकंगों को कंगा गया और अभंगों को भंगा गया)। बतलाइए, यदि आप ही कुछ समझ पाये हों। यदि अर्थ ही समझ में आ गया तो रचना-कौशल का क्या महत्त्व रहा! यदि पहेली न बन जाय तो रचना ही क्या! लेखनी के ऐसे ही धनियों ने जगह-जगह बाधा दी। पर इन अड़चनों को भी दूर तो करना ही था। इसके लिए कई ग्रंथ (जैसे—महान् कोष, गुरुमत निघंटु आदि) देखने पड़े। सब से बढ़कर इन कठिनाइयों को दूर करने का श्रेय है श्री ओमप्रकाश जी 'आनन्द' को, जिन्होंने स्थान-स्थान पर फिसलने से रोका है और पूरी छान-बीन करके शुद्ध अर्थ लिये हैं।

पुस्तक में अनेक छन्द आये हैं। कई छन्दों से तो हिन्दी पाठक परिचित हैं ही, परन्तु कई नये छन्दों का ज्ञान भी उन्हें हो सकेगा, यह भी मुझे विश्वास है। छन्दों से सम्बन्ध रखनेवाली पुस्तकों की खोज में कई लाइब्रेरियों में जाना पड़ा। ढूँढ़कर उनके लक्षण लिखने पड़े, और लक्षणों के अनुसार कहीं-कहीं एक-आध अक्षर या मात्रा को ऊँचा-नीचा भी करना पड़ा है। परन्तु वह भी श्री गुरुदेव की आज्ञा से। पुस्तक के प्रारम्भ में ही उन्होंने लिख दिया है—

भूल कहीं हमरी लहियो, सुकवे तहँ वर्ण बना कहियो ।

प्रथम तो ऐसा हुआ ही नहीं; और अगर कहीं आवश्यकता भी पड़ी है तो वह छंद्-शुद्धि की दृष्टि से मात्रा को घटा बढ़ाकर पूरा कर लिया गया है।

मुझे यह पुस्तक हिन्दी जगत को सौंपते हुए हर्ष, भय और संकोच हो रहा है। हर्ष इसकी विशेषता का है। पर साथ ही भय है कि क्या इसे भारती मन्दिर अपने यहाँ थोड़ा-सा भी स्थान देगा ? संकोच है तो यही कि मैं इस फटी पुरानी झोली में से सुदामा के तन्दुल ही ला रहा हूँ। देखूँ हिन्दी-जगत कृष्ण उसे चबाकर उसका रस लेता है या नहीं। हाँ अगर इन फीके चावलों में भी कुछ सरसता समझी गई तो सुदामा निहाल हो जायगा। 'इन्द्र' का काम वर्षा करना है, भले हो उसकी बूँद केले में गिरे या साँप के मुख में या सीप में। पर इसमें उसका दोष नहीं। अगर बूँद लेनेवाला साँप है तो विष ही बनावेगा; सीप है तो मोती ही और केला है तो कपूर ही बना सकेगा।

यहाँ मैं अपने प्रिय मित्रवर श्री ओम्प्रकाश आनन्द जी को धन्यवाद दिये बिना नहीं रह सकता, जिन्होंने मुझे इस पवित्र काम में हर तरह की पूरी सहायता दी है। उन्होंने मेरी हर कठिनता को सरलता में बदला है और पुस्तक को यथा-संभव ठीक और सरस बनाने का यत्न किया है। मित्रता और प्रियत्व के नाते मैं जो अधिकार चाहता था, वह उन्होंने मुझे पूरी तरह से दिया, इसके लिए मैं उनका कृतज्ञ हूँ।

अन्त में मैं श्री रामचन्द्र वर्मा जी का भी हार्दिक धन्यवाद करता हूँ जिन्हें मेरे कारण अनेक असुविधाएँ भी हुई हैं; पर उन्होंने प्रेम को सदा सामने रख कर उन्हें सुविधाएँ ही समझा है, और प्रस्तुत रूप में इसके प्रकाशन की व्यवस्था तथा प्रूफ आदि का संशोधन करके मुझे जहाँ इस कष्ट से बचाया, वहाँ मुझे सदा के लिए कृतज्ञता के भार से लाद दिया है। शायद यह भार कभी उतर नहीं सकेगा। हाँ अगर हिन्दी संसार ने इसकी कुछ भी कदर की तो यह प्रयास सफल समझा जायगा।

पंजाबी विभाग, पटियाला।
आश्विन शुक्ला २, संवत् २०१०

सन्त इन्द्रसिंह चक्रवर्ती

छन्द-परिचय

इस पुस्तक में दोहे, चौपाई, कवित्त आदि साधारण छन्दों के अतिरिक्त जो और अनेक कम प्रचलित छन्द आये हैं, उनके नाम और लक्षण, पाठकों के सुभीते के लिए, यहाँ दिये जाते हैं।

अजबा—प्रत्येक चरण में एक मगण और एक गुरु।

अनका—दे० 'कुसुम-विचित्रा'।

अनाद—प्रत्येक चरण में मगण, यगण, गुरु और लघु। इसे 'वाणी' भी कहते हैं।

अनूप नराच—पंचचामर का एक भेद या रूप। प्रत्येक चरण में ज, र, ज, र, ज और गुरु होता है।

अमृत गति—प्रत्येक चरण, में १२ मात्राएँ, अंत में नगण। इसका दूसरा रूप त्वरित गति भी है, जिसमें प्रत्येक चरण में न, ज, न, गु, होते हैं।

अरूपा—प्रत्येक चरण में यगण, गुरु (।SS, S)। इसे क्रीड़ा भी कहते हैं।

अर्ध-नराच—प्रत्येक चरण में जगण, रगण और तब लघु और गुरु। इसे प्रमाणिका भी कहते हैं।

अर्ध-भुजंगी—दे० 'रसावल'।

अलका—दे० 'कुसुम-विचित्रा'।

उगाध—दे० 'तिलकड़िया'।

उटंकन—प्रत्येक चरण में सात रगण, एक गुरु। १२ अक्षरों पर यति।

उल्लास—दे० 'कलस'।

कलस—दो छन्दों (जैसे चौपाई और त्रिभंगी या त्रिभंगी और नित्या) के मेल से बननेवाला एक मिश्र छन्द।

कुसुम-विचित्रा—एक प्रकार का वर्ण-वृत्त जिसके प्रत्येक चरण में क्रम से नगण, यगण, नगण और यगण होते हैं। इसे 'अलका' भी कहते हैं।

क्रीड़ा—दे० 'अरूपा'।

गीता मालति—(१) प्रत्येक चरण में २८ मात्राएँ, १४ पर विश्राम; अन्त में रगण।

(२) १६–१२ पर यति, अन्त में रगण होता है। इसे गीत मालति भी कहते हैं।

चाचरी—प्रत्येक चरण में एक यगण। इसे 'शशि' भी कहते हैं।

चौबोला—प्रत्येक चरण में १५ मात्राएँ। पर कहीं-कहीं कुछ अधिक मात्राएँ भी मिलती हैं। इसमें कभी-कभी चार-चार भाषाओं के भी शब्द आते हैं और कभी-कभी एक ही शब्द चार-चार बार भी आता है।

तिलकड़िया—प्रत्येक चरण में एक जगण और दो गुरु (।ऽ।,ऽ,ऽ) होते हैं। इसे उगाध और यशोदा भी कहते हैं।

तिलका—दे० 'तिलकड़िया'।

तोटक—प्रत्येक चरण में ४ सगण।

त्रिभंगी—प्रत्येक चरण में १०, ८,८ और ६ के विश्राम से ३२ मात्राएँ। इसमें जगण नहीं रखते और अन्त में गुरु रखते हैं। प्रायः अनुप्रास का विशेष ध्यान रखा जाता है।

पद्धरि—चार चरणों का एक छन्द, जिसके प्रत्येक चरण में १६ मात्राएँ होती हैं। अन्त में जगण रहना आवश्यक होता है। इसे पद्धटिका तथा प्रज्वलय भी कहते हैं।

पाधड़ी—दे० 'पद्धरि'।

प्रमाणिका—दे० 'अर्ध-नराच'।

बहड़—प्रत्येक चरण में २१ मात्राएँ; अन्त में जगण।

मकरा—भिन्न-तुकान्त छन्द; प्रत्येक चरण में १२ मात्राएँ।

मोदक—दे० 'मोहिनी'।

मोहिनी—प्रत्येक चरण में १६ मात्राएँ; आदि में सगण और अन्त में मगण होना चाहिए। पर कहीं-कहीं आदि में सगण नहीं भी रहता। (कुछ लोग कहते हैं कि इसका दूसरा नाम 'मोदक' भी है। परन्तु छन्द-प्रभाकर में कहा है कि मोदक के प्रत्येक चरण में चार भगण होते हैं।)

यशोदा—दे० 'तिलकड़िया'।

रसावल—प्रत्येक चरण में दो यगण (।ऽऽ, ।ऽऽ)। इसे अर्ध-भुजंगी भी कहते हैं। कुछ लोग दूसरे यगण की जगह मगण भी रखते हैं। (कुछ लोग इसे २४ मात्राओं का मात्रिक छन्द मानते अर्थात् रोला को ही रसावल कहते हैं।)

वाणी—दे० 'अनाद'।

शशि—दे० 'चाचरी'।

सुखदा—प्रत्येक चरण में ८ मात्राएँ। अन्त में गुरु, लघु होता है; पर कहीं-कहीं इस नियम का पालन नहीं भी होता।

सुधि—दे० 'होहा'।

हुलास—दे० 'कलस'।

होहा—प्रत्येक चरण में एक जगण और एक गुरु। इसे 'सुधि' भी कहते हैं।

प्रणमन

हे त्याग-मूर्त्ति, बलिदान-पुंज ।
हे भारत के गौरव-निकुंज ॥
आनन्द-रूप, साहस अमन्द ।
जय-जय-जय श्री गुरु गोविन्द ॥

—'आनन्द' ।

। ॐकार श्री वाह गुरु जी की फतह ।

रामावतार

चौपाई

अथ मैं कहौं राम अवतारा। जैस जगत मो किया पसारा॥
बहुत काल बीतत भयो जबै। असुरन वंश प्रगट भयो तबै॥
असुर लोक बहु करैं विषादा। किनहूँ न तिन्हैं तनिक मैं साधा॥
सकल देव इकठे तब भये। छीर-सिंधु जहँ वह तहँ गये॥
बहु चिर वसत भए तिह ठामा। विष्णु सहित ब्रह्मा जिह नामा॥
बार बार ही दुखित पुकारत। कान परी कल सो धुनि आरत॥

श्री गुरु गोविन्दसिंह जी महाराज रामावतार का वर्णन करते हुए कहते हैं—"अब मैं रामावतार का वर्णन करता हूँ, जिसका इस सारे जगत् में पसारा (व्यापकता) है। बहुत दिन हुए, जब असुरों का वंश प्रकट हुआ, तो वे अनेक प्रकार से उपद्रव करने लगे; और कोई उन्हें हरा न सका। तब सब देवता इकट्ठे होकर क्षीर सागर पर गये, जहाँ विष्णु के साथ ब्रह्मा अनन्त काल से रहते हैं। वहाँ जाकर बारंबार करुणा भरी ध्वनि में पुकार की। उनकी करुण पुकार भगवान् के कानों में पहुँची।

तोटक छंद

बिसनादिक देव लखे बिसनं। मृदु हास करी कर काल धुनं॥
अवतार धरो रघुनाथ हरे। चिर राज करो सुख सों अवधे॥
बिसनेश धुनं सुन ब्रह्म मुखं। अब शुद्ध चली रघुवंश कथं॥
जुह छोर कथा कवि याहि कहै। इन बातन को इक ग्रंथ बढ़ै॥
तिसतें कहि थोरहि बीन कथा। बल तैं उपजी बुध-मेघ यथा॥
जहँ भूल भई हमतैं लहियो। सुकवे! तहँ वर्ण बना कहियो॥

उस परम पुरुष ने विष्णु आदि देवताओं को देखकर मंद-मंद हास किया। देवताओं ने स्तुति की—'हे हरे! रघुनाथ अवतार धारण करो, और चिर काल तक अयोध्या में राज्य करो। बस यहीं से शुद्ध रघु वंश की कथा आरंभ होती है। यदि कथा छोड़कर कवि केवल ऊपरी बातें कहता रहे, तो भी उनसे एक और ग्रंथ बन सकता है, इसी लिए बहुत संक्षेप में कहूँगा। जैसे बड़े बलवान में भी बुद्धि सूक्ष्म ही होती है, वैसे यह कथा विस्तार में होते हुए भी संक्षेप में कही जा रही है। परन्तु हे कवियो! यदि हमसे (श्री गुरु गोविन्दसिंह जी से) कहीं भूल हो गई हो तो वहाँ अक्षरों की रचना करके उसे ठीक कर लेना।

रघुराज भयो रघुवंश मणं। जिह राज कियो पुर औध घनं॥
सोउ काल जन्यो नृपराज जबै। भुविराज कियो अज राज तबै॥
अज राज हन्यो जब काल बली। सुनृपेति कथा दशरथ्थ चली॥
जिह राज कियो सुख सों अवधं। मृग मार विहार बने सुप्रभं॥
जग धर्म-कथा प्रचुरी तब तें। सुमित्रेश महीप भयो जब तें॥

रघु नाम के राजा रघुवंश के मणि (आदि पुरुष) थे, जिन्होंने अवधपुरी में बहुत दिन राज्य किया। जब वे काल के वश हुए (मर गये), तब पृथ्वी पर राजा अज ने राज किया। जब बलवान काल ने उनका भी अन्त कर दिया, तब से राजा दशरथ की कथा चली (राज्य आरम्भ हुआ)। राजा दशरथ ने सुख से अवध में राज्य किया। वह प्रति दिन शिकार आदि किया करते थे। वास्तव में इन्हीं दशरथ के कारण धर्म-कथा (रामायण) का संसार में प्रचार हुआ।

दिन रैन बनेसन बीच फिरै। मृगराज, करी, मृग नित्य हरै॥
इह भाँति कथा उह ठौर भई। अब राम-जनी पर बात गई॥

राजा दशरथ नित्य शेर, हाथी, मृग आदि का शिकार किया करते थे। अब हम राम की जननी (कौशल्या) की कथा कहते हैं।

कुहड़ाम जहाँ सुनिए नगरं। तहँ कोशल-राज नृपेश वरं॥
उपजी तिह धाम सुता कुशला। जिह जीत लई ससि अंश कला॥
सुधि पाय सुयम्वर जो करयो। अवधेश नरेशहिं तो वरयो॥
पुनि सैन सुमित्र नरेश वरं। जिह युद्ध लियो मद्र देश हरं॥
सुमित्रा तिह धाम भई दुहिता। जिह जीत लई ससि-सूर-प्रभा॥
भइ बुद्धि सुयम्वर की जब ही। अवधेशहिं चीन्ह बर्यो तब ही॥

कुहड़ाम * नगर में कोशल राजा राज्य करता था। उसके घर कौशल्या का जन्म हुआ। वह कन्या इतनी सुन्दर थी, मानो उसने चन्द्र-कला को भी जीत लिया हो। जब उसने सुधि (होश) सँभाली (अर्थात् वह सयानी हुई), तब उसका स्वयंवर रचाया गया। स्वयंवर में उसने अवधेश राजा दशरथ को वरण किया।

इसी प्रकार राजा सुमित्रसेन थे, जिन्होंने युद्ध में मद्र आदि देश जीते थे। उनके घर सुमित्रा नाम की कन्या उत्पन्न हुई। वह भी इतनी सुन्दर थी, मानो उसने चन्द्रमा और सूर्य की प्रभा को जीत लिया हो। जब उसके स्वयंवर का आयोजन हुआ, तब उसने भी अवधेश राजा दशरथ को ही वरण किया।

गण याहि भयो दुख और नृपं। जिह केकइ धाम सुता सुप्रभं॥
इन तें गृह मों सुत जौन भयो। तब बैठ नरेश विचार कियो॥
तब केकइ नार विचार करी। जिह तें ससि सूरज सोभ धरी॥

---

* गोरखपुर के सुप्रसिद्ध मासिक-पत्र 'कल्याण' में कुछ दिन पहले रघु और दशरथ के समय के कोशल देश के जो मान-चित्र छपे थे, उनमें कुड्हाम्र नामक नगर वहाँ की राजधानी के रूप में दिखाया गया था। हो सकता है कि गुरु महाराज ने उसी के विचार में 'कुहड़ाम' शब्द रखा हो। अथवा इसका साधारण अर्थ यह हो कि सारे नगर में कोहराम (शोर) मचा था कि कोशल-राज के घर एक कुशला (कौशल्या) कन्या उत्पन्न हुई है। और इस दृष्टि से कुहड़ाम शब्द श्लिष्ट भी हो सकता है।

तिह व्याहत माँग लिये दु वरं। जिह तें अवधेशन प्राण हरं ॥
समझी न नरेशहिं बात हिये। तब ही तिह को वर दोय दिये ॥

बस यहीं से आगे राजा को दुःख उठाना पड़ा। राजा के कोई पुत्र नहीं था; इसलिए यह सोचकर कि सम्भव है, केकयराज की पुत्री कैकेयी से ही पुत्र हो जाय, राजा दशरथ ने कैकेयी से व्याह करना चाहा। उधर चन्द्रमा तथा सूर्य की शोभा धारण करनेवाली कैकेयी ने भी कुछ विचार किया। उसने व्याह के समय ही दो वरों की याचना की। उन्हीं दो वरों ने यद्यपि राजा के प्राण हरे, परन्तु राजा दशरथ ने उस समय मन में इसका कोई विचार नहीं किया और उसे दो वर दे दिये।

पुनि देव अदेवन युद्ध भयो। तहँ युद्ध घणं नृप आप कियो।
हत सारथि स्यंदन नारि हँक्यो। यह कौतुक देख नरेश चक्यो ॥
पुनि रीझ दिये तिय दोउ वरं। मन मों सुविचार कछू न करं।
कहि नाटक मध्य चरित्र कथा। जय दीन सुरेश नरेश यथा ॥
अरि जीत अनेक अनेक विधं। सब काज नरेश्वर कीन्ह सिधं।

कुछ दिन बाद देवताओं और दानवों में युद्ध हुआ, जिसमें दशरथ ने भी देवों का साथ दिया और युद्ध में भाग लिया। दशरथ के रथ का सारथी मर जाने पर कैकेयी ने आप रथ चलाया। यह कौतुक देखकर राजा चकित हो गये। बस प्रसन्न होकर दोनों वर पक्के कर दिये, मन में कुछ भी विचार न किया। सभी शत्रुओं को अनेक प्रकार से जीतकर राजा ने कार्य सिद्ध किये। (गुरु गोविंदसिंह जी कहते हैं) अब हम नाटक के मध्य की कथा का वर्णन करते हैं।

दिन रैन विहारत मध्य वनं। जल लैन कुँ जाइ तहाँ श्रवणं।
पितु मात तजे दुइ अन्ध भुवं। गहि पात्र गयो जल लेन स्वयं ॥
मुनि नोदित काल सिधार तहाँ। नृप बैठ पतात्रत बंध जहाँ।
भभकंत घटे अतिनाद भवं। धुनि कान परी नर-राज तवं ॥

गहि पाणि सुबासहि तान घनं। मृग जानत जो शर शुद्ध हनं।
गिरयो सुलगे शर शुद्ध मनं। निसरी मुख तें हहकार धुनं॥
मृग-नाभि कहाँ नृप जाइ लहै। द्विज देखत ही कर दाँत गहै।

महाराज दशरथ दिन-रात वनों में ही विहार करते थे। एक बार वहाँ श्रवणकुमार अपने अन्धे माता-पिता को एक स्थान पर बैठाकर, और पात्र लेकर जल लेने के लिए गया। इधर मुनि द्वारा प्रेरित काल भी वहाँ आया, जहाँ राजा दशरथ शिकार की टोह में बैठे थे। श्रवण ने घड़ा भरा तो उसके भरने की आवाज राजा ने सुनी। बस चट धनुष-बाण हाथ में लेकर शर सन्धान किया, और मृग को जल पीने के लिए आया जानकर तीर चलाया। बेचारा शुद्ध-मन श्रवण तीर लगते ही गिर गया; और हाहाकार करने लगा। महाराज दशरथ मृग-नाभि (कस्तूरी) की इच्छा से जब वहाँ पहुँचे, तब एक ब्राह्मण कुमार को आहत देखकर दोनों हाथ दाँतों में दबा लिये।

श्रवण उवाच

कछु प्राण रहे तिह मध्य तनं। निकसंत कह्यो तब विप्र नृपं।
मोर तातरु मात विचक्ष परे। तिन पानि पिआउ नृपाध अरे॥

श्रवण ने, जिसके शरीर में अभी कुछ प्राण शेष थे, प्राण छोड़ते हुए राजा से कहा—हे राजा ! मेरे माता-पिता अन्धे हैं; उन्हें पानी तो पिला दो।

पद्धरि (पधड़ी) छंद

बिन चच्छ भूप दुहुँ तात मात। तिन देहु पानि तुहि करहु बात।
मम कथा न तिन कहियो प्रवीन। सुन मरैं पुत्र ते होहि छीन॥
इह भाँत जबै द्विज कहत बैन। चुइ चल्यो सुनत जल भूप नैन।
धिक्कार मोहिं जिन कीन कुकर्म। हत भयो राज अरु गयो धर्म॥
जब लयो भूप उह सर निकार। तब तजे प्राण मुनिवर उदार।

हे राजन् ! मेरे पिता और माता दोनों अन्धे हैं। जाकर उन्हें पानी

पिलाना; परन्तु कुछ बोलना नहीं। हे प्रवीण राजा ! मेरी यह मरण-कथा उनसे मत कहना; नहीं तो वे पुत्र से रहित होकर मर जायँगे।

इस तरह जब वह ब्राह्मणकुमार श्रवण बोल रहा था, तो यह वचन सुनकर राजा दशरथ की आँखों से जल बहने लगा। राजा ने अपने मन में कहा कि मुझे धिक्कार है जो मैंने यह कुकर्म किया। बस मेरा तो राज्य और धर्म सब नष्ट हो गया समझो। फिर राजा ने ज्यों ही वह बाण निकाला, त्यों ही श्रवण कुमार ने अपने प्राण छोड़ दिये।

पुनि भयो राव मन में उदास। गृह पलट जान की तजी आस।
जिय ठटी कि धरकर जोग भेस। कहुँ बसौं जाय बन त्याग देस॥
किह काज मोर यह राज साज। द्विज मार कियो जिस अस कुकाज।
इहि भाँति कही पुनि नृप प्रवीन। सब जगत काल करमै अधीन॥
अब करौं कछुहु ऐसो उपाय। जातें बचिहैं उह तात माय।

यह देखकर राजा दशरथ मन में बहुत दुःखी हुए, और उन्होंने घर जाने का विचार त्याग दिया। बल्कि यह निश्चय किया कि योगी बनकर और देश त्यागकर कहीं चला जाऊँ; क्योंकि वह राज-साज अब मेरे किस काम का, जिसके वश होकर मैंने ब्राह्मण को मारकर यह अनुचित कर्म किया। परन्तु यह सोचा कि यह सारा जगत काल के अधीन है। अब कुछ ऐसा उपाय करूँ जिससे श्रवण के माता-पिता के प्राण बच सकें।

भर लियो कुंभ सिर पर उठाय। तहँ गयो जहाँ द्विज तात माय॥
जब गयो निकट तिनके सुधार। तब देखि दुहूँ तिह पावचार * ॥

तब राजा ने घड़ा भरकर सिर पर उठा लिया, और वहाँ पहुँचे जहाँ श्रवण कुमार के माता-पिता थे। जब चुपचाप वहाँ पहुँचे, तब उन पवित्र मूर्तियों को देखा।

* पावचार=पावन या पवित्र आचरणोंवाले।

द्विज उवाच

कहु, कहहु पुत्र किमि लागि वार । सुन रह्यो मौन भूपति उदार ॥
फिर कह्यो काहि बोलत न पूत । चुप रह्यो राज लखिकै कुसूत ॥
नृप दियो पानि तिह पाणि जाय । चक रहे अंध तिह कर छुआय ॥
कर कोप कह्यो तू आहि कोय । इमि सुनत बैन नृप तुरत रोय ॥

अन्धा ब्राह्मण बोला—"कहो पुत्र ! इतनी देर क्यों लगी ?" राजा चुप रहा । जब फिर उसने पूछा—'पुत्र ! बोलता क्यों नहीं ?' तब भी बुरा समय (बोलने का अवसर नहीं है) देखकर चुप रहा, और चुपचाप जाकर जब उनके हाथों में पानी दिया, तब उन अन्धों ने राजा के हाथ छूकर आश्चर्य किया और गुस्से में बोले—"अरे तू कौन है ?" राजा की आँखों से आँसू बह निकले ।

राजोवाच

हौं सुत-घातक तव ब्रह्मणेश । जिह हन्यो श्रवण तव सुत सुवेश ॥
मैं पर्‍यो शरण दशरथ्थ राय । चाहो तु करो मोहिं विप्र आय ॥
राखै तु राख मारै तु मार । मैं पर्‍यो शरण तुमरे दुआर ॥
तव कहा तिनन दशरथ्थ राय । बहु काष्ट अग्नि द्वै दे मँगाय ॥
तब लियो अधिक कासठ मँगाय । चढ़ बैठे तहँ सलकड़ बनाय ॥
चहुँ ओरन दइ ज्वाला जगाय । द्विज जानि गई पावक सिराय ॥
तब योग अगिन तन तैं उपाज । दुहि मरण जरण को सजत साज ॥
वह भसम भये तिस बीच आप । तिह कोप दुहुन नृप दीन शाप ॥

राजा ने कहा—"हे ब्रह्मणेश, मैं पापी तुम्हारे पुत्र श्रवण का घातक हूँ; मैं दशरथ राजा तुम्हारी शरण में पड़ा हूँ। हे ब्राह्मण, मुझे जो चाहो, दण्ड दो। बचाओ चाहे मारो, मैं तुम्हारे द्वार पर पड़ा हूँ ।" उन्होंने कहा— "हे दशरथ, बस और कुछ नहीं चाहिए, केवल बहुत सी लकड़ियाँ मँगवा दो ।" बहुत सी लकड़ियाँ मँगाई गईं और दोनों अन्धे चिता पर चढ़कर बैठ गये । परन्तु जब

उसके चारों ओर आग लगाई गई तो आग भी ब्राह्मण को देखकर ठंढी पड़ गई। तब उन दोनों ने योग की अग्नि जलाकर अपने जल मरने का उपाय किया और जलते-जलते क्रोध से राजा दशरथ को शाप दिया।

ब्राह्मण उवाच

जिमि तजे प्राण द्विज सुत बिछोह। तिमि लगे शाप सुन भूप तोह ॥
इमि भाख जरो द्विज सहित नारि। तज देह कियो सुरपुर बिहारि ॥

ब्राह्मण बोला—"हे राजा! जिस तरह हमने अपने पुत्र के वियोग में प्राण छोड़े हैं, उसी तरह तुम्हें भी शाप लगे; अर्थात् तुम भी उसी प्रकार पुत्र-वियोग में प्राण छोड़ो"। यह कहकर वह अन्धा ब्राह्मण अपनी स्त्री के साथ जलकर शरीर त्यागकर स्वर्ग सिधारा।

राजोवाच

तब चही भूप हौं जरहुँ आज। कै अथित होइ तज राज साज ॥
कै गृह जइके करिहौं उचार। मैं द्विज आयो निज कर संहार ॥

राजा यह देखकर मन में कहने लगा—क्या करूँ? क्या यहीं जल जाऊँ? या राज्य छोड़कर अतीत* (त्यागी या साधु) हो जाऊँ? या घर जाकर यह बात कह दूँ कि मैं ब्राह्मण की हत्या कर आया हूँ?

देवबाणी उवाच

तब भई देव-बाणी बनाय। जिस कह्यो दूर दुख राव राय ॥
तव धाम होहिं सुपुत्र विष्णु। सब काज आज सिध होहिं जिष्णु ॥
ह्वैहै सुनाम रामावतार। करिहैं जे सकल जग को उधार ॥
करिहैं सु तनिक में दुष्ट नाश। इहि भाँति किरत करिहैं प्रकाश ॥

---

* सं० अतिथि से व्युत्पन्न, पुरानी हिन्दी का अतीत = त्यागी और साधु जो घूम-फिरकर भिक्षा-वृत्ति से निर्वाह करे।

नाराच छंद

न चिंत भूप चित्त धाम रामराय आइहैं।
दुरन्त दुष्ट जीत कै सुजैत पत्र पाइहैं॥
अखर्ब गर्ब जे भरे सु सर्ब गर्ब घाळहैं।
फिराय छत्र सीस पै छतीस छोन पालहैं॥
अखंड खंड खंड कै अदंड दंड दंडहैं।
अजीत जीत जीत कै बिशेष राज मंडहैं॥
कलंक दूर कै सबै निसंक लंक धाइहैं।
सुबीत बाहबी सगर्ब ईस को मिटाइहैं॥
सिधार भूप धाम को इतो न शोक को करो।
बुलाय बिप्र छोनि कै अरंभ जग्य को करो।

जब राजा इस प्रकार सोच रहे थे, तब आकाश-वाणी हुई जिसने राजा का दुख दूर किया। आकाश-वाणी ने कहा—हे राजन्! तुम्हारे घर में विष्णु स्वयं अवतार लेंगे और सब कामनाएँ पूर्ण करेंगे। उनके अवतार का नाम रामावतार होगा। वह सारे जगत का उद्धार करेंगे, दुष्टों का नाश करके अपनी कीर्त्ति का प्रकाश करेंगे। इसलिए तुम कुछ चिन्ता न करो। वह राम दुष्टों पर विजय प्राप्त करेंगे और अखण्ड राज्य करेंगे। जो लोग आज तक जीते नहीं गये, उन्हें भी वे जीत लेंगे और सभी कलंक दूर करके लंका का विनाश करेंगे। अतः हे राजन्! घर जाओ और राज्य के ब्राह्मणों को बुलाकर यज्ञ आरम्भ करो।

सुनंत बैन राव राजधानिए सिधारियं।
बुलाइ कै बसिष्ठ राजसूय को सुधारियं॥
अनेक देश देश के नरेश बोल कै लये।
दुजेश बेश बेश के छितेश धाम आ गये॥
अनेक भाँत मान कै दिवान बोल कै लये।
सुयज्ञ राजसूय के अरंभ ता दिना भये॥

सपाद्य अर्घ्य आसनं अनेक धूप दीप कै।
पखार पाँव ब्रह्मणं प्रदक्षिणा विशेष दै॥
करोर कोटि दक्षिणा द्विजेक एक को दई।
सुयज्ञ राजसूय की अरंभता दिना भई॥
नरेश देश देश के अनेक गीत गावहीं।
अनन्त दान मान लै विशेष शोभ पावहीं॥
प्रसन्न लोग जो भये सुजात कौन ते कहै।
विमान आसमान के पछान मौन ह्वै रहै॥
हुती जिती अपक्षरा चली सु स्वर्ग छोर कै।
विशेष हाव भाव कै नचंत अंग मोर कै॥
वि-अन्त भूप रीझहीं अनन्त दान पावहीं।
बिलोक अच्छरान के अपस्सरा लजावहीं॥
अनन्त दान मान दै बुलाइ सूरमा लये।
दुरन्त सैन संग दै दसो दिसा पठा दये॥
नरेश देश देश के नरेश पाँव पारयं।
महीश जीत कै सबै सु छत्र पत्र ढारयं॥

राजा दशरथ यह सुनकर राजधानी में लौट आये और वहाँ उन्होंने वसिष्ठ मुनि को बुलाकर राजसूय यज्ञ आरंभ किया। अनेक देश-देशान्तरों के राजा बुलाये गये। देश-विदेशों के सभी ब्राह्मण वहाँ आये। राजा ने अनेक प्रकार से उनका सम्मान किया। राजसूय यज्ञ आरम्भ हुआ। राजा ने ब्राह्मणों को पाद्य, अर्घ्य और आसन दिये तथा करोड़ों रुपए दक्षिणा के रूप में दान दिये। अनेक देशों के राजाओं ने दशरथ की प्रशंसा के गीत गाये। उन्होंने भी ब्राह्मणों को प्रसन्न किया। अहा! उस समय का वर्णन कैसे किया जा सकता है! सभी लोग प्रसन्न थे, आकाश पर विमान आकर मौन होकर यह सब देख रहे थे। उस राजसूय यज्ञ की आहुति स्वर्ग तक पहुँची। वहाँ से अप्सराएँ भी आ आकर विशेष हाव-भाव से नाचने लगीं और राजाओं से उन्होंने विशेष

मान प्राप्त किया। राजा ने अनेक सूरमाओं को बुलाया और उनके साथ बहुत बड़ी सेना देकर दसो दिशाओं में भेज दिया। बस फिर तो सभी राजाओं ने राजा दशरथ की अधीनता स्वीकृत कर ली और अपने-अपने छत्र मुकुट उनके पैरों पर रख दिये।

रुआमल छंद

जीत जीत नृपं नरेश्वर शत्रु मित्र बुलाय।
विप्र आदि वसिष्ठ सो लैके सबै रिषराय॥
क्रुद्ध जुद्ध करे घने अवगाहि गाहि सुदेश।
आन आन अवधेश के पायँ लागहीं अवनेश॥
भाँति भाँतिन दै लये सनमान आन नृपाल।
अरब खर्बन द्रव्य दै गजराज बाजि विशाल॥
हीर चीरन को सकै गिन जटित जीन जराय।
भाव भूषण को कहै विधि तें न जात बताय॥
पशम वस्त्र पितम्बरादिक दिए भूपन भूप।
रूप अनूप सरूप शोभित कौन इंद्र को रूप॥
दुष्ट पुष्ट त्रसै सबै थरहर्यो सुन गिरिराय।
काट काट न दे मुझे नृप बाँट बाँट लुटाय॥

इस प्रकार राजा दशरथ ने सभी राजाओं को जीत-जीतकर सभी शत्रु और मित्र बुला लिये और सभी ब्राह्मण तथा वसिष्ठ आदि ऋषिगण भी बुला लिये। जिन राजाओं को जीता था, वे सभी आ-आकर अवधेश के चरणों में नमस्कार करने लगे। अनेक प्रकार से उनका सम्मान किया गया। राजा ने बदले में उन्हें अरबों खरबों का द्रव्य तथा घोड़े और हाथी दिये। हीरों से जड़े हुए वस्त्रों का तो कहना ही क्या! भूषणों की तो कोई गिनती ही नहीं! उन्हें तो ब्रह्मा भी नहीं गिन सकता। रेशमी वस्त्र भी राजा ने बाँटे। उस समय राजा की शोभा इंद्र जैसी हो रही थी। यह सब देखकर दुष्ट लोग

घबरा गये और गिरिराज सुमेरु भी घबरा उठा कि कहीं राजा मुझे भी न बाँट दे।

वेद धुनि करकै सवै अस कीन जग्य अरंभ।
भाँति भाँति वुलाइ होमत नरित जान असंभ॥
अधिक मुनिवर जव कियो विधिपूर्व होम वनाय।
यज्ञकुंड तैं उठ्यो तवै यज्ञ पुरुष अकुलाय॥
खीर पात्र लै के दियो कर दीन नृप के आन।
भूप पाय प्रसन्न भयो जिम दारिद लै दान॥
चतुर भाग कर्यो तिसै निज पाणि लै नृपराय।
एक एक को दिए दुहुँ तिय एक को दुइ भाय॥
गर्भवंत भई त्रय तिया छीर को कर पान।
ताहि राखत भी भले दस दुइ मास प्रमाण॥
मास त्र्योदशमो चढ़यो तव संतन हेतु उधार।
रावण रिपु परगट भये जग आन राम अवतार॥

इसके अनन्तर सभी ब्राह्मणों ने वेद-ध्वनि करते हुए यज्ञ आरम्भ किया; और राजा के घर पुत्र न होने का ध्यान करके और भी अधिक आहुतियाँ दीं। इस प्रकार वहुत समय तक यज्ञ करने के वाद, यज्ञ-कुण्ड से यज्ञ-पुरुष आकुल होकर प्रकट हुए, और उन्होंने खीर का पात्र राजा दशरथ के हाथों में दिया। राजा ने भी वह खीर इस तरह ग्रहण की, मानो किसी कंगाल को धन मिला हो। राजा ने उसके चार भाग किये; और दो पत्नियों को एक-एक भाग तथा एक को दो भाग खाने के लिए दिये। ईश्वर की कृपा से वे तीनों गर्भिणी हुईं और तेरहवें महीने में सन्तों के रक्षक, रावण के शत्रु इस संसार में रामावतार लेकर प्रकट हुए।

भरत, लछमन, शत्रुघ्न, भए पुनि तीन राजकुमार।
भाँति भाँतिन वाजते नृपराज वाज दुआर॥

पाँइ लाग बुलाइ विप्र दीन दान दुरंत।
शत्रु नाशत होहिंगे सुख पाइहैं सब संत॥
लाल जाल प्रविष्ट ऋषिवर वाजि राज समाज।
भाँति भाँतिन देत भयो द्विज-पतिन को नृपराज॥
देश और विदेश भीतर ठौर ठौर महंत।
नाच नाच उठै सबै जनु आज लाग बसंत॥
किंकिणिन के जाल भूषित बाजि औ गजराज।
साजि साजि दिये द्विजेशन आज कौशल-राज॥
रंक राजन भए घने तहँ रंक राजन जैस।
राम जनमत भयो उत्सव औधपुर में ऐस॥
दुंदुभी औ मृदंग तुरही तरँग तान अनेक।
बीण बीण बजंत छीन प्रवीण बीण विशेष॥
झाँझवार, तरंग, तुरही, भेरि नादन यानि।
मोहि गिरे धरा ऊपर सर्व व्योम विमानि॥
यत्र तत्र विदेश देशन होत मंगलचार।
बैठ बैठ करै लगैं सब विप्र वेद विचार॥
धूप दीप महीप गेह सनेह देत बनाय।
फूल फूल फिरैं सबै गणदेव देवनराय॥

इसके बाद भरत, लक्ष्मण और शत्रुघ्न ये तीन राजकुमार उत्पन्न हुए। राजा के द्वार पर भाँति भाँति के बाजे बजने लगे। राजा दशरथ ने अनेक ब्राह्मणों तथा ऋषियों को बुलाकर बहुत-से घोड़े, हाथी साज-बाज के साथ दान दिये। ब्राह्मणों और ऋषियों ने आशीर्वाद दिया कि सब शत्रु नष्ट हों और भाग्य बढ़े। राजा के घर पुत्रों का होना सुनकर देश-विदेशों के सन्त महन्त खुशी से नाच उठे। ऐसा मालूम होता था कि आज वसन्त है। राजा ने बहुत दान दिया। सचमुच एक बार तो रंक भी राजा हो गये। अयोध्या में महान् उत्सव मनाया गया। कहीं दुंदुभियाँ, मृदंग और तुरहियाँ बजने लगीं,

कहीं वीणा आदि बाजे, तो कहीं झँझवार, तरंग और भेरियाँ बजने लगीं। उनकी मीठी ध्वनि से मोहित होकर देवताओं के विमान भी पृथ्वी पर उतर आये। सभी देशों में मंगलाचार होने लगा। ब्राह्मण वेद उच्चारण करने लगे और राजा दशरथ तथा सभी देवता फूले फूले फिरने लगे।

आज काज भए सबै इह भाँति बोलत बयन।
भूमि भूरि उठी जय-ध्वनि बाज बाजत गयन॥
अयन अयन धुजा बँधी सब बाट बंदनवार।
लीप लीप धरे मलय अगरु हाट पाट बजार॥
साज साज तुरंग कंचन देत दीनन दान।
मस्त हस्त दिये अनेकन इन्द्र द्विरद समान॥
किंकिणी के जाल भूषित दिये स्यंदन शुद्ध।
गायनन के पुर मनो इह भाँति आवत बुद्ध।
बाजि साजि दिये इते जिह पाइए नहिं पार।
दिवस दिवस बढ़ै लग्यो रणधीर राम अवतार॥

अयोध्या के सभी पुरवासी कहने लगे कि बस आज हमारी सभी कामनाएँ पूरी हो गईं। सारी पृथ्वी में जय-जयकार होने लगा। घर-घर बाजे बजने लगे, ध्वजाएँ फहराने लगीं और बन्दनवार बाँधे गये। बाजार, हाट और द्वार सभी अगर और चन्दन से लीपे गये। राजा ने दीनों को सोने के साजों से सजे हुए घोड़े दान किये; और मस्त हाथी, जो इन्द्र के हाथी को भी मात करते थे, दान किये। झालरोंवाले रथ और गायों के झुण्ड के झुण्ड दान किये। इस प्रकार नित्य दान होता था। इधर श्रीराम आदि सभी राजकुमार बड़े होने लगे।

शस्त्र शास्त्र की सबै विधि दीनि ताहि कुमार।
अष्ट द्यौसन मों गए लै सर्ब राम कुमार॥
बाण पाणि कमान लै बिहरंत सरयू तीर।
पीत पीत पिछोरका रणधीर चारहु बीर॥

देख देख नृपान के बिहरंत बालक संग।
भाँति भाँतिन के धरे तन चीर रंग तरंग॥

राजा ने उन्हें शस्त्र और शास्त्र की सब विधियाँ सिखलाईं। आठ ही दिन में सब विद्याएँ रामचन्द्र जी ने तथा और कुमारों ने भी सीख लीं। वे हाथों में धनुष बाण लेकर सरयू नदी के किनारे घूमने लगे। वे पीताम्बर पहने रहते थे। जब राजा दशरथ उन्हें दूसरे राजाओं के बालकों के साथ अनेक तरह के रंग-बिरंगे वस्त्र पहने हुए खेलते देखते थे, तो बहुत प्रसन्न होते थे।

ऐस बात भई तबै इत ओर बिश्वामित्र।
यज्ञ को करियो अरंभन तोषनार्थ सुपित्र॥
होम की लै बासना उठि धाय दैत दुरन्त।
लूट खावन सब समग्री मार कूट महन्त॥
लूटि खात हविष्य जे तिन पै कछू न बसाय।
ताक अवधहिं आए उत तें रोष कै मुनिराय॥
आइ भूपति को कहा सुत देहु मोकों राम।
नात्र तोकों भसम करिहौं आजही इह ठाम॥
कोप देख मुनीश को नृप पुत्र ता संग दीन।
यज्ञ मण्डप को चल्यो लै ताहि संग प्रवीण॥
एक मारग दूर है एक नेरि है सुनि राम।
राह मारत राच्छसी जिह तारका गण नाम॥
जौन मारग गति रहै तिह राह चलहू आज।
चित्त चिंत न कीजिए द्विज देव कै है काज॥

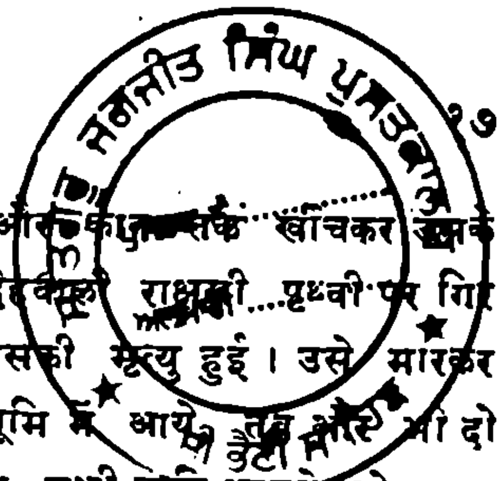
उन्हीं दिनों इधर एक बात यह हुई कि ऋषि विश्वामित्र ने पितरों की प्रसन्नता के लिए 'पितृ-तोष' नामक यज्ञ आरम्भ किया। हवन की सुगन्धि पाकर सभी राक्षस वहाँ आ पहुँचे और यज्ञ की सामग्री लूटकर खाने लगे, और साधु-महात्माओं को मारने-पीटने लगे। यह देखकर विश्वामित्र महर्षि

क्रुद्ध होकर अयोध्या में आये, और राजा दशरथ से बोले कि या तो मुझे अपने पुत्र दे दो; नहीं तो, तुम्हें यहीं भस्म कर दूँगा।

राजा दशरथ ने मुनि का क्रोध देखकर अपने दो पुत्रों को उनके साथ कर दिया। रास्ते में चलते हुए विश्वामित्र ने कहा—"राम ! एक रास्ता दूर का है और एक पास का। परन्तु पासवाले रास्ते में ताड़का राक्षसी और उसके गण रहते हैं।" राम ने कहा—"महर्षि ! जिस रास्ते से चलना चाहें, उस रास्ते से चलिए (जिन्हें मारने से आपका काम बनता हो, उन्हीं के रास्ते से चलें) मन में कोई चिन्ता न करें ; क्योंकि यह ब्राह्मणों और देवताओं (की भलाई) का काम है।"

वाट चाँपे जात हैं तब लौं निशाचर आन।
जाहुगे कित राम कहि मग रोकियो तज कान॥
देखि राम निशाचरी गहि लीन वाण कमान।
भाल मध्य प्रहारयो शर तान कान प्रमाण॥
वाण लागत ही गिरी बिसँभार देहि विशाल।
हाथ श्री रघुनाथ के भयो पापिनी को काल॥
ऐस ताहि सँहार कै कर यज्ञ मंडल मंड।
आइगे तब लौं निशाचर दीह दीय प्रचंड॥
भाजि भाजि चलें सबै रिषि टाड्यो हठि राम।
युद्ध क्रुद्ध कस्यो तिहूँ हित ठौर सोरह जाम॥
मार मार पुकार दानव शस्त्र अस्त्र सँभार।
वाण पाणि कमान को धर तब रतच्छ कुठार॥
घेर घेर दशो दिशानहिं शूर वीर प्रमाथ।
आइकै जूझे सबै रण राम एकल साथ॥

जब इस प्रकार बातें करते हुए ये लोग चले जा रहे थे, तब कई राक्षस वहाँ आ पहुँचे और कहने लगे—'अब तुम कहाँ जाओगे !' उन्होंने विश्वामित्र तथा श्री रामचन्द्र का रास्ता रोक लिया। राम ने राक्षसी (ताड़का) को



सामने देखकर हाथ में धनुष-बाण लिया, और कान तक खींचकर उसके माथे पर मारा। बाण लगते ही वह भारी देहवाली राक्षसी पृथ्वी पर गिर पड़ी। इस प्रकार श्री रघुनाथ के हाथों से उसकी मृत्यु हुई। उसे मारकर यज्ञ पूर्ण करने के लिए जब श्री राम यज्ञ-भूमि में आये, तब और भी दो भयंकर राक्षस वहाँ आ पहुँचे। उन्हें देखकर सभी ऋषि भागने लगे। राम ने उन्हें रोका और क्रोधित होकर वे उन राक्षसों के साथ युद्ध करने लगे। वह युद्ध सोलह पहर अर्थात् दो दिन तक चलता रहा। उधर राक्षस भी अपने-अपने अस्त्र-शस्त्र सँभालकर, लाल-लाल आँखें करके, कुल्हाड़े और धनुष-बाण लेकर 'मारो मारो' चिल्लाते हुए अकेले रामचन्द्र पर टूट पड़े।

रसावल छन्द

रणं पेख रामं। ध्वजं धर्म धामं॥
चहूँ ओर ढूके। मुखं मार कूके॥
वजे घोर वाजे। धुनं मेघ लाजे॥
झँडा गड्ड गाढ़े। मँडे वैर वाढ़े॥
कड़क्के कमानं। झड़क्के कृपाणं॥
ढला ढूक ढालै। चली पीत पालै॥
रणं रंग रत्ते। मनो मल्ल मत्ते॥
शरं धार वरषे। महेष्वास करषे॥
करी वाण वरषा। सुने जीत करषा॥
सुबाहू मरीचं। चले वांछ मीचं॥
इकै बेर टूटे। मनो बाज छूटे॥
लियो घेर रामं। ससं जेम कामं॥
घिर्‍यो दैत सैनं। जिमी रुद्र मैनं॥
रुके राम जंगं। मनो सिन्ध गंगं॥
रणं राम बज्जे। धुनं मेघ लज्जे॥

रुलैं तच्छ मुच्छं। गिरे सूर सुच्छं॥
चले पेंठ मूछैं। कहा राम पूछैं॥
अबै हाथ लागे। कहाँ जाहु भागे॥
रिपं पेख रामं। हन्यो धर्म धामं॥
करै नैन रातं। धनुर्वेद ग्यातं॥
धनुं उग्र करप्यो। शरं धार बरष्यो॥
हती शत्रु सैनं। हँसे देव गैनं॥
भजी सर्व सैनं। लखी मीच नैनं॥
फिर्यो रोप प्रेख्यो। मनो साँप छेख्यो॥
हन्यो राम वाणं। कस्यो सिंध पयानं॥
तज्यो राज देशं। लियो जोग भेषं॥
सुवस्त्रं उतारे। भगव वस्त्र धारे॥
बस्यो लंक वागं। पुनर्द्रोह त्यागं॥
सरोषं सुवाहं। चढ्यो लै सिपाहं॥
हठ्यो आन जुद्धं। भयो नाद उद्धं॥
शुभं सैन साजी। तुरे तुंद ताजी॥
गजा जूह गज्जे। धुनं मेघ लज्जे॥
ढका ढूक ढालं। सभी पीत लालं॥
गहे शस्त्र उट्ठे। शरं धार बुट्ठे॥
चहे अगन अस्त्रं। छुटे सर्व शस्त्रं॥
रँगे शोण ऐसे। चढ़े ब्याह जैसे॥
घने घाय घुम्मे। मदी जैस झुम्मे॥
रहे वीर ऐसे। फुलै फूल जैसे॥
हठ्यो दान-वेशं। भयो आप वेशं॥
बजे घोर बाजे। धुनं अभ्र लाजे॥
रथी नाग कूटे। फिरैं बाजि छूटे॥

खड़ा हुआ शंकर का धनुष तोड़कर सीता को हर ले जानेवाले तुम कौन हो ? बिना सच्ची बात कहे तुम्हारे प्राण नहीं बचेंगे। यदि सच न कहोगे तो यह कुल्हाड़े की धार गले पर सहनी पड़ेगी (मैं तुम्हें कुल्हाड़े से मार डालूँगा)। इसलिए भला इसी में है कि तुम युद्ध छोड़कर घर चले जाओ, लड़ाई में जूझकर मत मरो। यदि एक पल भी खड़े रहे तो मारे जाओगे।

जानत हौ अवलोकि मुहै हठि एक वली नहिं ठाढ़ रहैंगे।
तात गह्यो जिनके तृण दाँतन तेन कहा रण आज गहैंगे॥
धंव वजे रण खंभ गड़े गहि हाथ हथ्यार कहूँ उमहैंगे।
भूमि, अकास, पताल दुरैवे को राम कहो कहँ ठाम लहैंगे॥

क्या तुम नहीं जानते कि मुझे देखते ही तुम्हारा एक भी वीर खड़ा नहीं रहेगा ? भला जिनके बाप-दादों ने दाँतों में तृण लेकर (अर्थात् गौ की तरह दीन बनकर) मुझसे छुटकारा पाया था, वे क्या आज रण में शस्त्र पकड़ेंगे ? जब युद्ध के धौंसे बजने लगेंगे और मैं रण-क्षेत्र में खम्भे की तरह खड़ा हो जाऊँगा, भला उस समय हाथों में शस्त्र लेने की हिम्मत किसे होगी ? हे राम ! मुझे यह बतलाओ कि उस समय तुम्हें पृथ्वी, आकाश या पाताल में छिपने के लिए कहाँ स्थान मिलेगा।

कवि उवाच

यों जब बैन सुने अरि के तब श्री रघुवीर वली वलकाने।
सात समुद्रन लौं गरवे गिरि भूमि अकास दोऊ थहराने॥
जच्छ, भुजंग, दिशा विदिशान के दानव देव दुहूँ डर माने।
श्री रघुनाथ कमान लै हाथ कह्यो रिस कै किह पै शर ताने॥

कविवर श्री गुरु गोविन्दसिंह जी महाराज आगे का वर्णन करते हुए कहते हैं—जब राम ने अपने वैरी के इस प्रकार के वचन सुने, तब उन्होंने अपना बल दिखाया। फिर तो सात समुद्रों तक पर्वत हिल गये, पृथ्वी

और आकाश काँप उठे। सभी दिशा-विदिशाओं के यक्ष, सर्पराज, दानव और देवता डर गये। श्री रामचन्द्र ने कहा—अरे बतलाओ तो सही कि यह राम (अर्थात् मैं) अपने हाथों में धनुष लेकर, गुस्से में भरकर किस पर बाण चलावे ? (क्योंकि तुम ब्राह्मण हो; ब्राह्मण पर तीर चलाना क्षत्री का धर्म नहीं है।)

परशुराम उवाच

जेतक बैन कहे सुकहे जु पै फेरि कहै तु पै जीत न जैहों।
हाथ हथ्यार गहे सुगहे जु पै फेरि गहे तु पै फेरि न लैहो॥
राम रिसै रण में रघुबीर कहो भजिकै कत प्राण बचैहो।
तोरि शरासन संकर को हरि सीय चले घर जान न पैहो॥

परशुराम बोले—बस जो कहा, सो कह लिया। यदि वे ही शब्द फिर कहोगे तो जीवित नहीं जाने दूँगा। अब तक जो हाथ में शस्त्र ले लिये, सो ले लिये। परन्तु यदि फिर लोगे तो दोबारा लेने के लायक नहीं रहोगे। जब परशुराम रण में क्रोध करेगा, तब हे रघुवीर ! बतलाओ तो सही कि तुम भागकर कहाँ प्राण बचाओगे ? शिव जी का धनुष तोड़कर और सीता को हरकर तुम जाना चाहते हो ? यह नहीं होने पावेगा।

श्रीराम उवाच

बोल कहे सु कहे दुज जू जु फेरि कहै तु पै प्राण खवैहो।
बोलत ऐंठ कहा सठ जिऊँ सब दाँत तुराइ अबै घर जैहो॥
धीर तबै लहिहैं तुम कउ जब भीर परे इक तीर चलैहो।
बात सँभार कहो मुख तें इन बातन को अबहीं फल पैहो॥

परशुराम की बात सुनकर श्री रामचन्द्र ने कहा—देखो, जो कुछ कह लिया, वही बहुत है। यदि अब कुछ कहोगे तो अपने प्राण गँवाओगे। मूर्खों की तरह ऐंठकर क्यों बोलते हो ? मालूम होता है कि सब दाँत तुड़वाकर घर जाओगे। मैं तो तुम्हें तभी अच्छा योद्धा समझूँगा, जब भीड़ पड़ने (विकट समय आने) पर एक भी तीर चला सकोगे। जबान सँभालकर बातें करो, नहीं तो इन बातों का अभी फल पाओगे।

परशुराम उवाच

तऊ तुम्हि साँच लखौ मन मैं प्रभु जौ तुम रामवतार कहाओ।
रुद्र कुवंड विहंडिय जिऊँ कर तिऊँ अपनो वल मोहिं दिखाओ॥
तऊ ही गदा कर सारँग चक्र लता भृगु की उर मध्य सुहाओ।
मेरो उतार कुवंड महावल मोहुँ को आज चढ़ाय दिखाओ॥

परशुराम ने कहा—मैं तो तुम को तभी सच्चा प्रभु समझूँगा, जब तुम सचमुच रामावतार कहलाओगे; और जिस तरह शिव का धनुष तोड़ा है, उसी तरह मुझे भी अपना बल दिखाओगे। हाथों में गदा, धनुष, सुदर्शन चक्र आदि तथा अपनी छाती पर भृगु की मारी हुई लात का चिह्न भी दिखाओ (अर्थात् पूर्ण नारायण रूप में दर्शन दो) तथा मेरे इस धनुष का चिल्ला उतारकर मुझे फिर से चढ़ाकर दिखाओ।

कवि उवाच

श्री रघुवीर शिरोमणि शूर कुवंड लियो कर मैं हँसि हँसि कै।
लिय चाप चटाक चढ़ाय वली खट टूक कियो छिन मैं कसि कसि कै॥
नभ की गति ताहि हरी शर सों अधवीच ही वात रही बसि बसि कै।
न बिसात कछू नट कै वटु जिउँ भव-पाशनि संग रहै फँसि फँसि कै॥

कवि कहते हैं—जब परशुराम ने यह बात कही, तब श्री रघुवीर ने हँसकर हाथों में धनुष ले लिया और बल से चटाक से (सहज में ही) धनुष का चिल्ला चढ़ा लिया और खट से क्षण भर में उसके दो टुकड़े कर दिये (धनुष चढ़ाकर परशुराम का घमण्ड चूर कर दिया)। उस परशुराम में आकाश तक पहुँचने का जो गुण था, वह श्रीराम ने बाण से नष्ट कर दिया; और जो बात अध-बीच में फँस रही थी, उसे समाप्त कर दिया। उस समय परशुराम का नट के जमूरे की तरह कुछ जोर नहीं चल सका, वह मानो संसार के पाशों (बन्धनों) में फँसकर रह गये।

इति श्रीराम-युद्धजयतु

अथ अवध-प्रवेश कथनम्

सवैया

भेंट भुजा भर अंक भले भरि नैन दोऊ निरखे रघुराई ।
गुंजत भृंग कपोलन ऊपर नाग लवंग रहे लव लाई ॥
कंज, कुरंग, कलानिधि, केहरि, कोकिल हेर हिये हहराई ।
वाल लखैं छवि खाट परैं नहिं, बाट चलैं निरखैं अधिकाई ॥

यह देखकर परशुराम दोनों बाँहें फैलाकर श्री रामचन्द्र जी से मिले और आँखों से एक टक श्रीरामचन्द्र जी को देखने लगे । राम की शोभा का वर्णन करते हुए कवि कहते हैं—श्रीराम के कपोलों (गालों) पर भौंरे गूँज रहे थे । काले केश गालों पर टेढ़े लटकते थे । ऐसा मालूम होता था मानो साँपों के छोटे-छोटे बच्चे लवंग-लता से लिपटे हों । श्री राम की टाँगें देखकर कंज (केला), आँखें देखकर कुरंग (हिरन), मुँह देखकर चन्द्रमा, कमर देखकर शेर और वाणी सुनकर कोयल मन में लज्जित हो रही थी । श्रीराम की छवि ही ऐसी थी कि छोटे-छोटे बालक भी उन्हें देखकर पालने में पड़े रहना नहीं चाहते थे; और राह चलनेवाले रास्ता नहीं चल सकते थे ।

सीय रही मुरछाय मनै रण राम कहा मन वात धरैंगे ।
तोर शरासन संकर को जिमि मोहिं वर्यो तिमि और वरैंगे॥
दूसर ब्याह वधू अवहीं मन तें मोहिं नाथ विसार डरैंगे ।
देखत हौं निज भाग भले बिधि आज कहा इह ठौर करैंगे ॥

जब श्री राम ने परशुराम का धनुष चढ़ा दिया, तब सीता के मन की जो अवस्था हो रही थी, उसका वर्णन करते हुए श्रीगुरु महाराज कहते हैं—

भयो जुद्ध भारी। छुटीं रुद्र तारी॥
बजे घंट भेरी। डहे डाम डेरी॥
रणं को निशानं। कँपा छेकि कानं॥
घहा धूह धोपं। टका टूक टोपं॥
कटे चर्म-वर्मं। पल्यो छत्र धर्मं॥
भयो दुंद जुद्धं। भर्यो राम क्रुद्धं॥
कटी दुष्ट बाहं। सँहार्यो सुबाहं॥
त्रसे दैत भाजे। रणं राम गाजे॥
भुवं भार तार्यो। अधीशं उबार्यो॥
सबै साधु हरखे। भये जीत करखे॥
करैं देव अरचा। कहैं वेद चरचा॥
भयो जग्य पूरं। गए पाप दूरं॥
सुरं सर्व हरखे। धनं धार बरखे॥

धर्म-ध्वजा रूप रामचन्द्र जी को रण में देखकर सभी राक्षसों के सहित मारीच और सुबाहु चारों ओर से आ पहुँचे। वे चिल्लाते हुए, ऐसे बाजे बजाते हुए, जिनकी आवाज से मेघ भी लज्जित होते थे, और झण्डे लिये हुए आगे बढ़े। कमानें कड़कने लगीं, कृपाण बजने लगे। अपनी रक्षा के लिए ढालें बढ़ने लगीं। वे रण-रंग में इस प्रकार मस्त हो रहे थे मानो मदमस्त पहलवान हों। वे बाणों की वर्षा करते हुए, बड़े-बड़े शस्त्र लेकर, जय-जयकार करते हुए आगे बढ़े। उस समय सुबाहु और मारीच तो मानो मर-मिटने की इच्छा से ही बाज की तरह श्रीराम पर झपटे। उन्होंने रामचन्द्र को घेर लिया। रामचन्द्र जी उस दैत्य-सेना में घिरे हुए ऐसे मालूम हो रहे थे मानो कामदेव को रुद्र ने घेर लिया हो। एक बार तो सिद्ध गंगा (आकाश गंगा) की तरह राम भी युद्ध में रुक गये, परन्तु जब उन्होंने गर्जन किया, तब उनकी आवाज से बादल भी शरमा गये। बस फिर तो कटे हुए सिर पृथ्वी पर लोटने लगे; साथ ही दैत्यों के शरीर भी गिरने

लगे । कुछ राक्षस मूँछों पर ताव देते हुए राम की ओर बढ़े । राम ने कहा— अरे ! अभी तो हाथ लगे हैं; अब कहाँ जाते हो ? उन्होंने शत्रुओं को देखकर मारना आरम्भ किया । धनुर्वेद के ज्ञाता राम ने धनुष खींच खींचकर उग्र बाणों की धारा बरसा दी और शत्रु-सेना का संहार किया । यह सब देखकर देवता हँसने लगे ।

उस समय आँखों के सामने साक्षात् मृत्यु देखकर (राक्षसों की) सारी सेना भाग खड़ी हुई । रामचन्द्र जी क्रोध में भरे हुए ऐसे घूम रहे थे मानो किसी ने साँप को छेड़ दिया हो । कुछ राक्षसों को राम ने मार डाला, कुछ समुद्र की ओर भागे, कुछ ने राज्य तथा देश त्यागकर योगी वेश धारण कर लिया, अपने वस्त्र उतारकर भगवे (गेरुए) वस्त्र पहन लिये, और कुछ द्रोह त्याग कर लंका में जा बसे ।

इधर सुबाहु रोष में आकर बहुत-से राक्षसों की सेना सजाकर फिर युद्ध में आ डटा । उस समय हाथियों के झुण्ड चिंघाड़ने लगे जिनकी ध्वनि से मेघ लजा गये । ढालें लिये हुए, लाल पीले वस्त्र पहने, शस्त्र उठाये, बाण बरसाते हुए, आग्नेय अस्त्र चलाते हुए सब शस्त्र चला रहे थे । वे खून से इस तरह लाल हो रहे थे मानो ब्याह के लिए बरात चढ़ रहे हों । बहुत-से तो इस तरह घूम रहे थे, मानो कोई मतवाला झूमता हो । उन सब में वीर रामचन्द्र खिले हुए फूल की तरह शोभायमान हो रहे थे ।

जब सुबाहु सामने आया, तब भयंकर युद्ध होने लगा । घोर बाजे बजने लगे, जिससे बादल भी लजा गया । उस समय युद्ध-स्थल में रथवाहक हाथी, घोड़े कट कटकर गिर रहे थे । ऐसा मालूम होता था मानो रुद्र की समाधि टूट गई हो । घण्टे और भेरियाँ बज रही थीं । चारों ओर युद्ध के निशान दिखाई देते थे, टोप टुकड़े-टुकड़े होकर गिर रहे थे । वर्ग (कवच) कट रहे थे । साक्षात् क्षात्र धर्म बढ़ रहा था ।

इसके बाद द्वन्द्व युद्ध आरम्भ हुआ । रामचन्द्र जी ने क्रुद्ध होकर सुबाहु

की बाँहें काट डालीं और उसे मार डाला। यह देखकर सारी सेना भाग खड़ी हुई; और रामचन्द्र की विजय हुई।

इस प्रकार (रामचन्द्र ने) पृथ्वी का भार हलका किया और ऋषीश्वर को प्रसन्न किया। सभी साधु आनन्दित हुए, और रामचन्द्र का जय-जयकार हुआ। निश्चिन्त होकर वे देवताओं की पूजा तथा वेदों की चर्चा करने लगे। सभी पाप दूर हुए; यज्ञ सम्पूर्ण हुआ। सब देवता प्रसन्न हुए और उन्होंने धन-धान्य की वर्षा की।

सीता-स्वयंवर

रसावल छन्द

रच्यो सुयंब्र सीता। महाशुद्ध गीता॥
विधं चारु वैनी। मृगीराज नैनी॥
सुन्यो मोननेशं। चतुर चारु देशं॥
लियो संग रामं। चल्यो धर्म धामं॥
सुनो राम प्यारे। चलो सँग हमारे॥
सिय सुयंब्र कीनो। नृपं बोल लीनो॥
तहाँ प्रात जइये। सिया जीत लइये॥
कही मान मेरी। बनी बात तेरी॥
बली पाणि पाके। निपातो पिनाके॥
सिया जीत आनो। हनो सर्व दानो॥
चले राम संगं। सुहाये निषंगं॥
भए जाइ ठाढ़े। महा मोद वाढ़े॥
पुरं नारि देखे। सही काम लेखे॥
रिपं शत्रु जाने। सिधं साधु माने॥
शिशुं बाल रूपं। लख्यो भूप भूपं॥
तप्यो पौन हारी। भटं शस्त्रधारी॥
निशा चंद जान्यो। दिनं भान मान्यो॥
गणं रुद्र पेख्यो। सुरं इन्द्र देख्यो॥
श्रुतं ब्रह्म जान्यो। द्विजं व्यास मान्यो॥
हरी विष्णु लेखे। सिया राम देखे॥
सिया पेख रामं। बिंधी बाण कामं॥

गिरी झूम झूमं। मदी जान धूमं॥
उठी चेत ऐसे। महावीर जैसे॥
रही नैन जोरी। शशी जिउँ चकोरी॥
रहे मोह दोनो। टरे नाहिं कौनो॥
रहे ठाढ़ ऐसे। रणं वीर जैसे॥

अब आगे का वर्णन सुनिए—मिथिला में गीता की तरह पवित्र सीता जी का स्वयंवर रचाया गया था। सीता स्वभाव से बहुत सुशील, सुन्दर बोलनेवाली, और मृगी की तरह आँखोंवाली थी। मुनीश विश्वामित्र ने जब यह समाचार सुना, तब रामचन्द्र जी को साथ लेकर चले। उन्होंने रामचन्द्र जी से कहा—"हे प्यारे राम! देखो, सीता का स्वयंवर रचाया गया है। राजा (जनक) ने बुलवा भेजा है; इसलिए हमें सवेरा होते ही वहाँ पहुँच जाना चाहिए और सीता को स्वयंवर में जीतना चाहिए। मेरी बात मानो, यह तुम्हारा कार्य पूर्ण हो रहा है।

राजा का रखा हुआ पिनाक (धनुष) अपने बलवान हाथों से तोड़ो और सीता को ले आओ तथा सब दानवों को मार गिराओ।

राम को साथ लेकर वह मिथिला पहुँचे। उस समय रामचन्द्र जी के कन्धे पर निषंग (बाण रखने का खाना) शोभायमान हो रहा था। जब श्री रामचन्द्र जनकपुरी पहुँचे, तो वहाँ की स्त्रियों ने उन्हें कामदेव के रूप में देखा। शत्रुओं ने अपना शत्रु, सिद्धों ने साधु जाना। बालकों ने बालक रूप देखा, राजाओं ने राजा समझा। शस्त्रधारियों ने तपे हुए सूर्य के समान महान् बलवान् योद्धा भट समझा। दूसरे लोगों ने पूर्णिमा का चाँद और दिन का सूरज समझा। गणों ने रुद्र, देवताओं ने इन्द्र, वेदज्ञों ने ब्रह्म और ब्राह्मणों ने व्यास समझा। सीता जी ने रामचन्द्र जी को साक्षात् हरि विष्णु भगवान का रूप जाना।

श्री राम का ऐसा सुन्दर स्वरूप देखकर सीता कामदेव के बाणों से बिंध गई और पृथ्वी पर इस तरह गिर पड़ी, जिस तरह कोई मतवाला झूमकर

गिरता है। कुछ देर बाद जब चेत (होश) हुआ तो इस तरह एक दम से उठी, जिस तरह कोई महावीर उठता है। जैसे चकोरी चाँद को एक टक देखती है, उसी तरह वह राम को देखने लगी। दोनों (राम और सीता) एक दूसरे को देखते रहे और इस तरह खड़े रहे, जैसे रण में वीर खड़े रहते हैं।

रसावल छन्द

पठे कोट दूतं । चले पौन पूतं ॥
कुवंडान डारे । नरेशो दिखारे ॥
लियो राम पाणं । भर्यो वीर मानं ॥
हँस्यो ऐंच लीनो । उभय टूक कीनो ॥
सवै देव हरषे । घनं पुहुप बरषे ॥
लजाने नरेशं । चले आप देशं ॥
तवं राजकन्या । तिहूँ लोक धन्या ॥
धरे फूल माला । बर्यो राम वाला ॥

तब वायु की तरह कई दूत उठे और उन्होंने राजाओं को दिखाकर सभा में धनुष रख दिया। श्री रामचन्द्र जी ने वह धनुष हाथ में लिया और वीर भाव में भरकर उसे खींचा और उसके दो टुकड़े कर दिये। यह देखकर सब देवता प्रसन्न हुए; और उनपर पुष्पों की वर्षा की। दूसरे राजा लोग यह देखकर लज्जित हुए और अपने-अपने देश को चल पड़े। तब तीन लोकों में धन्या राजकुमारी सीता ने श्री रामचन्द्र के गले में फूल-माला डाल दी। इस प्रकार श्री राम ने उसे वर लिया।

भुजंग-प्रयात

किधौं देवकन्या किधौं वासवी है।
किधौं यक्षिणी किन्नरी नागिनी है॥
किधौं गंधरी दैतजा देवता सी।
किधौं सूरजा शुद्ध सोधी सुधा सी॥

किधौं यक्ष विद्याधरी गंधरी है।
किधौं रागिनी भाग पूरे रची है॥
किधौं स्वर्ण कै चित्र की पुत्रिका है।
किधौं काम की कामिनी की प्रभा है॥
किधौं चित्र की पुत्रिका सी बनी है।
किधौं शंखिनी, चित्रिणी, पद्मिनी है॥
किधौं राग पूरे भरी रागमाला।
वरी राम तैसी सिया आज वाला॥
छके प्रेम दोनों लगे नैन ऐसे।
मनो फाँद फाँदे मृगीराज जैसे॥
विधं बाक बैनी कटं देश छीनं।
रँगे रंग रामं सुनैनं प्रवीणं॥
जिती राम सीता सुनी श्रोणरामं।
गहे शस्त्र अस्त्रं ग्रस्यो तौन जामं॥
कहाँ जात भाख्यो रहो राम ठाढ़े।
लखौं आज कैसे भए वीर गाढ़े॥

जिस सीता को राम ने वर लिया है, उस सीता को देव-कन्या कहें या इन्द्राणी कहें ? या वह यक्षिणी है या किन्नरी है या नागकन्या ? गन्धर्विणी है, दैत्यजा है या देवी है ? वह सूर्य-पुत्री है अथवा शुद्ध सफेद अमृत है ? वह विद्याधरी है या यक्ष कन्या है ? वह सोने के चित्र की पुतली है या कामदेव की कामिनी रति की प्रभा है ? वह चित्र की पुतली है, या शंखिनी है, या चित्रणी है या पद्मिनी है ? वह रागों से भरी रागमाला है। सचमुच दोनों (राम और सीता) इस प्रकार प्रेम से छके (भरे) थे, अर्थात् दोनों की आँखें एक दूसरे पर लगी थीं, मानो उछलती हुई मृगी को फन्दे में फँसा लिया हो। अर्थात् जैसे हरिणी घबराकर देखती है, वैसे ही सीता जी भी लाज और भय से राम की ओर देख रही थीं। सीता की

बोली सुन्दर और मधुर थी; उसका कटि-देश (कमर) क्षीण (पतली) था। सचमुच श्री रामचन्द्र भी, जो सुन्दर आँखोंवाले और प्रवीण थे, उसके प्रेम-रंग में विभोर हो गये।

इधर जब श्रोणराम (परशुराम) ने यह सुना कि राम ने धनुष तोड़कर सीता को ब्याह लिया है, तब वे झटपट अस्त्र-शस्त्र लेकर वहाँ आ पहुँचे और रामचन्द्र जी को घेरकर कहने लगे—"अरे राम खड़े रहो, कहाँ जाते हो ? मैं देखना चाहता हूँ कि तुम कितने वीर हो।"

सुन्दरी छन्द

भट हुंके धुंक्के बंकारे। रण बज्जे गज्जे नग्गारे॥
रण हुल्ल कलोलं हुल्लालं। ढल हल्लं ढल्लं उच्छालं॥
रण उट्ठे कुट्ठे मुच्छाले। शर छुट्टे बुट्टे भीहाले॥
रत डिग्गे भिग्गे जोधानं। कणनं छेकिच्छे किक्कानं॥
भिषणीयं भेरी भूकारं। झललंके खंडे दुध्धारं॥
जुद्धे जुझ्झारं बब्बाड़े। हुलए भखहाए आहाड़े॥
बंके बावड्डे बंकारं। नच्चे पखरीए जुझ्झारं॥
बज्जे संगलीए भीहाले। रण रत्ते मत्ते मुच्छाले॥
उच्छलिये कच्छी कच्छाले। उड्डे जन पब्बं पब्बाले॥
जुट्टे भट छुट्टे मुच्छाले। रुलिये आहाड़ं पखराले॥
बज्जे संधूरं नग्गारे। कच्छे कच्छीले लुज्झारे॥
गण हूरं पूरं गैनायं। अंजन्यं अंजे नैनायं॥
रण नंके नादं नाफीरं। बब्बाड़े वीरं हावीरं॥
उग्घे जन नेजे जट्टाले। छुट्टे सिल सित्यं मुच्छाले॥
भट डिग्गे घायं अघ्घायं। तन कट्टे मद्धे मद्धायं॥
दल गज्जे बज्जे नीशाणं। चंचलिए ताजी चौहाणं॥
चब दिस्सं चिंके चावंडे। खंडे खंडी के आखंडे॥

रड़ रंके गिद्धं उद्धानं। जै जंपै सिद्धं सुद्धानं॥
फुल्ले जनु किंसक बासंतं। रण रत्ते सूरा सामंतं॥
डिग्गे रण सुंडी सुंडानं। धर भूरं पूरं मुंडानं॥

परशुराम के यह कहते ही कई अच्छे भट (योद्धा) हुंकार करते हुए गरजने लगे। रण के नगाड़े बजने लगे। सूरमा लोग रण की प्रसन्नता से किलोलें करते हुए, ढालें उछालते हुए उछलने लगे। कई विकट शूर वीर तीखे वाणों से मार डाले गये, कई योद्धा रक्त में भींगे हुए गिर पड़े, कई चीखें मारने लगे। उस समय भयंकर भेरियाँ बजने लगीं, दुधारे और खाँडे चमकने लगे। शूर वीर प्रसन्न होकर गरजते हुए युद्ध में जूझने लगे। घोड़े गर्जन सुनकर नाचने (उछलने) लगे। भीषण बाजे बज रहे थे, रण में मस्त सूरमा लाल दिखाई देते थे। उस समय घोड़े दौड़ते हुए ऐसे मालूम होते थे मानो छोटे-छोटे पहाड़ उड़ रहे हों। कई जगहों पर योद्धा आपस में भिड़ गये, वाण चलने लगे और युद्ध में आहत होकर गिरने लगे।

हाथियों पर रखे हुए नगाड़े बज रहे थे, घोड़े जूझ रहे थे। उधर अप्सराएँ भी आँखों में अंजन डाले उन वीरों को वरने के लिए आ गईं। उस समय रण में नफीरी बज रही थी, इन्द्र जैसे वीर भी जिसे सुनकर काँप रहे थे; तीखे वाण छूट रहे थे।

अनेक योद्धा बीच से कट-कटकर तथा थककर चूर हुए से गिर रहे थे। सेना में गर्जन हो रहा था, वाजे बज रहे थे, चीत्कार सुनाई दे रहा था। चारों ओर से धनुष की टंकारें सुनाई देती थीं, खाँडों के खंड अर्थात् टुकड़े हो रहे थे। ऊपर गिद्ध उड़ रहे थे। सिद्ध लोग जय जयकार कर रहे थे। रण में मस्त हुए शूर वीर वसंत में खिले हुए टेसू के फूल की तरह लाल दिखाई देते थे। कहीं बड़े-बड़े हाथी सूँड़ों से रहित पड़े थे, तो कहीं पूरे धड़ और मुंड।

मधुर-धुनि छन्द

तरभर रामं। परिहर कामं॥
धरवर धीरं। परहरि तीरं॥

दरवर ज्ञानं। परिहर ध्यानं॥
बकबक कंपै। हर हर जंपै॥
क्रुद्ध गलीतं। बुद्ध दलीतं॥
कर सर सर्ता। धरमर डर्ता॥
सरवर पाणं। धर कर मानं॥
अरि उर साली। धर उर माली॥
कर वर कोपं। वर हर धोपं॥
गर्व्वर करणं। धर्वर हरणं॥
छरहर अंगं। चर खर संगं॥
जर वर जामं। झर हर रामं॥
टर घर जायं। ठर हर पायं॥
ढर हर ढालं। वर हर कालं॥
अरि वर दर्णं। नर वर हर्णं॥
घर वर धीरं। फर हर तीरं॥
वर नर दर्णं। भर हर कर्णं॥
हरहिं रड़त्ता। वर हर गड़ता॥
सरवर हर्त्ता। चरमर घर्त्ता॥
वर मर पाणं। कर वर जाणं॥
हर वर वारं। कर वर बारं॥
गड वड रामं। गड़वड़ धामं॥

बहुत क्रोध में भरे हुए परशुराम, जो फौजों को लाँघकर आये थे (अथवा वह परशुराम जिन्होंने कामदेव की सेना जीत ली हो) धीर, वीर थे और हाँथों में तीर लिये हुए थे। जिनका ज्ञान जाता रहा हो, जिनको ध्यान न रहा हो, ऐसे परशुराम हर हर करते हुए बड़बड़ाने लगे।

जिनका क्रोध बढ़ रहा था, बुद्धि नष्ट हो रही थी, हाथों में बाण लिये हुए, धर्माज्ञा का उल्लंघन करनेवालों को मारनेवाले, हाथों में बाण लिये,

कमान धारण किये हुए, शत्रुओं के वक्ष-स्थल फाड़नेवाले, जिनके उर पर पड़ी हुई माला काँप रही थी, वह परशुराम क्रोध करते हुए, गर्व हरण करते हुए बहुत गर्व से चिल्लाये।

जिनके अंग छरहरे और बहुत सुन्दर थे, जिनके हाथ में तीखा परसारी, (कुल्हाड़ा) था, वे परशुराम झगड़ा करने लगे। क्रोध से उनके पाँव धरती पर नहीं पड़ते थे, अतः उन्हें बहुत कठिनता से सँभाल रहे थे। जिनकी ढाल ढलक रही थी और जो काल के समान क्रोध से काँप रहे थे, जो बड़े-बड़े राजाओं और शत्रुओं को मारनेवाले थे, धैर्यशाली, और तीर लिये हुए, लोगों को मारनेवाले तथा भयंकर और शिव के उपासक, परशुराम गरजने लगे।

बाण लिये हुए तथा कुल्हाड़ा धारण किये हुए अथवा मृग-चर्म ओढ़े हुए, तथा जिनके हाथों में अत्यन्त बल था, अथवा जिनके हाथों का बल हाथी भी जानते थे, अथवा जिनके घुटनों में हाथी के समान बल था, तथा हर किसी का बल हरनेवाला परशुराम, जो मानो गड़बड़ के धाम थे, गरजकर शोर मचाने लगे।

चरपट छीगा के आद कृत छंद

खग्गं ख्याता। ज्ञानं ज्ञाता॥
चित्रं वरमा। चारं चरमा॥
शास्त्रं ज्ञाता। शस्त्रं ख्याता॥
चित्रं जोधी। जुद्धं क्रोधी॥
वीरं वरणं। भीरं भरणं॥
शत्रं हरता। अत्रं धरता॥
वर्मं वेधी। धरमं छेदी॥
छत्रं हंता। अत्रं गंता॥
जुद्धं धामी। बुद्धं गामी॥
शस्त्रं ख्याता। अस्त्रं ज्ञाता॥

जुद्धं माली । कीरत-शाली ॥
धर्मं धामं । रूपं रामं ॥
धीरं धरता । वीरं हरता ॥
जुद्धं जेता । शस्त्रं नेता ॥
दुरदं गामी । धर्मं धामी ॥
जोगं ज्वाली । जोतं माली ॥

वह परशुराम तलवार चमकानेवाले, ज्ञानवान, विचित्र कवचधारी, और सुन्दर शरीरवाले थे । शास्त्रों के जानकार, शस्त्रधारी, विचित्र योद्धा और युद्ध में क्रोध करनेवाले थे । वह वीरों के भी व्रण (घाव) करनेवाले, कायरों के लिए भयंकर शस्त्रचालक और अस्त्रधारी थे । वह कवच तोड़ सकते थे, ढालें फोड़ सकते थे, क्षत्रियों को मारनेवाले तथा अस्त्रज्ञाता थे । युद्ध की शोभा बढ़ानेवाले, बुद्धिमान्, शस्त्रचालक और अस्त्रज्ञ थे । वह परशुराम युद्धविजेता, कीर्तिमान, और धर्म के घर थे ।

वह परशुराम धीरजधारी, वीरों के काल, युद्धविजेता तथा शस्त्रों के मानो नेता थे । वह मस्त हाथी की तरह चलनेवाले, धर्म के धाम, योग की अग्नि-रूप तेजधारी तथा अनेक राजाओं को मसलनेवाले थे ।

परशुराम उवाच

सवैया

तूण कसे कटि चाप धरे कर कोप कही द्विज राम अहो ।
गृह तोरि शरासन संकर को सिय जात हरे तुम कौन कहो ॥
बिन साँच कहे नहिं प्राण बचैं जनि कण्ठ कुठार की धार सहो ।
घर जाहु चले तज राम रणं जनि जूझ मरो पल ठाढ़ रहो ॥

वह परशुराम, जिन्होंने तूण (वाण रखने का खाना) कसा हुआ था और धनुष हाथों में ले रखा था, क्रोध से यों बोले—"अरे राम ! घर में

उस समय सीता मन ही मन मूर्च्छित-सी हो रही थी और यह सोच रही थी कि क्या प्रभु मन में यह बात ठान लेंगे कि जिस प्रकार शंकर का धनुष तोड़कर मुझे वरा है, उसी प्रकार किसी और को वर लेंगे ? और अगर दूसरी वधू को वर लिया तो मुझे भुला देंगे ? क्या आज मैं अपने भाग्य अच्छे देख रही हूँ ? न जाने ब्रह्मा आज यहाँ क्या करेगा !

तबही लौं राम जिते दुज को अपने दल आए बधाइ बजाई।
भग्गुल लोक फिरैं सबही रण मों लख राघव की अधिकाई॥
सीय रही रण राम जिते अवधेश्वर बात जबै सुनि पाई।
फूलि गयो अति ही मन मैं धन के घन की बरषा बरसाई॥

इसके उपरान्त रामचन्द्र जी ब्राह्मण (परशुराम) को जीतकर अपने दल में आये। उन्हें बहुत बधाइयाँ दी गईं। उस समय रण में राम की विजय सुनकर भगोड़े (जो भाग गये थे) लौट आये। इधर जब राजा दशरथ ने सुना कि सीता हमारे ही हाथ रही है और रामचन्द्र जी रण में जीते हैं, तो मन में बहुत प्रसन्न हुए और उन्होंने मानो धन के बादल बनकर धन की वर्षा की (दोनों को बहुत-सा धन दिया)।

बंदनवार बँधी सबहीं दर चन्दन सों छिरके गृह सारे।
केसर डार बरातिन पै सबही जन हुइ पुरहूत पधारे॥
बाजत ताल मुचंग पखावज नाचत कोटिन कोटि अखारे।
आन मिले सबही अगुआ सुत को पितु लै पुर औध सिधारे॥

सभी द्वारों पर बंदनवारें बाँधी गईं, प्रत्येक घर चन्दन से सुगन्धित किया गया और सब बरातियों पर केसर डाला गया। सभी बराती मानो इन्द्र बन कर चले। उस समय ताल, मुँहचंग और पखावज बजने लगे। करोड़ों नर्तक नाच रहे थे। सभी अगुआ अर्थात् स्वागत करनेवाले आ-आकर मिले और राजा दशरथ अपने पुत्र को लेकर अयोध्या में आये।

चौपाई

सबहूँ मिलि गिल कियो उछाहा ।
पूत तिहूँ को रच्यो विवाहा ॥
राम सिया वर कै घर आए ।
देश विदेशन होत वधाए ॥
जहँ तहँ होत उछाह अपारू ।
तिहूँ सुतन को ब्याह बिचारू ॥
बाजत ताल मृदंग अपारं ।
नाचत कोटिक कोटि अखारं ॥
बन बन वीर पखरिया चल्ले ।
यौवनवंत सिपाही भल्ले ॥
जाय भए स्थित नृप के द्वारे ।
महारथी अरु मह(ा) धनुधारे ॥
बाजत जंग मुचंग अपारं ।
ढाल मृदंग सुरंग सुधारं ॥
गावत गीत चंचला नारी ।
नैन नचाय बजावत तारी ॥

सभी लोगों ने मिलकर बहुत उत्साह दिखाया (उत्सव मनाया) । तब राजा ने तीनों दूसरे पुत्रों का भी विवाह रचा दिया । रामचन्द्र जी सीता को व्याहकर घर आये तो देश-विदेशों से बधाइयाँ आने लगीं । हर जगह बहुत उत्साह दिखाया जा रहा था, क्योंकि राजा दशरथ के और तीनों पुत्रों का भी व्याह रचाया गया था । असंख्य ताल और मृदंग बज रहे थे और करोड़ों नर्तक-नर्तकियाँ नाच रही थीं । पखरिया (अर्थात् पाखरोंवाले घोड़ों पर चढ़े हुए वीर) खूब बन-ठनकर और दूसरे सिपाही भी यौवन में मस्त चल रहे थे । घंटियाँ, मुँहचंग, ढोल, मृदंग और अच्छी तरह स्वर मिलाई हुई

सारंगियाँ बज रही थीं। चंचल नारियाँ आँखें नचाकर तालियाँ बजाती हुई गा रही थीं।

भिक्षुकन हौंस न धन की रही।
दान सुबरण सरित हुइ बही॥
एक वस्तु कोऊ माँगन आवै।
बीसक वस्तु घरैं ले जावै॥
बन बन चलत भये रघुनंदन।
फूले पुहुप बसंत जनहु वन॥
शोभित केसर अंग उरायो।
आनँद हिय उच्छल जनु आयो॥
साजत भये अमित चतुरंगा।
उमड़ि चलत जिहि विधि करि-गंगा॥
भल भल कुँअर चढ़े सजि सैना।
कोटिक चढ़े सूर जनु गैना॥
भरत सहित शोभित सब भ्राता।
कहि न परत मुख तें कछु बाता॥
मातन मन सुन्दर सुत मोहैं।
जनु दिति गृह रवि ससि दोउ सोहैं॥

राजा ने इतना दान दिया कि भिखारियों को और धन की इच्छा ही न रह गई। सोने के दान की तो मानों नदी बह चली। यदि कोई एक वस्तु माँगने आता था तो बीसों वस्तुएँ लेकर घर जाता था। राजकुमार बन ठनकर चल रहे थे। ऐसा मालूम होता था, मानो वन में वसन्त ऋतु के फूल खिले हों। उनके शरीर पर लगा हुआ केसर ऐसा प्रतीत होता था, मानो हृदय का आनन्द उमड़कर बाहर आ रहा हो। चारों प्रकार की सेनाएँ (हाथी, घोड़े, रथ और पैदल) अच्छी तरह सजी हुई थीं और उमड़कर इस तरह चल

रही थीं, मानो गंगा वह रही हो। सुन्दर राजकुमार सेना सजाये हुए और घोड़ों पर चढ़े हुए ऐसे प्रतीत होते थे, मानो आकाश में करोड़ों सूर्य चढ़ आये हों। भरत के साथ और सब भाई जैसे शोभित हो रहे थे, उसका वर्णन नहीं किया जा सकता। सभी सुन्दर पुत्र अपनी माताओं के मन मोह रहे थे, मानो अदिति के घर में सूर्य और चन्द्रमा शोभा पा रहे हों।

इह बिधि कै सज शुद्ध बराता।
कछु न परत कहि तिनकी बाता॥
बाढ़त कहत ग्रंथ बातन कर।
बिदा होन शिशु चले तात घर॥
आइ पिता कउ कीन प्रणामा।
जोर पाणि ठाढ़े बलधामा॥
निरखि पुत्र आनँद मन भरे।
दान बहुत बिप्रन कउ करे॥
तात मात लै कंठ लगाये।
जनु दुइ रतन निरधनी पाये॥
बिदा माँगि जब गए राम घर।
सीस रखे धर चरण-कमल पर॥

सारी बरात ऐसी सजी हुई थी कि कुछ कहते नहीं बनता। अधिक बातें कहने से ग्रन्थ बढ़ जायगा। संक्षेप में यह कि इसके बाद सभी राजकुमार अपने पिता के पास महल की ओर चले। सब ने आकर पिता को प्रणाम किया, और सभी बलधाम पुत्र हाथ जोड़कर खड़े हो गये। पिता ने जब देखा, तब उनका मन आनन्द से भर गया। उन्होंने ब्राह्मणों को बहुत-सा दान दिया। फिर माता-पिता ने राजकुमारों को गले लगा लिया। ऐसा मालूम होता था, मानों दोनों निर्धनों ने रत्न प्राप्त कर लिये हों। इसके बाद वे सभी रामचन्द्र जी के महल की ओर विदा माँगने चले और जाकर रामचन्द्र जी के चरण-कमलों पर सिर झुका दिया।

कवित्त

राम विदा करे सिर चूम्यो पाणि पीठ धरे,
आनँद सों भरे लै तँबोर आगे धरे हैं।
दुंदुभी बजाय तीनों भाई यों चलत भये,
मानो सूर चंद कोटि आन अवतरे हैं।
केसर सों भींजे पट शोभा देते ऐसी भाँति,
मानो रूप राग के सुहाग भाग भरे हैं।
राजा अवधेश के कुमार ऐसे शोभा देत,
काम जू ने कोटिक कलि-योग कैधों धरे हैं॥

तब श्री राम ने अपने भाइयों का सिर चूमा, उनकी पीठ पर हाथ रखा और आनन्द में भरकर तांबूल (पान) उनके आगे रखे और तब उन्हें विदा किया। तीनों भाई दुन्दुभी बजाकर चल पड़े। उनकी शोभा ऐसी मालूम होती थी, मानो करोड़ों सूर्य और चन्द्रमा पृथ्वी पर आ उतरे हों। केसर से भींगे हुए उनके वस्त्र ऐसे मालूम हो रहे थे, मानो वे रूप, प्रेम और सौभाग्य से भरे हों। उस समय राजा दशरथ के पुत्र ऐसे लग रहे थे, जैसे साक्षात् कामदेव ने कलियुगी रूप (अर्थात् माया से अनेक रूप) धारण किये हों।

अवध तें निसर चले लीने संग सूर भले,
रण तें न टल पले शोभाहू के धाम के।
सुन्दर कुमार उर हार शोभियत अपार,
तीनों लोक मध्य की मुहिया सब वाम के।
दुरजन दलैया तीनों लोक के जितैया तीनो,
राम जू के भैया हैं चढैया हरि नाम के।
बुद्धि के उदार हैं सिंगार अवतार दान,
शील के पहार कै कुमार बने काम के॥

इसके अनन्तर सभी राजकुमार अपने साथ अनेक अच्छे-अच्छे शूर-वीरों को, जो रण में पीछे हटनेवाले नहीं थे और शोभा के मानो घर थे, लेकर अवध से चल पड़े। उस समय सुन्दर राजकुमारों के वक्ष-स्थल पर हार (मालाएँ) पड़े हुए शोभा दे रहे थे। उनकी सुन्दरता तीनों लोकों की स्त्रियों को मोहित कर रही थी। वे राजकुमार दुर्जनों के विनाशक, तीनों लोकों के विजेता, रामचन्द्र जी के भाई, ईश्वर के नाम के प्रेमी, उदार बुद्धि के, शृंगार रस के अवतार तथा दान और शील के मानो पहाड़ हैं; अथवा कामदेव ने ही कुमारों का रूप धारण कर रखा है।

अश्व वर्णनम्

कवित्त

नागरा के नैन हैं कि चातुरा के बैन हैं,
बगूला मानो गैन कैसे तैसे थहरत हैं।
नर्त्तकी के पाँव हैं कि जूप कैसे दाँव हैं,
कि छल को दिखाव कोऊ तैसे बिहरत हैं।
हाँकि बाजि वीर हैं तुफंग कैसे तीर हैं,
कि अंजनी को धीर हैं कि धुजा से फहरत हैं।
लहरैं अनंग की तरंग जैसे गंग की,
अनंग कैसे अंग ज्यों न कहूँ ठहरत हैं॥

घोड़े मानो नागरी नारी के नयन हैं या चतुर स्त्रियों के वचन हैं या आकाश में उठनेवाला एक बगूला हैं, क्योंकि उसी तरह चंचल हैं। ये घोड़े मानो नाचनेवाली नर्त्तकी के पाँव हैं, अथवा जूए के दाँव-पेंच हैं या छल का दिखावा हैं, क्योंकि उसी तरह चंचलता से चल रहे हैं। जब इन्हें वीर लोग हाँकते हैं, तब वेग से दौड़ने के कारण ऐसे प्रतीत होते हैं मानो तुफंग (तूणीर) से निकले हुए तीर हैं। ये घोड़े अंजनी के पुत्र की तरह वेग से चलनेवाले हैं अथवा ध्वजा की तरह फहरा रहे हैं। ये कामदेव की लहरें

हैं या गंगा की तरंगें हैं या अनंग (कामदेव) का ही शरीर हैं, क्योंकि कहीं नहीं ठहरते।

निशा निशानाथ जानै, दिन दिनपति मानै,
भिच्छुकन दाता कै प्रमाणै महादान हैं।
औषधि कै रोगन अनन्त रूप जोगन,
समीप कै वियोगन महेश महामान हैं।
शत्रै खग्ग ख्याता सिस रूपन के माता महा,
ज्ञानी ज्ञान ज्ञाता कै विधाता के समान हैं।
गणन गणेश माने, सुरन सुरेश जाने,
जैसे पेखे तैसे ही लखे विराजमान हैं॥

इन (सजे हुए) घोड़ों को रात चन्द्रमा समझती है और दिन सूरज समझता है। भिक्षुक इन्हें महादानी दाता समझ रहे हैं, रोगी इन्हें औषध और योगी अनन्त रूप, तथा वियोगिनी नारियाँ इन्हें समीपता और महेश रूप (अर्थात् पति-संगम रूप) मान रही हैं। शत्रु इन्हें खड्ग-चालक और बालक माता रूप में तथा ज्ञानी लोग ज्ञाता और विधाता के रूप में समझ रहे हैं। गण (दल) गणेश रूप में, और देवता इन्द्र रूप में समझ रहे हैं। ये घोड़े जिस रूप में देखना चाहें, उसी रूप में देखे जा सकते हैं।

सुधासों सुधारे रूप सोभत उजियारे किधौं,
साँचे बीच ढारे महा शोभा के सुधार कै।
किधौं महा मोहिनी के मोहिवे निमित्त वीर,
बिधना बनाये महा विधि सौं विचार कै।
किधौं देव दैतन विवाद छाँड़ि बढ़े चिर,
मथ कै समुद्र छीर लीने हैं निकार कै।
किधौं विश्वनाथ जू बनाये निज पेखिवे कों,
और न शकति ऐसी सूरतें सुधार कै॥

इन घोड़ों के रूप अमृत से धोये हुए हैं, या साक्षात् प्रकाश से बनाये गये हैं जो यों शोभा पा रहे हैं; अथवा महान् शोभा को साँचे में ढालकर बनाये गये हैं। या ये घोड़े महामोहिनी को मोहित करने के लिए विधाता ने बहुत विधि से विचारकर बनाये हैं; या देवताओं और दानवों ने अपना विवाद छोड़कर बहुत समय तक क्षीर सागर मथकर उसमें से निकाले हैं; अथवा विश्वनाथ परमात्मा ने ही स्वयं अपने देखने के लिए बनाये हैं; क्योंकि कदाचित् परमात्मा ने सोचा हो कि ऐसी सूरतें बनाने की शक्ति फिर रहे या न रहे, इसलिए अभी बना डालूँ।

सीम तजि आपनी विराने देश लाँघ लाँघ,
राजा मिथिलेश के पहूँचे देश आन कै।
तुरही अनन्त बाजैं दुंदुभी अपार गाजैं,
भाँति भाँति बाजन बजाए जोर जान कै।
आगे आनि तीनों नृप कंठ लाय लीने रीत-
रूढ़ि सबै कीने बैठे बेद कै बिधान कै।
बरस्यो धन की धार, पाइयत न पारावार,
भिच्छन भए नृपान ऐसे पाइ दान कै॥

वे घोड़े अपनी सीमा छोड़कर और दूसरे देशों को लाँघकर राजा मिथिलेश जनक के देश में जा पहुँचे। तब अनेक तुरहियाँ और दुंदुभियाँ बजाई गईं। दूसरे प्रकार के अनेक बाजे भी जान-बूझकर जोर-जोर से बजाये गये। उस समय राजा जनक ने आगे आकर तीनों राजकुमारों को गले से लगा लिया, तथा अनेक रीतियाँ और रूढ़ियाँ, जो विवाहादि में प्रचलित होती हैं, कीं और वेद-विधिपूर्वक उन्हें आसन दिया। धन की तो मानों इतनी वर्षा की कि जिसका कोई पारावार (हद) नहीं; और दान इतना दिया गया कि भिखारी भी राजा बन गये।

बाने फहराने घहराने दुंदुभि अरराने,
जनकपुरी कौं नियराने बीर जाइ कै।

कहूँ चाँउर ढारैं कहुँ चारण उचारैं,
कहुँ भाटन पुकारैं छन्द सुन्दर बनाइ कै।
कहूँ बाजे बीण, कोऊ बाँसरी मृदंग साजैं,
देखे काम लाजैं रहे भिच्छुक अघाइ कै।
रंक तें सुराजा भए, आशिष अशेष दये,
माँगत न भए फेर ऐसे दान पाइ कै॥

अनेक प्रकार के रंग-बिरंगे वस्त्रों की ध्वजाएँ आकाश में फहरा रही थीं और दुंदुभियाँ बज रही थीं। जनकपुरी के पास आकर वीरों ने ये सब बाजे बजाये। उस समय कहीं चँवरें डुलाई जा रही थीं, कहीं चारण स्तुति कर रहे थे, कहीं भाट सुन्दर छन्द (कविता या पद्य) बनाकर सुना रहे थे, कहीं वीणा बज रही थी, कहीं कोई बाँसुरी बजा रहा था, कहीं मृदंग बज रहा था। यह सब देखकर कामदेव भी लज्जित हो रहे थे। ऐसे समय भिखारी लोग धन पाकर रंक से राजा बन गये और अनेक प्रकार से आशीर्वाद देने लगे। सचमुच उन्हें इतना दान मिला कि उन्हें फिर माँगने की आवश्यकता ही नहीं रही।

आन कै जनक लीनो कंठ सों लगाय तिहूँ,
आदर दुरंत कै अनंत भाँति लए हैं।
वेद के विधान कै, कै व्यास तें बँधाई वेदि,
एक एक विप्र कौं विशेष स्वर्ण दए हैं।
राजकुँवर सबै पहिराए सिर पाँयन तें,
मोती मानिकन के बरस मेघ गए हैं।
दंती श्वेत दीने केते सिंधुली तुरे नवीने,
राजा के कुमार तीनों ब्याह कै पठए हैं॥

राजा जनक ने आकर तीनों राजकुमारों को गले लगा लिया, और अनेक प्रकार से आदर दिखाकर उनकी अगवानी की। वेद-विधि के द्वारा व्यास से

वेदी बनवाई, और एक एक ब्राह्मण को बहुत अधिक स्वर्ण दान दिया। सभी राजकुमारों को सिर से पैर तक पहनावे पहनाये। उस समय मोतियों और माणिकों की तो वर्षा की गई, (अर्थात् राजा जनक ने उनके ऊपर से न्योछावर कर दिये); और दहेज में अनेक प्रकार के सफेद हाथी, सिन्धु-देशीय नये घोड़े दिये, इस तरह तीनों राजकुमारों को ब्याह कर घर भेजा।

दोधक छन्द

ब्याह सुता नृप की नृप-बालं। माँग बिदा मुखि लीन उतालं॥
साजन बाजि चले गज युत्त। देशन ईश नरेशन पुत्त॥

राजकुमारों ने राजकुमारियों को ब्याह लेने के बाद जल्दी ही विदा माँग ली। देशों के ईश महाराजाओं और साधारण राजाओं के पुत्र घोड़े और हाथी सजाकर चल पड़े।

दाज शुमार सकै कर कौने। बीन सकै ब्रिधना नहिं तौने॥
बेसन बेसन बाजि सुमत्त। भेसन भेस चले गज गत्त॥

राजा जनक ने जो दहेज दिया था, वह कौन गिन सकता है। उसे तो ब्रह्मा भी नहीं गिन सकता। रंग रंग के मदमस्त घोड़े और हाथी चिंघाड़ते हुए चल रहे थे।

मोदक छन्द

बाजत नाद नफीरन के गण। गाजत सूर प्रमाथ महामन॥
औधपुरी नियरान रही जब। प्रात भये रघुनन्दन ही तब॥

उस समय अनेक प्रकार के स्वरों में नफीरियाँ बज रही थीं; और बड़े-बड़े शूरवीरों के मन को मथनेवाले सूरमा गरजकर जय-ध्वनि कर रहे थे। जब इस तरह चलते चलते अयोध्या पास आ गई, तब रघु के सभी नन्दन अर्थात् तीनों राजकुमार उसे प्राप्त हुए (उसमें प्रविष्ट हुए)।

मातन वार कियो जल पानं। देख नरेश रहे छबि मानं॥
भूप विलोकत लाय लिये उर। नाचत गावत गीत भये पुर॥

राजकुमारों के आने पर माताओं ने उन पर से जल वारकर पिया *। राजा दशरथ यह देखकर महान् आनन्द में भर उठे, और उन्होंने पुत्रों को गले लगा लिया। सभी पुर-वासी गीत गाने और आनन्द में विभोर होकर नाचने लगे।

भूपज ब्याह जबै गृह आये। बाजत भाँति अनेक बधाये॥
तात वसिष्ठ सुमित्र बुलाये। और अनेक तहाँ रिष आये॥

जब राजकुमार घर आ गये, तब अनेक प्रकार की बधाइयाँ दी गईं। राजा दशरथ ने वसिष्ट और विश्वामित्र को बुलवा भेजा तथा और भी ऋषि आ गये।

घोर घटा घहराय उठी तब। चारुँ दिशा दिग-दाह लख्यो सब॥
मंत्रि सुमित्र सबै अकुलाने। भूपति सों इह भाँति बखाने॥

अकस्मात् एक घोर घटा गरजती हुई छा गई और सबने चारों दिशाओं में मानो दिग्दाह (दिशाओं में आग लगने का दृश्य) सा देखा। यह देखकर मंत्री और राजा के मित्रगण व्याकुल हो गये और राजा दशरथ से बोले—

होत उपात बड़े सुन राजन। मंत्र करो रिष जोरि समाजन॥
बोलहु विप्र विलम्ब न कीजै। है कृत यज्ञ अरम्भन कीजै॥

हे राजन्! बड़े-बड़े उत्पात और उपद्रव देखने-सुनने में आ रहे हैं, इसलिए हमारी बात सुनें; और ऋषियों की सभा करके कुछ विचार (मंत्रणा) करें, तथा ब्राह्मणों को बुलाकर अश्वमेध यज्ञ आरंभ करें।

आदिश राज दियो तत्काला। मंत्रि सुमित्रहि बुद्धि विशाला॥
है कृत यज्ञ अरम्भन कीजै। आदिश वेगि नरेश करीजै॥

---

* कई जगह यह प्रथा है कि जब लड़का ब्याहकर घर आता है, तब लड़के की माता वर और वधू पर से जल वारकर पीती है।

राजा दशरथ ने तुरन्त आज्ञा दे दी। विशाल बुद्धिवाले मंत्री ने राजा दशरथ के मित्र राजाओं को झटपट यह सूचना दे दी कि शीघ्र ही अश्वमेध यज्ञ आरम्भ होगा (अतः तुम सब तैयार होकर आओ)।

बोल बड़े रिष लीन महाद्विज। हैं तिन बोल लिये युत ऋत्विज ॥
पावक कुंड खुद्यौ तिहिं औसर। गाड़िय खंभ तहाँ घरमंधर ॥

तब राजा ने बड़े बड़े ऋषि और पंडित बुलाये। उन्होंने आकर घोड़े तथा ऋत्विजों* को बुला लिया।

तब एक बहुत भारी अग्नि-कुण्ड खोदा गया और वहाँ 'धर्म-स्तम्भ' गाड़ दिया गया।

छोरि लियो हयसारल तें हय। आसित कर्ण प्रभासत केकिय ॥
देशन देश नरेश दिये सँग। सुन्दर सूर सुरंग सुभै अँग ॥

तब घुड़साल से घोड़ा लिया गया। उस घोड़े के कान काले थे (अर्थात् वह श्याम-कर्ण था)। उसका रंग मोर की गर्दन की तरह नीला था। देश-देशान्तरों के राजाओं को, जो बहुत सुन्दर और शूर वीर तथा शोभित अंगोंवाले थे, उस घोड़े के साथ कर दिया।

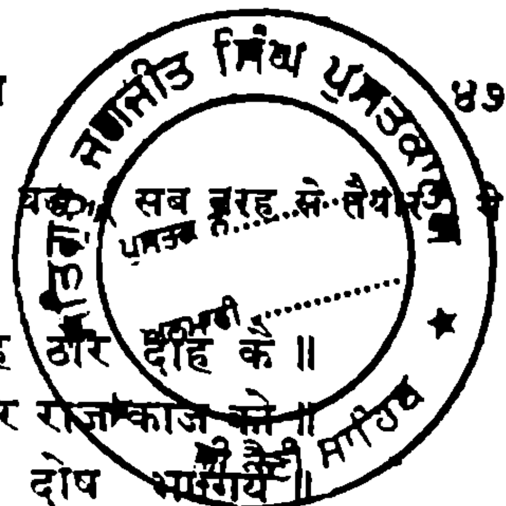
समानिका छन्द

नरेश संग कै दए। प्रवीण बीन कै लए।
सनद्ध बद्ध हुइ चले। सुवीर बीरहा भले ॥

राजा ने अनेक राजाओं को साथ कर दिया। उन्होंने भी चुन चुनकर

---

*ऋत्विज सोलह हैं जिनमें चार मुख्य हैं—होता, अध्वर्यु, उद्गाता और ब्रह्मा। होता ऋग्वेद के अनुसार काम करनेवाला, अध्वर्यु यजुर्वेद के अनुसार काम करनेवाला, उद्गाता सामवेद के अनुसार ऋचाओं का गान करनेवाला, और ब्रह्मा, जो सब कार्यों को देख-भाल करे तथा चारों वेदों का जाननेवाला हो।



वीर अपने साथ ले लिये। वे शूर वीर सन्नद्ध थे, सब तरह से तैयार थे और बड़े-बड़े वीरों को भी मार सकते थे।

विदेश देश गाह कै। अदाह ठौर दाहि कै ॥
किराय बाजि राज को। सुधार राज काज को ॥
नरेश पायँ लागियं। दुरंत दोष भागियं ॥
सुपूर जग्ग को कर्यो। नरेश त्रास को हर्यो ॥

वे सब राजा और शूर वीर देश-विदेशों में घुमकर, और अदाह स्थानों को दाहकर, घोड़े को संपूर्ण पृथ्वी पर घुमाकर, और राजा का कार्य पूर्ण करते हुए लौट आये; और आकर राजा दशरथ के पैरों पर पड़ गये। अतः उन सबके सारे अपराध क्षमा हो गये। इस प्रकार उन्होंने राजा द्वारा रचा हुआ यज्ञ पूरा किया और राजा का त्रास (अपशकुनों का डर) मिटा दिया।

अनंत दान पाइ कै। चले द्विजं अघाइ कै ॥
दुरंत आशिषैं रड़ैं। ऋचा सुवेद की पढ़ैं ॥
नरेश देश देश कै। सुमंत वेश वेश कै ॥
विशेष सूर सोभहीं। सुसील नारि लोभहीं ॥

तब राजा ने भी इतना दान किया कि ब्राह्मण अनन्त दान पाकर प्रसन्न होकर, वेदों की ऋचाओं द्वारा राजा को आशीर्वाद देकर चल पड़े। उस समय देश-विदेश के राजा अपने स्वरूप से शोभा पा रहे थे और बड़े-बडे सूरमा (शूर वीर) शोभित हो रहे थे, जो सुशीला नारियाँ को भी लुभावने प्रतीत हो रहे थे।

बजंत कोटि बाजहीं। सनाय भेरि साजहीं ॥
बनाय देवता घरैं। समान जाइ पा परैं ॥
करैं दँड़ौत पा परैं। विशेष भावना भरैं ॥
सुमंत्र जंत्र जापिये। दुरंत थाप थापिये ॥

उस समय करोड़ों बाजे बज रहे थे, सनाय (शहनाई नामक बाजा ?)



और भेरियाँ बज रही थीं। कई देवता भी मूर्त्ति रूप में वहाँ बनाकर रखे थे, जिनके आगे जा-जाकर सम्मानपूर्वक सब लोग झुकते थे और दण्डवत् प्रणाम करते थे। विशेष भावना में भरकर यन्त्र-मन्त्र का जप करते थे; तथा अनेक प्रकार की स्थापनाएँ की जा रही थीं।

नचात चारु अंगना। सुजान देव अंगना॥
कमी न कौन काज की। प्रभाव राम राज की॥

उस समय सुन्दर स्त्रियाँ नाच रही थीं, और देवांगनाएँ नृत्य करती थीं। सचमुच राम-राज्य के प्रभाव के कारण उसमें कोई कमी नहीं थी।

सरस्वती छन्द

देश देशन की क्रिया सिखवन्त है द्विज एक।
बाण और कमान की विधि देत आन अनेक॥
भाँति भाँतिन सौं पढ़ावत बार नारि सिंगार।
कोक काव्य पढ़ै कहूँ व्याकरण वेद विचार॥

राम के राज्य की महिमा का वर्णन करते हुए कवि जी कहते हैं—कुछ लोगों को पण्डितगण देश-विदेशों के काम सिखा रहे हैं; कहीं लोगों को बाण और धनुष विद्या सिखाई जा रही है; कहीं अनेक प्रकार से अंगनाओं को श्रृंगार रस की शिक्षा दी जा रही है; कहीं बालकों को पढ़ाया जा रहा है; कहीं कुछ लोग कोक-काव्य (कामशास्त्र) पढ़ रहे हैं, तो व्याकरण और वेदों का विचार हो रहा है।

राम परम पवित्र हैं रघुवंश के अवतार।
दुष्ट दैतन के सँहारक संत प्राण-अधार॥
देश देश नरेश जीते शेष कौन गुलाम।
यत्र-तत्र धुजा बँधी जै-पत्र की सब धाम॥

रघुकुल के अवतार श्री राम परम पवित्र हैं। वे दुष्ट दैत्यों के संहारक तथा

संतों के प्राण-आधार हैं (अर्थात् संतों की रक्षा करनेवाले हैं)। उन्होंने देश-देशान्तरों के राजा-महाराजाओं को जीतकर अपने अधीन कर लिया है। जगह-जगह ध्वजाएँ बँधी हुई हैं तथा जीत के चिह्न स्वरूप झंडियाँ बँधी हैं।

बाँट तीन दिशा तिहूँ सुत राजधानी राम।
बोलि राज वसिष्ठ कीन विचार केतक जाम॥
साज राघव राज के घट पूर राखसि एक।
आम्र मौलि नदी सुउदकं और पुहुप अनेक॥

तब राजा दशरथ ने तीन दिशाएँ तो अपने तीनों पुत्रों को बाँट दीं; और सारी राजधानी रामचन्द्र जी को देने के लिए वसिष्ठ मुनि को बुलाकर कुछ पहर तक विचार किया। तब राम के राज्यभिषेक की सारी सामग्री, आम की टहनियाँ, सुन्दर (पवित्र) नदियों का जल और अनेक प्रकार के पुष्प आदि एक कलश में भरकर रख दिये।

थार चार अपार कुंकुम चंदनादि अनन्त।
राज-साज धरे सबै तहँ आन-आन दुरन्त॥
मन्थरा, गन्धर्विनी ब्रह्मा पठी तिह काल।
बाज-साज सने चढ़ी सब शुभ्र धवल उताल॥

बहुत-सा चन्दन और अपार कुंकुम आदि लाकर चार थालों में रख दिये और राज्याभिषेक के सभी तरह के साज वहाँ लाकर रख दिये। उसी समय ब्रह्मा ने एक गन्धर्विणी मंथरा* को भेजा और वह बाजे तथा सब साज देखकर जल्दी से एक सफेद सुन्दर महल पर चढ़ गई।

---

* पुराणों के अनुसार देवताओं का कार्य सिद्ध करने के लिए ब्रह्मा ने एक गन्धर्विणी को भेजा था, जो जाकर मन्थरा के शरीर में प्रविष्ट हो गई। तब मन्थरा ने कैकेयी को सिखाया जिससे राम वन गये और दैत्यों का संहार करके उन्होंने देवताओं का कार्य सिद्ध किया।

वेणु वीण मृदंग वादन सुन रही चकवाल।
राम राज उठी जय-ध्वनि भूमि भूरि विशाल॥
जात ही सँग कैकई इह भाँति बोली बात।
हाथ बात छुटी चली वर माँगिहै किह रात॥

उस समय उसने चकित होकर बाँसुरी, बीन, मृदंग आदि की ध्वनि सुनी। सारी पृथ्वी पर से राम-राज्य की जय-ध्वनि बहुत जोर से उठी। बस वह मन्थरा तुरन्त कैकेयी के पास पहुँची, और कहने लगी—अरी! हाथों से बात निकली जा रही है। वह दो वर किस दिन माँगेगी? (आज ही माँग ले।)

कैकई इमि जौ सुनी भइ दुःखिता सरबंग।
झूम भूमि गिरी मृगी जिमि लागि बाण सुरंग॥
जात ही अवधेश कौ इह भाँति बोली बैन।
दीजिये वर भूप मोकों जो कहे दुइ दैन॥

कैकेयी यह बात सुनकर बहुत दुखी हुई। जिस प्रकार कोई सुन्दर हरिणी बाण लगने से गिर जाय, उसी प्रकार कैकेयी भी चक्कर खाकर पृथ्वी पर गिर पड़ी। फिर वह अवधेश के पास पहुँची और कहने लगी—हे राजन्! जो वर आपने मुझे देने के लिए कहे हैं, वह अब दीजिए।

राम को बन दीजिये मम पुत्र को निज राज।
राज साज सुसंपदा दोउ चँवर छत्र समाज॥
देश और विदेश की ठकुराइ दै सब मोहिं।
सत्य-शील सती जती व्रत तउ पछानों तोहिं॥

पहले वर के अनुसार राम को बन वास और दूसरे वर से मेरे पुत्र (भरत) को अपना राज्य तथा दोनों ओर के चँवर, छत्र तथा सारी राज्य-संपत्ति भी दीजिए। मुझे देश-विदेश की ठकुराई (शासन) दीजिए। मैं आपको तभी शीलवान, यति और व्रती समझूँगी, जब आप ये बातें मान लेंगे।

पापिनी वन राम को पैहै कहा जस काढ़।
भस्म आनन पै गई कहि कैस के असि बाढ़॥
कोप भूप कुवंड लै तुह काटिए इहि काल।
नाश तोर न कीजिए तकि छाँड़िए तुहि बाल॥

राजा दशरथ ने कहा—हे पापिनी! राम को जंगल में भेजकर तू क्या यश प्राप्त करेगी? तेरे मुँह पर राख पड़े, तूने तो यह तलवार की धार जैसी तीखी बात कह दी। क्रोध में मेरा तो जी चाहता है कि धनुष लेकर इसी समय तुझे काट डालूँ। परन्तु क्या करूँ! तू नारी है, इसलिए छोड़ देता हूँ।

नगसरूपी छन्द

नृदेव देव राम है। अभेद धर्म धाम है॥
अबुद्ध नारि तैं मनै। अशुद्ध बात को भनै॥

अरी कैकेयी! श्री रामचन्द्र मनुष्य क्या, देवताओं के भी राजा हैं। वह भेद-भाव नहीं जानते। वह तो धर्म का स्थान हैं। अरी मूर्ख नारी, तूने बहुत बुरी बात कही।

अगाध है अनंत है। अभूत सोभवन्त है॥
कृपालु कर्म-कारणं। बिहाल ग्यालु तारणं॥
अनेक संत तारणं। अदेव देव कारणं॥
सुरेश भाय रूपणं। समृद्ध सिद्ध भूपनं॥

अरी! राम तो अगाध, अनन्त तथा अभूत हैं अर्थात् पांच-भौतिक तत्त्वों से रहित (या परे) हैं; महान् शोभावाले हैं। वह बहुत कृपालु, सभी कर्मों के कारण और बुरी अवस्थाओं से भी पार करनेवाले हैं। अनेक साधु पुरुषों को तारनेवाले और देव-दानवों के कारण-रूप हैं। वे साक्षात् इन्द्र का रूप धारण करनेवाले तथा अपनी सम्पत्ति के कारण राजाओं के भी राजा और सिद्धों के भी सिद्ध हैं।

वरं नरेश दीजिये। कहे सु पूर कीजिये ॥
न शंक राज धारिये। न बोल बोल हारिये ॥

कैकेयी ने कहा—राजन् ! जो वर देने के लिए कहे हैं, वे दीजिए; और जो कहा है, उसे पूरा कीजिए। शंका न कीजिए, और अपने वचनों से न हटिए।

अर्ध-नगसरूपी छन्द

न लाजिये। न भाजिये ॥ रघेश को। वनेश को ॥
विदा करो। धरा हरो ॥ न भाजिये। विराजिये ॥
वसिष्ठ को। द्विजेश को ॥ बुलाइये । पठाइये ॥
नरेश जी। उसेस ली ॥ घुमे घिरे। धरा गिरे ॥
सुचेत भे। अचेत ते ॥ उसाँस लै। उदास ह्वै ॥

हे राजन् ! लज्जा ना करें, वचनों से न भागें, राम को वन भेजकर, धरती का भार दूर करें। वचन से न हटें, स्थिर-चित्त हों। वसिष्ठ और पुरोहित को बुलाकर राम को (वन) भेजने की आज्ञा दें।

यह सुनकर राजा दशरथ ने ठण्ढा साँस भरा, और घूमकर पृथ्वी पर गिर पड़े। कुछ देर बाद जब चेतना हुई, तब बेहोशी की-सी दशा में एक लम्बा साँस लिया और उदास हो गये।

उगाध छन्द

सवारि नैनं। उदास बैनं ॥ कह्यो कुनारी। कुवृत्तिकारी ॥
कलंक रूपा। कुवृत्त कूपा ॥ निलज्ज नैनी। कुवाक बैनी ॥
कलंक कर्त्री। समृद्धि हर्त्री ॥ अकृत्य कर्मा। निलज्ज धर्मा ॥
अलज्ज धामं। निलज्ज वामं ॥ अशोभ कर्त्री। सुशोभ हर्त्री ॥
निलज्ज नारी। कुकर्म-कारी ॥ अधर्म रूपा। अकाज कूपा ॥
अघा पिटारी। कुकर्म-कारी ॥ मरै न मर्त्री। अकाज कर्त्री ॥

राजा दशरथ ने आँसुओं से भरी हुई आँखों से उदास होकर कहा— अरी कैकेयी, तू तो सचमुच कुनारी है, तेरा स्वभाव बहुत बुरा है। तू कलंक रूपा है। बुरे स्वभाव का तो मानो कूआँ है। तेरी आँखों में लज्जा नहीं। तेरे वाक्य बुरे हैं। अरी कलंकिनी! सम्पत्ति का नाश करनेवाली तथा बुरे कर्म करनेवाली और निर्लज्ज! निर्लजता की घर! बुरी नारी! बुरा करनेवाली और शोभा हरनेवाली निर्लज्ज नारी, कुकर्मिणी, अधर्म-रूपिणी तथा अयोग्य कर्म करनेवाली! तू पापों की पिटारी है, कुकर्मा है। तू तो मारने पर भी न मरनेवाली तथा अकाज करनेवाली है।

कैकेयी उवाच

नरेश मानो। कह्यो पछानो॥ वदो सु देहू। वरं दु मोहू॥
चितार लीजे। कह्यो सु दीजे॥ न धर्म हारो। न भ्रम्म टारो॥
बुला वसिष्ठै। अपूर्व इष्टै॥ कहो सियेशो। निकार देशो॥
चिरं न कीजै। सु मान लीजै॥ ऋषीश रामं। निकार धामं॥

कैकेयी ने कहा—हे राजन्! मेरा कहा मानें और अपनी बातें याद करें। जो दो वर देने की प्रतिज्ञा की थी, वे दीजिए। कहा हुआ याद कीजिए। अपना धर्म न हारें; भ्रम में पड़कर अपना प्रण न टालें। अपूर्व शुभ-चिन्तक वसिष्ठ को बुलावें, और सियापति रामचन्द्र को देश से निकालने की आज्ञा दें; देर न करें। मेरा कहना मानें और राम को ऋषीश की तरह बनाकर (अर्थात् ऋषियों जैसा वेश बनाकर) बाहर भेज दें।

रहै न यानी। भई दिवानी॥ चुपै न बौरी। बकैत डौरी॥
ध्रिगंस रूपा। निषेध कूपा॥ दुवाक बैनी। नरेश छैनी॥
निकार रामं। अधार धामं॥ हतो निजेशं। कुकर्म भेशं॥

यह सुनकर राजा दशरथने कहा—अरी! क्या तू चुप नहीं रह सकती? क्या पागल हो गई है? अरी बावली! चुप नहीं रहती? क्यों बक रही है?

तेरे स्वरूप को धिक्कार है ! तू नीचता का कूआँ है, बुरे वाक्य बोलनेवाली है। राज्य और राजा के लिए मानो तू छेनी (पत्थर काटने का एक छोटा औजार) है। अरी ! तू राम को घर से निकालकर अयोध्या को आधार-शून्य करना चाहती है ? इस तरह तो तू अपने स्वामी को मार रही है। यह तेरा कर्म बहुत बुरा है और तेरा वेष भी निन्दनीय है।

उगाथा छन्द

अजित्त जित्ते अवाह वाहे। अखण्ड खण्डे अदाह दाहे॥
अदंड दंडे अडंग डंगे। अमुंड मुंडे अभंग भंगे॥
अकर्म कर्मे अलक्ख लक्खे। अदंड दंडे अभक्ख भक्खे॥
अथाह थाहे अदाह दग्गे। अभंग भंगे अवाह वाहे॥
अभिज्ज भिज्जे अजाल जाले। अखाय खाये अचाल चाले॥
अभिन्न भिन्ने अदंड दंडे। अकित्त कित्ते अमंड मंडे॥
अछिद्द छिद्दे अदग्ग दग्गे। अचोर चोरे अटग्ग टग्गे॥
अभिद्य भेदे अफोड़ फोड़े। अकज्ज कज्जे अजोड़ जोड़े॥

राजा ने कहा—सचमुच स्त्रियों ने न जीते जा सकनेवालों को भी जीत लिया है। जो लोग किसी काम में वाहे (जोते या लगाये) नहीं जा सकते, उन्हें भी जोत (काम में लगा) दिया है। जो अटूट हैं, उन्हें तोड़ दिया है और जो जलाये नहीं जा सकते, उन्हें जला डाला है। उन्होंने अदण्ड्यों को भी दण्डित करवा दिया है; जिन्हें कभी डसा नहीं जा सकता (अर्थात् जिनका कभी बुरा नहीं किया जा सकता) उन्हें भी डसवा दिया (अर्थात् उनका भी बुरा करवा दिया) है। इन स्त्रियों के कारण ही न मूँड़नेवाले मूँड़ लिये गये हैं; और जिन्हें कभी भंग नहीं किया जा सकता, उन्हें भी भंग कर दिया गया है। इन के कारण न करने योग्य कार्य किये गये हैं, न देखने योग्य (स्थान, पदार्थ आदि) देखे गये हैं, अदण्ड्यों को दण्ड दिया गया है, अभक्ष्य खाया गया है, अथाहों अर्थात् गम्भीरों की भी थाह पा

ली गई है, न जलाने योग्यों को जलाया गया है, न तोड़े जानेवालों को तोड़ा गया है, तथा न पकड़ने योग्यों को पकड़ लिया गया है।

स्त्रियों ने न भींगने योग्यों को भिगो दिया, न फँसने योग्यों को फँसा लिया, न खपाये जा सकनेवालों को खपा दिया, और न चलनेवालों को चला दिया। जो भेदन के अयोग्य थे, उनका भेद किया गया; दण्ड न देने योग्यों को दण्ड दिया गया, अकृत्य कर्म भी किये गये, और न सजाने योग्यों को सजाया गया। इनके कारण ही न छेदनेवालों को छेद दिया गया, न दागे जानेवालों को दाग दिया गया, न चुराये जाने योग्यों को चुराया गया, न ठगनेवालों को ठगा गया, भेदन न करनेवालों को भेद दिया गया, न फोड़नेवालों को फोड़ दिया गया, तथा जिनमें कोई कज (दोप या बुराई) नहीं हो सकती, उनमें भी कज (दोष) निकाली गई। जो नहीं मिलाये जा सकते, उन्हें भी मिलाया गया है।

अदग्ग दग्गे अमोड़ मोड़े। अखिच्च खिच्चे अजोड़ जोड़े ॥
अकड्ढ कड्ढे असाध साधे। अफट्ट फट्टे अफाँध फाँधे ॥
अधंध धंधे अकाज काजे। अभिन्न भिन्ने अभज्ज भज्जे ॥
अछेड़ छेड़े अलभ्य लभ्भे। अजित्त जित्ते अवध्य वद्धे ॥
अचीर चीरे अताड़ ताड़े। अठट्ट टट्टे अफाड़ फाड़े ॥
अधक्क धक्के अपंग पंगे। अजुद्ध जुद्धे अजंग जंगे ॥
अकुट्ट कुट्टे अघुट्ट घाये। अचूर चूरे अदाँव दाये ॥
अभीर भीरे अभंग भंगे। अटूक टूके अकंग कंगे ॥

राजा ने कहा—इन स्त्रियों के कारण ही न दागने (जलाने) योग्यों को दाग दिया गया, न मोड़ने योग्यों को मोड़ा गया, न खींचने योग्यों को खींचा गया, न जोड़ने योग्यों को जोड़ा गया, न निकालने योग्यों को निकाला गया, और जो साधने के योग्य नहीं थे, उन्हें साधा गया। जो फाड़े नहीं जा सकते, उन्हें फाड़ा गया, न फँसाने योग्यों को भी फँसाया गया है।

इन्हीं के कारण काम-धन्धे से रहितों को धन्धे दिये गये, अकृत्य किये गये, अभिन्नों को तोड़ा गया, तथा न भजने योग्यों को भजा गया अथवा न तोड़ने योग्यों को तोड़ा गया। जिन्हें कभी छेड़ना नहीं चाहिए, उन्हें छेड़ा गया, जिन्हें नहीं प्राप्त करना चाहिए, उन्हें प्राप्त किया गया, जो जीते जाने के योग्य नहीं, उन्हें जीतना पड़ा तथा अवध्यों का भी वध करना पड़ा है।

इन्हीं के कारण न चीरने योग्यों को भी चीरा गया, जिन्हें ताड़ना नहीं चाहिए, उन्हें ताड़ना दी गई और जिनकी हँसी नहीं उड़ानी चाहिए उनकी भी हँसी उड़ाई गई। न फाड़ने योग्यों को फाड़ा गया, न धकेलने योग्यों को धक्का दिया गया, तथा जो अपंगु हैं (अर्थात् लँगड़े नहीं हैं) स्त्रियों के कारण उन्हें भी पंगु (लँगड़ा) बना दिया गया। जिनके साथ कभी युद्ध नहीं करना चाहिए, उनसे भी युद्ध करना पड़ा तथा जो लड़ना नहीं चाहते, उन्हें लड़ाया गया।

इन स्त्रियों के कारण ही न पीटने योग्यों को भी पीटा गया, जिन्हें दबाना नहीं चाहिए, उन्हें भी दबाया गया, अचूरों को भी चूर किया गया और जिनसे कोई दाँव-पेंच नहीं करना चाहिए, उनसे भी दाँव-पेंच करने पड़े हैं। अभीरुओं (बलवानों) को भीरु (कायर) बनाया गया, अभंगों को भंग किया गया, अटूकों के टुकड़े किये गये, न सजाने योग्यों को सजाया गया है।

अखिद्द खेदे अढाह ढाहे। अगंज गंजे अवाह वाहे॥
अमुन्न मुन्ने अहेह हेहे। वृचन्न नारी न सुक्ख केहे॥

राजा ने कहा—इन स्त्रियों के कारण ही जिन्हें खेद नहीं पहुँचाना चाहिए, उन्हें भी खेद पहुँचाया गया तथा जिन्हें ढाना नहीं चाहिए, उन्हें भी ढाया गया; और जिनका गंजन (अपमान) नहीं करना चाहिए, उनका भी अपमान किया गया। न जोते जानेवालों को अर्थात् काम में न लगाये जानेवालों को भी काम में लगाया गया है, न मूँड़नेवालों को मूँड़ा गया है और न धकेलने-योग्यों को धक्के दिये गये हैं। इस प्रकार की नारियों के मोह-जाल में फँसे हुए लोगों को सुख कैसा ? (अर्थात् सुख नहीं है।)

दोहा

इह विधि कैकइ हठ गह्यो, वर माँगन नृप तीर।
अति आतुर क्या कहि सकै, विंध्यो काम के तीर॥

कवि कहते हैं—इस प्रकार कैकेयी ने राजा से दो वर माँगने का हठ पकड़ रखा है, और बेचारे राजा काम के बाणों से पहले ही विंध चुके हैं; इसलिए दुखी तो हो रहे हैं, पर कह कुछ भी नहीं सकते।

बहु विधि पर पाँयन रह्यो, मोरे बचन अनेक।
गहि अवहठ अबला रही, मान्यो वचन न एक॥

राजा दशरथ अनेक प्रकार से पैरों पर गिर रहे हैं और उसके वचनों को 'ना-ना' करके अमान्य भी कर रहे हैं; परन्तु नारी ने इतनी बुरी तरह से हठ पकड़ रखा है कि उसने उनका एक भी वचन नहीं माना।

वर दीयो छोरूँ नहीं, तैं करि कोटि उपाय।
घर मो सुत को दीजिए, वनवासै रघुराय॥

कैकेयी ने कहा—राजन्! जो दो वर मुझे दिये गये हैं, उन्हें मैं नहीं छोडूँगी; आप चाहे कितने ही उपाय क्यों न करें। मैं फिर कहती हूँ कि यह राज्य मेरे पुत्र को दे दें और रामचन्द्र को वनवास दें।

भूप धरनि बिन बुधि गिर्‌यो, सुनत वचन तिय कान।
जिमि मृगेश वन के विषै, बध्यो बधिक वर बाण॥

राजा दशरथ कैकेयी के ये वचन सुनकर जड़-बुद्धि की तरह पृथ्वी पर गिर पड़े, जैसे वन में शेर शिकारी के तीखे बाण से चोट खाकर गिर पड़ता है।

तरफरात पृथवी पर्‌यो, सुनि वन राम उचार।
पलक प्राण त्यागे तजत, मध्य सफरि सर वार॥

राजा दशरथ राम-वन-गमन की बात सुनकर पृथ्वी पर गिरकर इस प्रकार मूर्च्छित होकर तड़पने लगे, जैसे मछली सरोवर से निकलने पर तड़पती है।

राम नाम श्रवणहिं सुन्यो, उठ थिर भयो सुचेत ।
जनु रण सुभट गिर्‍यो उठै, गहि असि निडर सुचेत ॥

जब राजा ने राम का नाम कानों से सुना, तब वह सचेत होकर इस प्रकार उठ बैठे, जैसे योद्धा गिरकर उठता और तलवार पकड़कर निडर हो जाता है ।

प्राण-पतन नृपवर सह्यो, धरम न छोड़ा जाय ।
देन कहे जो वर हुते, तन-युत दिये चुकाय ॥

राजा दशरथ ने अपना मरण तो सह लिया, परन्तु अपना धर्म नहीं छोड़ा । वर देने की जो प्रतिज्ञा की थी, वह मानो अपने शरीर के साथ ही (प्राण देकर) पूरी की ।

वसिष्ठ प्रति कैकेयी तथा राजा उवाच

राम पयानो वन करै, भरत करै ठकुराइ ।
वर्ष चतुर्दश के बिते, फिरि राजा रघुराइ ॥

राजा और कैकेयी दोनों ने वसिष्ठ मुनि (जो उनके पुरोहित थे) से (एक ने दुःख से, दूसरे ने प्रसन्नता से) कहा कि रामचन्द्र चौदह वर्ष के लिए वनवास करेंगे और भरत राज्य करें । चौदह वर्ष बीतने पर फिर रामचन्द्र राजा हों ।

कही वसिष्ठ सुधार कर, श्री रघुवर सों जाय ।
बरस चतुर्दश भरत नृप, पुनि नृप श्री रघुराय ॥

तब वसिष्ठ मुनि ने जाकर रामचन्द्र से कहा—चौदह बरस तक भरत राज्य करें । फिर तुम राजा बन सकोगे ।

सोरठा

गृह आवत रघुराय, सभु धन दियो लुटाय कै ।
कटि तरकसी सुहाय, बोलत भै सिय सों वचन ॥

श्री रामचन्द्र जी ने घर आया हुआ सारा धन लुटा दिया (अर्थात् राज्य आदि के लिए कोई चिन्ता नहीं की)। रामचन्द्र जी की कटि (कमर) पर तरकस शोभायमान था। वे सीता से कहने लगे—

सुन सिय सुभग सुजान, रहो कुशल्या तीर तुम।
राज करौं फिरि आन, तोहि सहित वनवास वसि॥

हे सौभाग्यशालिनी तथा चतुर सीता! तुम माता कौशल्या के पास रहो, और मैं वन को जाता हूँ। वन से लौटने पर तुम्हारे साथ राज्य करूँगा।

राम प्रति सीता उवाच

मैं न तजौं पिय संग, कैसो दुःख जिय पै परै।
तनिक न मोरउँ अंग, अँग से होइ अनंग किन॥

सीता ने राम से कहा—स्वामी! मैं आपका साथ नहीं छोड़ूँगी; चाहे कितना ही दुःख झेलना पड़े। मैं चाहे अनंग (अंगों से रहित) ही क्यों न हो जाऊँ, पर आपसे मुँह नहीं मोड़ूँगी (अलग न होऊँगी)।

सीता प्रति राम उवाच

सवैया

जो न रहौ ससुरार कृशोदरि जाहि पिता गृह तोहि पठै देउँ।
नैक शुभानन तें हम कौ जुइ ठाट कहौ सुइ गाठ गठै देउँ॥
जे कछु चाह करो धन की टुक मोहिं कहो सब तोहि उठै देउँ।
केतक औध को राज सुलोचनि, रंक को लंक निसंक लुटै देउँ॥

राम ने सीता से कहा—हे कृशोदरि! यदि तुम यहाँ ससुराल में रहना नहीं चाहतीं, तो अपने पिता के घर चली जाओ। कहो तो तुम्हें वहाँ भेज दूँ। तुम अपने सुन्दर मुख से जो कुछ कहोगी, वही बात पूरी कर दूँगा। यदि तुम्हें कुछ धन की इच्छा हो तो कहो; मैं सारा धन तुम्हें दे दूँगा। हे सुलोचने,

अयोध्या का राज्य ही क्या ! मैं तुम्हारे लिए स्वर्णमयी लंका का राज्य भी कंगालों को लुटा सकता हूँ।

घोर सिया वन तू सुकुमार कहो हम सों कस कै निबहैहै ।
गूँजत सिंह डकारत कोल भयानक भील लखै भ्रम पैहै ॥
सूँकत साँप वकारत बाघ भकारत भूत महा दुख दैहै ।
तू सुकुमार रची करतार विचार चले तुहि क्यूँ बनि ऐहै ॥

हे सीता ! बन बहुत डरावना है और तुम बहुत कोमल हो। मुझे बतलाओ, मेरे साथ तुम्हारा संग कैसे निभेगा ? वहाँ बन में शेर गरजते हैं और कोल (सूअर) डकारते हैं। भयानक भीलों को देखकर तुम डर जाओगी। बन में साँप फुफकारते हैं, बाघ-बघेरे बोलते हैं और भयंकर भूत-पिशाच महा दुःख देते हैं। ईश्वर ने तुम्हें बहुत कोमल बनाया है। जरा सोच-समझ लो, बन में क्यों जाना चाहती हो ?

राम प्रति सीता उवाच

शूल सहौं तन सूक रहौं पर सी न कहौं सिर शूल सहूँगी ।
बाघ बघार फनीन फुँकार सुसीस गिरै पर सी न कहूँगी ।
वास कहा वनवास भलो नहिं पास तजौं पिय पाय गहूँगी ।
हास कहा इ उदास समै गृह आस रहौ पर मैं न रहूँगी ॥

सीता ने कहा—हे नाथ ! मैं शूल (काँटे) सह लूँगी, चाहे मेरा शरीर सूख जाय, फिर भी 'सी' नहीं करूँगी। सभी दुख सिर पर झेलूँगी। बाघों का बोलना, साँपों की फुफकार आदि दुःखों के पहाड़ चाहे सिर पर आ पड़ें, फिर भी 'सी' नहीं करूँगी। मेरे लिए महल नहीं, बल्कि बनवास अच्छा है, क्योंकि मैं आपका साथ नहीं छोड़ सकती। बन में मुझे आपके चरणों का सहारा रहेगा। हे प्रभु ! इस उदासी के समय यह हँसी अच्छी नहीं। घर में चाहे कितने ही सुख की आशा क्यों न हो, पर मैं नहीं रहूँगी।

राम उवाच सीता प्रति

रास कहाँ तुहि वास करौ गृह सास की सेव भली विध कीजै।
काल ही वास वनै मृग-लोचनि राज करौं तुम सों सुनि लीजै।
जौ न लगै जिय औध शुभाननि! जाहि पितागृह साँच भनीजै।
तात की वात गड़ी जिय जात सिधात वनै मुहि आदिस दीजै॥

श्रीराम ने कहा—सीते! मैं सच कह रहा हूँ, तुम महलों में रहकर ही भली भाँति सासों की सेवा करो। मैं कुछ दिन वन में रहकर, कल ही समझो, लौट आऊँगा, और तुम्हारे साथ फिर राज्य करूँगा। परन्तु यदि यहाँ भी जी न लगता हो तो पिता के घर चली जाओ। मैं सच कह रहा हूँ, मेरे मन में पिता की वात वस गई है। मुझे वन में जाना ही चाहिए, वस अब मुझे आज्ञा दो।

लक्ष्मण उवाच

बात इतै इह भाँति भई सुनि आइगे भ्रात शरासन लीने।
कौन कुपूत भयो कुल में जिन रामहिं बास बनै कहुँ दीने।
काम के वाण विंध्यो वस कामिनि कूर कुचाल महामति हीने।
राँड कुभाँड के हाथ विक्यो कपि नाचत नाच छरी जिमि चीने॥

इधर यह बात हो रही थी, उधर जब लक्ष्मण ने यह सुना तो हाथ में धनुष-वाण लिये हुए वहाँ आ पहुँचे और कहने लगे—इस कुल में ऐसा कौन कुपुत्र उत्पन्न हुआ, जिसने रामचन्द्र जैसे को भी बन-वास दिया है? वह कौन है जो कामदेव के वाणों से विंधा हुआ, कामिनी के वश में पड़ा हुआ, क्रूर, भ्रष्टाचारी और बुद्धिहीन है? ऐसा प्रतीत होता है, मानो वह बन्दर की तरह छड़ी के इशारे पर नाचनेवाला है, जो राँड कुभाँड नारी के हाथों में पड़ा हुआ इस तरह का कार्य कर रहा है।

काम को दंड लिए कर कैकइ वानर ज्यों नृप नाच नचावै।
ऐंठन ऐंठ अमैठ लिये ढिग वैठ सुआ जिमि पाठ पढ़ावै।
सौतिन सीस पै ईश को ईश पृथीश जूँ चाम कै दाम चलावै।
क्रूर कुजाति कुपंथ दुरानन लोक गयो परलोक गँवावै॥

लक्ष्मण ने कहा—सचमुच कैकेयी मदारी रूप है जो कामदेव का दंड हाथ में लेकर राजा को बन्दर की तरह नाच नचा रही है। अभिमान भरी अभिमानिनी ऐंठ से राजा के पास बैठकर उसे तोते की तरह पाठ पढ़ा रही है। सचमुच कैकेयी अपने स्वामी की भी स्वामी होकर सौतों के सिर पर एक राजा की तरह चमड़े के सिक्के चला रही है। कैकेयी तू बड़ी क्रूर है, तू कुजाति है। अरी दुरानने ! इस बुरे रास्ते पर चलने से तूने अपना यह लोक (संसार) तो गँवा ही दिया है; परन्तु अब तू अपना रहा-सहा परलोक (स्वर्ग) भी क्यों गँवाना चाहती है ? (अर्थात् अब भी सँभल जा; नहीं तो तेरे दोनों लोक बिगड़ जायँगे।)

लोग कुटेव लगे उनकी प्रभु पावत जे मुहि क्यों वन ऐहै।
जो हठ वैठ रहौं घर मो जस क्यों चलिहै रघुवंश लजैहै।
काल ही काल उचारत काल गयो इह काल सभौ छल जैहै।
धाम रहौं नहिं साँचि कहौं इह वात गई फिर हाथ न ऐहै॥

अरी कैकेयी, देख, लोग उनकी (राजा की) निन्दा कर रहे हैं। अगर प्रभु राम बन जाते ही हैं, तो फिर मेरा यहाँ बैठे रहना क्या अच्छा है ? यदि मैं यहीं (घर में) रह गया तो यश कैसे फैलेगा ? उल्टे मैं रघु-वंश की लज्जा का कारण होऊँगा। कल, कल करते हुए समय बीत जाता है। इसी कल के बहाने यह काल सबको छल रहा है। इसलिए मैं सच कहता हूँ कि मैं भी यहाँ नहीं रहूँगा। यदि यह अवसर चूक गया तो फिर रामचन्द्र की सेवा करने का इससे बढ़कर और अच्छा अवसर हाथ नहीं आ सकेगा; इसलिए मुझे भी आज ही और अभी वन जाने के लिए तैयार होना चाहिए।

चाप धरे कर चारु कतीर तुनीर कसे दोउ वीर सुहाए।
आवध राज तिया जिह सोभत होन बिदा तिह तीर सिधाए।
पाँय परे भर नैन रहे भर मात भली विधि कंठ लगाए।
बोले ते पूत न आवत धाम बुलाय लिऊ आपुन किम आए॥

हाथों में धनुष लिये हुए तथा सुन्दर छोटी तलवार और तूणीर कसे हुए दोनों सुन्दर भाई (राम और लक्ष्मण) विदा होने के लिए वहाँ आये, जहाँ अवध-राज दशरथ की स्त्रियाँ (कौशल्या तथा सुमित्रा) थीं। आते ही पहले वे उनके पाँव पड़े। उस समय उनकी आँखें जल से पूरित थीं। माताओं ने उन्हें अंक में भरकर अच्छी तरह गले लगाया और कहा—पुत्र ! आगे तो कभी बुलाने पर भी नहीं आते थे। आज क्या बात है कि बिना बुलाये चले आये ?

माता प्रति राम उवाच

तात दियो वनवास हमैं तुम देहु रजाय अबै तहँ जाऊँ।
कंटक कानन वीहड़ गाहि त्रयोदश वर्ष विते फिरि आऊँ।
जीत रहे तु मिलौं फिरि मात मरि गए भूलि परी बखसाऊँ।
भूपति कै अरिणी बरते बस के वन मो फिर राज कमाऊँ॥

श्री रामचन्द्र ने माता से कहा—मुझे पिता ने वनवास दिया है। आप भी मुझे आज्ञा दें तो मैं वन जाऊँ। काँटों भरे जंगल तथा बीहड़ रास्ते पार करके तेरह वर्ष बीतने पर फिर आ जाऊँगा। यदि जीवित रहा तो फिर आ मिलूँगा; परन्तु यदि मर गया तो इसी समय अपने अपराधों के लिए क्षमा माँगता हूँ। मैं राजा दशरथ (पिता) को कैकेयी के ऋण से उऋण करके तथा वन में निवास करके फिर आकर राज-भोग करूँगा।

राम प्रति माता उवाच

मात सुनी इह बात जबै तब रोवत ही सुत के उर लागी।
हा, रघुवीर शिरोमणि राम चले वन को मुहि कौं कत त्यागी।

नीर बिना जिमि मीन दशा तिमि भूख पियास गई सब भागी।
झूम झराक झरी झट बाल बिशाल दवा उनके उर लागी॥

श्री रामचन्द्र की ऐसी बातें सुनकर माता कौशल्या रोती हुई अपने पुत्र राम के हृदय से लग गईं। कहने लगी—हाय रघुवीर! रघुवंश शिरोमणि राम! मुझे छोड़कर वन में क्यों जा रहे हो? तुम्हारी बातें सुनकर मेरी दशा पानी के बिना मछली की तरह हो गई है। मेरी तो भूख प्यास सब भाग गई।

यह कहकर कौशल्या चक्कर खाकर झटके के साथ पृथ्वी पर गिर पड़ी। उस समय उसके हृदय में मानो दावाग्नि जलने लगी।

जीवत पूत तवानन पेख सिया तुमरी दुति देख अघाती।
चीन्ह सुमित्रज की छवि को सब शोक बिसार हिये हरसाती।
केकइ आदिक सौतिन को लखि भौंह चढ़ाइ सदा गरबाती।
ताकहु तात! अनाथ जुँ आज चले बन को तजि कै बिललाती॥

सुध में आकर कौशल्या ने कहा—हे पुत्र राम! तेरा मुँह देखकर ही तो मैं जी रही हूँ; तथा हे सीता! तेरी सुन्दरता देखकर ही तो मैं आनन्दित होती हूँ और सब तरह के शोक आदि भूलकर हृदय में प्रसन्न होती हूँ; तथा लक्ष्मण की छवि देखकर मुझे बहुत प्रसन्नता होती है। हे पुत्रो! तुम्हारे कारण ही तो कैकेयी आदि सौतिनों को देखकर मैं भौंह चढ़ाकर चिढ़ाती तथा गर्व करती हूँ। परन्तु हे पुत्रो! क्या इसी लिए तुम सब आज मुझे अनाथिनी की तरह बिलखती छोड़कर वन जा रहे हो? (ऐसा न करो)

होड़ रहे जन कोटि कई, मिलि जोर रहे कर, एक न मानी।
लछन मात के पास बिदा कह जात भये, जिय मों इह ठानी।
सो सुनि बात, पपात धरा पर, घात भली इह बात बखानी।
जानहु, सेल सुमार लगे, छिति सोवत सूर बड़े अभिमानी॥

कवि कहते हैं कि रामचन्द्रजी को वन जाने से करोड़ों लोगों ने रोका, हाथ जोड़कर प्रार्थनाएँ कीं, परन्तु उन्होंने पिता की आज्ञा मानने के लिए

उन लोगों की बात नहीं मानी। फिर लक्ष्मण की माता के पास विदा माँगने के लिए चले। मन में यही ठान रखा था कि माता सुमित्रा से भी विदा माँग लें। परन्तु जब सुमित्रा से यह बात कही, तो वह सुनते ही पृथ्वी पर गिर पड़ी। उसे हार्दिक चोट पहुँची। इसकी उपमा यों दी जा सकती है, जैसे कोई महान् वीर बरछा लगने पर पृथ्वी पर गिरकर सदा के लिए सो जाय।

कौन कुजात कुकाज कियो जिन राघव को इह भाँत बखान्यो।
लोक अलोक गँवाय दुरानन भूप सँहार महा सुख मान्यो।
भर्म गयो उड़ कर्म कियो घट धर्म को त्याग अधर्म प्रमाण्यो।
नाक कटी निरलाज निशाचर नाह निपातत नेह न मान्यो॥

हाय ! किस नीच कुजात ने यह बुरा काम किया जो राघव को ऐसी बात कह दी कि "वन जाओ"। उस दुरानना ने तो यह लोक भी गँवाया और परलोक भी। महाराज दशरथ को मारकर भी उसने बहुत सुख माना है। सारा भ्रम उड़ गया, सचमुच उसने यह तो बहुत ही बुरा कर्म किया। उसने धर्म छोड़कर अधर्म का स्वीकार किया है। उस नीच की तो नाक कट गई ! उसने इतनी निर्लज्जता का कार्य किया कि महाराज के प्राण लेते हुए भी स्नेह का ध्यान नहीं किया। जिसने यह कुकर्म किया है, वह निन्दा के योग्य है।

सुमित्रा उवाच लक्ष्मणं प्रति

दास को भाव धरे रहियो सुत मात सरूप सिया पहिचानो।
तात के तुल्य सियापति को करि कै इह बात सही करि मानो।
जेतक कानन के दुख हैं सब ही सुख केतन मै अनुमानो।
राम के पाँय गहे रहियो बन कै घर को घर कै बन जानो॥

सुमित्रा ने लक्ष्मण को समझाते हुए कहा—हे पुत्र ! वन में जाकर सदा दास भाव से रहना; सिया रानी को माता की तरह समझना; और सियापति राम को अपने पिता के समान समझना। मेरी यह बात ठीक ही

समझना। तुम्हें वन जाने पर अनेक प्रकार के दुःख सहने पड़ेंगे, इसलिए सब दुःख अपने शरीर पर झेलना और उन्हें सुख समझना। हे पुत्र! सदा राम के चरणों में पड़े रहना—हर प्रकार से उनकी सेवा करना। अब राम जायँगे, इसलिए यदि तुम यहाँ रह गये तो राम के बिना घर को वन समझो। परन्तु यदि साथ रहे तो वन भी घर के समान ही समझना।

राजिव-लोचन राम कुमार चले वन को सँग भ्रात सुहायो।
देव, अदेव, नछत्र, शचीपति, चौंक चके मन मोद बढ़ायो।
आनन बिम्ब पर्‍यो वसुधा पर फैल रह्यो फिर हाथ न आयो।
बीच अकास निवास कियो तिन ताहितें नाम मयंक कहायो॥

इस प्रकार सब माताओं से आज्ञा लेकर, कमल-नयन श्रीराम कुमार अपने भ्राता लक्ष्मण के साथ वन को जा रहे हैं। सचमुच वह दृश्य ऐसा था कि देवता, अदेव (राक्षस), नक्षत्र, शचीपति इन्द्र आदि सभी चौंककर चकित हो गये। उन्होंने मन में बहुत आनन्द मनाया (कि अब राम वन जाकर राक्षसों का नाश करेंगे और देवताओं का कार्य पूर्ण होगा)। श्रीराम के आनन्दित मुख का बिम्ब पृथ्वी पर पड़कर फैल गया; फिर वह हाथ नहीं आया। उसी बिम्ब ने आकाश में अपना निवास कर रखा है; इसी लिए उसका नाम मयंक है। (अर्थात् चंद्रमा स्वयं कोई पदार्थ नहीं, बल्कि श्रीराम के मुख के पृथ्वी पर फैले हुए बिम्ब का प्रतिबिम्ब मात्र है।)

दोहा

पितु आज्ञा से बन चले, तजि गृह राम कुमार।
संग सिया मृग-लोचनी, जाकी प्रभा अपार॥

श्रीरामचन्द्र जी अपने पिता की आज्ञा मानकर, घर छोड़कर बन की ओर चल पड़े। उनके साथ मृग-नयनी सीता हैं, जिन की प्रभा अपार है।

अथ वन-वास कथनम्

त्रिजै छन्द

चंद को अंश चकोरन कै करि, मोरन विद्युत्लता अनुमानी ।
मत्त गयंदन इन्द्रवधू भिनुसार छटा रवि की जिय जानी ॥
देवन दोषन की हरता, अरि-देवन काल क्रिया कर मानी ।
देशन सिंधु, दिशेशन विंध्य, जोगेशन गंग कै रंग पछानी ॥

कवि सीता के सम्बन्ध में उल्लेख अलंकार द्वारा अनेक प्रकार के उल्लेख करते हैं—चकोर सीता को चन्द्र-कला समझ रहे हैं, और मोरों ने उन्हें बिजली की छटा समझा है। मत्त हाथी ऐरावत के वंशजों ने उन्हें इन्द्रवधू शची रूप, तथा प्रातःकाल ने सूर्य की प्रकाशवती छटा, देवताओं ने दोष हरनेवाली, दैत्यों ने अपनी काल-क्रिया (समाप्ति), देशों ने सिंधु देश, दिशाओं के स्वामी दिग्गजों ने विंध्य पर्वत तथा योगियों ने गंगा का स्वरूप समझा।

दोहा

उत रघुवर वन को चले, सीय सहित तजि गेह ।
इतै दशा जिह विधि भई, सकल साधु सुनि लेह ॥

उधर श्री रामचन्द्र घर-बार छोड़कर सीता के साथ वन को चल पड़े। इधर अयोध्या में जो दशा हुई, वह भी सुनिए।

माता उवाच

कवित्त

सवै सुख लै कै गए गाढ़ो दुःख देत भए,
राजा दशरथ जू को कै कै आज पात हो।

आज हूँ न छीजै, बात मान लीजै राज कीजै,
कहो काज कौन को हमारे शोण न्हात हो।
राजसी के धारो साज साधन कै कीजै काज,
कहो रघुराज आज काहे को सिधात हो।
तापसी के भेष कीने जानकी को संग लीने,
मेरे बनवासी मो उदासी दिये जात हो॥

कवि महाराज कौशल्या के मन की अवस्था का वर्णन करते हुए कहते हैं—हे राम ! तुम सभी सुख लेकर चले गये और मुझे भारी दुख दे गये। सचमुच आज तुम राजा दशरथ को मार गये हो। हाय ! अभी कुछ नहीं बिगड़ा। मेरी बात मान लो, और राज्य करो। हे राम ! तुम किस लिए हमारे रक्त में स्नान करने चले हो ? राजसी ठाठ-बाट धारण करो और यत्न-पूर्वक राज्य के कार्य चलाओ। हे राम ! बताओ तो सही, तुम किस कारण वन को जा रहे हो ? तुमने तपस्वियों का भेस बना रखा है, सीता को भी साथ ले लिया है। मेरे वनवासी पुत्र राम ! तुम मुझे आज गहरी उदासी देकर जा रहे हो।

कारे कारे कारि वेश राजा जू को छोरि देश,
तापसी को कै कै भेष साथ ही सिधारिहौं।
कुलहूँ की लाज छोरूँ राजसी के साज तोरूँ,
संग ते न मोरूँ मुख ऐसो कै विचारिहौं।
मुंद्रा कान धारूँ सारे मुख पै भभूत डारूँ,
हठि को न हारूँ पूत ! राज साज जारिहौं।
जुगिया को कीनो वेश कौशल को छोरि क्लेश,
राजा रामचन्द्र जू कै संग ही सिधारिहौं॥

कौशल्या मन में अनेक प्रकार की कल्पनाएँ करती हुई कह रही है कि मैं तो अब (शोक-सूचक) काले वस्त्र पहनकर, महाराज दशरथ का देश

छोड़कर, रामचन्द्र की तरह ही तपस्वियों का-सा वेश बनाकर साथ ही जाऊँगी। बस आज से कुल-मर्यादा छोड़कर, राजसी ठाठ छोड़कर, उनके साथ चलने से मुँह नहीं मोड़ूँगी, अब तो मेरा यही विचार है।

हे राम! सारे मुख पर भभूत (भस्म) लगाकर, कानों में मुंद्रा (कुण्डल जो योगियों और नाथ-पन्थियों के चिह्न हैं) धारण करके अपनी राजसी वेश-भूषा जला दूँगी। मैं अपनी इस प्रतिज्ञा से नहीं टलूँगी। बस अब तो योगियों का वेश बनाकर और कौशल के क्लेश और चिन्ताएँ छोड़कर अपने पुत्र रामचन्द्र के साथ ही वन जाऊँगी।

अपूर्व छन्द

कानने गे राम। धर्म कर्म धाम।
लक्ष्मण ले संग। जानकी को संग॥

श्रीराम जो धर्म-कर्म के मानो एक उत्तम धाम हैं, लक्ष्मण और सीता को साथ लेकर जंगल की ओर चले हैं।

तात त्यागे प्राण। ऊतरे वीमान।
वीचरे वीचार। मंत्रियं अप्पार॥

राम के बन जाने पर तात दशरथ ने प्राण त्याग दिये। उनके लिए आकाश से विमान उतर आये। तब मंत्री लोग अनेक प्रकार के विचार करने लगे।

बैठियो वसिस्ष्ठ। सर्व विप्रं इष्ट।
मुकलयो कागद्द। पैठाइ मागद्ध॥

ब्राह्मणों में श्रेष्ठ वसिष्ठ महाराज ने भरत के पास दूत के हाथ पत्र भेजा।

सैंकड़ों सामंत। मंतवे मातंत।
मूकल्यो कै दूत। पौन के से पूत॥

तब अनेक शूर-वीर सामंत अनेक प्रकार से मंतव्यों की मन्त्रणा करने लगे, और पवन-पुत्र की तरह के शीघ्र-गामी दूत पत्र लेकर चल पड़े।

अष्ट नद्यं लाख। दूत गे चर्वाक।
भारत आगे जाहि। जात भे ते ताहि॥

आठ नदियाँ लाँघकर चतुर वाक्य बोलनेवाले दूत चल पड़े और जहाँ भरत रहते थे, वहाँ जा पहुँचे।

उच्चरे संदेश। ऊर्ध्व गे औधेश।
पत्र वाँचे भल्ल। लाग संगे चल्ल॥

दूतों ने वहाँ जाकर भरत को यह अशुभ सन्देश दिया कि राजा दशरथ तो स्वर्ग सिधार गये। भरत ने जब वह पत्र पढ़ा, तो वे उनके साथ चल पड़े।

कोप जीयं जाग। धर्म भर्म भाग॥
त्यागहू कश्मीर। भज्यो रामा वीर॥

भरत के मन में क्रोध उत्पन्न हुआ और मानो उन्हें धर्माधर्म का कुछ ज्ञान न रहा। बस एक दम अपनी ननिहाल कश्मीर छोड़कर वे राम का नाम लेते हुए चल पड़े।

पौहुँचे अव्वद्ध। सूरमा सन्नद्ध॥
हेरयो औधेश। मृत्तकं के वेश॥

वे सभी शूरवीर, दूत और भरत अवध में आ पहुँचे। वहाँ आकर भरत ने मृतक पिता को देखा। उन्होंने अयोध्या में आकर सचमुच राजा की मृत्यु देखी। (क्योंकि उन्हें अबतक सन्देह था कि कहीं कोई चाल न हो।)

कैकेयी प्रति भरत उवाच

लख्खयो कूसूत। बुल्ल्यो सूपूत॥
ध्रिगं मैया तोहिं। लाइ लाजा मोहिं॥

सुपुत्र भरत ने कैकेयी से कहा—हे माता, तुम्हें धिक्कार है! तुमने मुझे लज्जित कर दिया। जब तुम्हारे ही कारण यह राज्य-प्रबन्ध बिगड़ा है, तब तुमने मुझे बुला भेजा; अतः तुम्हें धिक्कार है।

का कियो कूकाज। कीनि जी ना लाज॥
मोंह जैवै ताँहि। राम ह्वैगे जाँहि॥

हाय माता! यह तूने कैसा बुरा काम किया! ऐसा करते समय तुम्हें लज्जा न हुई? अब तो मैं वहीं जाऊँगा, जहाँ श्री रामचन्द्र जी गये हैं।

कुसुम-विचित्रा छन्द

तिन वनवासी रघुवर जानै। दुख सुख संगी सुख दुख मानै॥
वलकल लै कै अब वन जैहैं। रघुपति संगे वन-फल खैहैं॥

कवि वर्णन करते हुए कहते हैं—जब भरत ने श्री रामचन्द्र जी के वन-गमन और वन में होनेवाले दुःखों की कल्पना की, तब उन्हें अपने दुःख तो सुख के रूप में और घर के सुख दुःख के रूप में प्रतीत होने लगे। उन्होंने कहा—अब मैं भी वल्कल (पेड़ों की छाल के वस्त्र) पहनकर वन को जाऊँगा और श्री रामचन्द्र के समान ही मैं भी वन-फल खाऊँगा।

इह कहि वैना घर वर छोरे। वलकल धारे गहनन तोरे॥
अवधिश जारे अवधहिं छाँड्यो। रघुपति पाँवैं मन कर माँड्यो॥

भरत ने वल्कल पहन लिये और राजा दशरथ का अन्त्येष्टि-संस्कार करने के अनन्तर सब आभूषण तोड़-फोड़कर, अयोध्या छोड़ दी और श्री रामचन्द्र के चरणों में मन लगाया। बस उन्हीं को अपने मन रूपी घर में स्थान दिया। (अर्थात् सब छोड़कर श्री राम के पास चलने का विचार किया।)

लख जल थल्लं तज कुल धाए। मुनिगन संगे लइ तहँ आए॥
लखि वल रामं खल दल भीरं। गहि धनु-बाणं सित घर तीरं॥

जल-मार्ग और स्थल-मार्ग सभी लाँघते हुए, मुनियों को साथ लिये हुए भरत वहाँ पहुँचे, जहाँ श्री रामचन्द्र निवास करते थे। जब श्री राम ने सेना की तरह की भारी भीड़ देखी, तो हाथों में धनुष उठा लिया; और उसपर सफेद फलवाला तीखा तीर चढ़ा लिया।

गहि धनु रामं सर वर पूरं। अरि वर काँपे खल दल सूरं॥
नर वर हर्षे घर घर देवं। सुर अरि काँपे लख कर युद्धं॥

जब रामचन्द्र ने धनुष लेकर उस पर तीर चढ़ाया, तब मानो दुष्ट शूर-वीर शत्रु काँपने लगे। परन्तु श्रेष्ठ राजा और देवतागण अपने-अपने घरों में बहुत प्रसन्न हुए। सुरारि दैत्य और दानव यह समझकर काँपने लगे कि अब हमारे साथ राम युद्ध करेंगे, और अब हमारी मृत्यु निश्चित है।

तब चित आपै भरतहि जानी। रण रँग राते रघुवर मानी॥
दल-बल त्यागे निकल अकेले। रघुवर देखे सब दुःख भूले॥

भरत ने सोचा कि सम्भव है, मेरे साथ मुनि लोगों का समूह देखकर श्री राम को सेना आदि का सन्देह हुआ हो; और इसी लिए उन्होंने युद्ध की तैयारी कर दी हो। अतः (रामचन्द्र के मन का सन्देह दूर करने के लिए) वे अकेले ही आगे बढ़े और श्री राम को देखकर सब दुःख भूल गये।

दृग जब देखे भट-मणि रामं। सिर धर टेक्यो तज करि कामं।
इम गति देखी रघुपति जानी। भरतहि आयो तज रजधानी॥

वहाँ पहुँचकर भरत ने जब सुभट-मणि (योद्धाओं के सिरताज) रामचन्द्र को देखा, तब उनके सामने निष्काम भाव से पृथ्वी पर सिर रख दिया। तब श्री राम ने समझा कि भरत राज्य छोड़कर यहाँ आये हैं (लड़ने के लिए नहीं आये)।

रिपुहन देखे भरतहि जाने। अवधिश मूए तिस मन माने॥
रघुवर दोऊ परिहर बाणं। गिरि तर आये तज अभिमानं॥

जब शत्रुघ्न ने भरत को इस प्रकार सिर झुकाते हुए देखा, तब उन्होंने भी वैसा ही किया। श्री राम और लक्ष्मण ने समझ लिया कि अयोध्यापति राजा दशरथ की मृत्यु हो चुकी है; क्योंकि तभी तो इन्होंने (अधीनता दिखाने के लिए) इस प्रकार सिर झुकाया है। तब दोनों रघुवीर अर्थात् राम और लक्ष्मण बाण आदि वहीं रखकर पहाड़ से नीचे उतर आये और उन्होंने अपना अभिमान छोड़ दिया।

दल-बल त्यागे मिलि गल रोये। दुख विधि दीना सुख सब खोये॥
अब घर चालो रघुबर मोरे। तज हठि लागैं सब पग तोरे॥

उधर भरत और शत्रुघ्न तथा इधर रामचन्द्र और लक्ष्मण एक दूसरे से गले मिलकर खूब रोये और आपस में कहने लगे—देखो विधाता ने सब सुख छीन लिये और दुःख दे दिया।

भरत ने कहा—हे रघुवीर! अब तो आप घर लौट चलिए, हठ छोड़ दीजिए। हम सब आपके पाँव पड़ते हैं।

राम उवाच भरत प्रति

मोदक (कंठ आभूषण) छन्द

भरत कुमार न औ हठ कीजै। जाहु घरै न हमैं दुख दीजै॥
काज कह्यो जु हमैं हम मानी। त्र्योदश वर्ष वसैं वन धानी॥

राम भरत से बोले—हे भरत कुमार! अब अधिक हठ न करो और घर लौट जाओ। हमें दुख न दो, क्योंकि जो कुछ हमें पिता ने कहा है, वह हमें पूरा करना है। अब तो तेरह बरस इस वन को ही अपना घर बनाना है। (यहाँ तेरह बरस का कथन इसलिए है कि तब तक एक वर्ष बीत चुका था।)

त्र्योदश वर्ष फिरै फिरि ऐहैं। राज-सिंहासन छत्र सुहैहैं॥
जाहु घरै सिख मान हमारी। रोवत तोरि उतै महतारी॥

राम ने कहा—हे भरत! तेरह बरस बीत जाने पर हम (राम, लक्ष्मण

और सीता) सब लौट आवेंगे, तथा राज-सिंहासन पर बैठेंगे और छत्र सहित शोभा पावेंगे। तुम हमारा कहना मानो और घर लौट जाओ; क्योंकि उधर अयोध्या में तुम्हारे बिना माता रो रही होंगी।

राम प्रति भरत उवाच

जाउँ कहा पग मेट कहो तुह। लाज न लागत राम कहो मुह।
मै अति दीन मलीन बिना गत। राखहु राज बिषै चरणागत॥

भरत ने कहा—हे राम! अब मैं आपके चरण छोड़कर कहाँ जाऊँ? ऐसा करने से क्या मुझे लज्जा नहीं आवेगी? (अथवा मुझे इस प्रकार का आदेश देते हुए आपको लज्जा नहीं आती?) मैं तो बहुत दीन-हीन व्यक्ति हूँ। मैं मर्य्यादा-रहित अगतिक पुरुष हूँ; इसलिए आप स्वयं राज्य सँभालें और मुझे अपने चरणों में स्थान दें।

चच्छ बिहीन सुपच्छ जिमै कर। त्यों प्रभु तीर गिर्‌यो पग भर्तर॥
अंक रहे गहि राम तिसै तब। रोय मिले लखनादिक ही सब॥

महाराज कहते हैं कि यह विनती करके भरत इस तरह श्री रामचन्द्र के चरणों पर गिर पड़े, जिस तरह आँखों से रहित पंछी बेसुध होकर गिर पड़ता है। तब श्री राम ने उन्हें उठाकर गले लगा लिया। चारों भाई आपस में गले मिल-मिलकर स्नेह में भरकर खूब रोये।

पान पियाय जगाय सुबीरहि। फेरि कहो हँसि श्री रघुबीरहि॥
त्र्योदश बर्ष गये फिरि आवहिं। जाहु हमै किछु काज किवैहँहि॥

तब श्री राम ने भरत को पानी पिलाकर सचेत किया और हँसकर कहा—भाई भरत! अब तुम जाओ, हमें अभी बहुत काम करना है। हाँ तेरह वर्ष व्यतीत हो जाने पर हम भी फिर लौट चलेंगे। (अभिप्राय यह कि यदि हम आज तुम्हारे मोह में फँसकर चले गये तो देवताओं का कार्य अधूरा रह जायगा।)

जान गये चतुरा चित मों सब। श्री रघुवीर कही अस कै जब॥
मात समोध सु पाँवर लीनहि। और वसौं पुर औध न चीनहि॥

तब सभी चतुर पुरुष अच्छी तरह समझ गये कि इस प्रकार वन में आने का तो एक बहाना था। वास्तव में श्रीराम दुष्टों का नाश करना चाहते हैं। जब इस प्रकार सब तरह की बातें हो चुकीं, तब भरत को राम ने माता कैकेयी को समझाने के लिए भी बहुत-सी बातें कहीं। तब भरत ने श्रीराम के पाँवर (खड़ाऊँ) लिये, और मन ही मन निश्चय किया कि मैं चाहे और कोई पुर या नगर बसाकर रह लूँगा, परन्तु अयोध्या में पाँव नहीं रखूँगा। (इससे भरत की राम के प्रति स्पष्ट श्रद्धा और अपने ऊपर एक तरह की ग्लानि प्रकट होती है।)

सीस जटान कु जूट धरे वर। राज समाज दियो पउवा पर॥
राज करे दिन होत उजारइ। रैन भए रघुराज सँभारइ॥

आगे महाराज कहते हैं कि जब भरत श्री राम की खड़ाऊँ लेकर चले आये, तब उन्होंने अपने सिर पर जटाओं का जूड़ा बाँध लिया, और राज्य-भार श्री राम की खड़ाउओं पर छोड़ दिया। (अर्थात् श्री राम की खड़ाउओं को राज-सिंहासन पर रख दिया और उनका ध्यान करते हुए राज्य करने लगे।) दिन चढ़ते ही राज-काज में लग जाते थे और रात होते ही फिर श्री रामचन्द्र के स्मरण में लग जाते थे।

जर्जर भो झुर झंझर ज्यों तन। राखत श्री रघुराज विषै मन॥
वैरिन के रण वृन्द निकन्दत। भाषत कण्ठ अभूषण छन्दत॥

कवि महाराज कहते हैं कि इस प्रकार राज-काज करते हुए भरत का शरीर सूखे वृक्ष की तरह हो गया, परन्तु वह सदा मन में श्री राम का स्मरण करते रहे। उन्होंने अपना कार्य नहीं छोड़ा। प्रभु राम को साक्षी रखकर वैरियों के वृन्दों (समूहों) का नाश करते रहे। इस प्रकार हमने (अर्थात् कवि ने) कंठ आभूषण छन्द में यह वर्णन किया है।



झूला छन्द

इतै राम राजं। करै देव काजं॥
धरे वाण पाणं। भरै वीर मानं॥

कवि कहते हैं कि उधर तो भरत राज-काज कर रहे थे और इधर श्री राम देवताओं का कार्य सिद्ध कर रहे थे। दुष्टों के नाश और साधुओं की रक्षा के लिए उनके हाथ में धनुष-बाण रहता था और वे वीर भाव से भरे रहते थे।

जहाँ साल भारे। द्रुमं ताल न्यारे॥
छुएँ स्वर्ग लोकं। हरैं जात शोकं॥
तहाँ राम पैठे। महावीर ऐंठे॥
लिये संग सीता। महा शुभ्र गीता॥

कवि कहते हैं—जहाँ स्वर्ग को छूनेवाले (बहुत ऊँचे) साल, ताल, तमाल आदि के पेड़ हैं तथा जो उत्पन्न हुए शोक का नाश करनेवाले हैं, (अर्थात् जिनके नीचे बैठने पर सारा शोक नष्ट हो जाता है) उस सुन्दर स्थान पर गीता की तरह महा शुभ्र अर्थात् सत्त्व गुण-युक्त अथवा श्वेत वर्ण-वाली सीता को साथ लिये हुए, तथा वीरता में भरे हुए श्री राम पहुँचे और उसी को उन्होंने अपना निवास-स्थान बनाने का विचार किया।

विधुं वाक बैनी। मृगी राज नैनी॥
कटं छीन देशी। परी पद्मिनी सी॥

सीता का सौन्दर्य परम उत्कृष्ट था। वह चन्द्रमा के समान मुँहवाली, मृगी की आँखों की तरह आँखोंवाली, पतली कमरवाली और पद्मिनी (चार प्रकार की नारियों में सर्व-श्रेष्ठ) की तरह प्रतीत होती थी।

झूलना छन्द

चढ़े पाण बानी धरो सान मानी चछा बाण सोहै दुऊ राम रानी।
फिरै ख्याल सौं एक हावाल सेती छुटे इन्द्र सेती मनो इन्द्रधानी॥

मनो नाग बाँके लजी आँब फाँकें रँगे रंग सूहाव सो राम वारे।
मृगा देख मोहे लखे मीन रोहे जिनै नेक चीने तिनै प्राण वारे ॥

सीता के नेत्र हाथों में खिंचे हुए धनुष की तरह टेढ़े हैं, मानों वे नेत्र रूपी बाण सान पर रखे हुए (बहुत ही तीखे) हों। सीता और राम के मन में सदा एक ही से भाव उठते हैं और दोनों की एक ही सी दशा है। राम तो ऐसे प्रतीत होते हैं, मानो इन्द्रधानी (इन्द्रपुरी) छूट जाने पर स्वयं इन्द्र घूम रहे हों।

सीता के केश ऐसे प्रतीत होते हैं, मानो टेढ़े-मेढ़े साँप हों; और होंठों की सुन्दरता से मानो आम की तिरछी काटी हुई फाँकें भी लज्जित हो रही हों। उनके होंठ इतने लाल हैं, मानो राम के अनुराग से रँगे हुए हों। सीता की आँखें देखकर मृग भी मोहित हो जाते हैं और रोहू मछली भी अपनी चंचलता भूल जाती है। जो एक बार सीता की आँखें देख लेता है, वही प्राण न्योछावर करने को तैयार हो जाता है। (अर्थात् उनके नेत्रों के सौन्दर्य के आगे उसे अपने प्राण भी तुच्छ प्रतीत होते हैं।)

सुने कूक को कोकिला कोप कीने मुखं देखके चंद दारेर खाई।
लखे नैन बाँके मनै मीन मोहै लखे जात के सूर की जोत छाई॥
मनो फूल फूले लगे नैन झूले लखे लोग भूले वने जोरि ऐसे।
लखै नैन थारे बिंधे राम प्यारे रँगे रंग साराव सूहाव जैसे॥

सीता की ध्वनि इतनी सरस है कि उसे सुनकर कोयल को क्रोध होता है कि यह मुझसे भी अच्छी ध्वनिवाली कौन है? सीता का मुख देखकर ही चन्द्रमा के दो टुकड़े हो गये। उसके तिरछे नयन देखकर मीन भी मन में मस्त हो गये; तथा जहाँ जहाँ से सीता चल रही थी, वहाँ वहाँ ऐसा प्रतीत होता था, मानों सूर्य की ज्योति छा गई हो। सीता की आँखें खिले हुए फूलों की भाँति प्रतीत होती थीं। श्री राम और सीता की जोड़ी देखकर लोग सब

कुछ भूल जाते थे और कहने लगते थे—हे प्यारे श्री राम, हम तो इन आँखों से आपकी सुन्दरता देखकर मानो मदिरा के नशे में मस्त हो जाते हैं।

रँगे रंग राते मयंमत्त माते मक़बूल गूलाब के फूल सोहैं।
नरगीस ने देख के नाक ऐंठा मृगीराज के देखतें मान मोहे॥
शबो रोज शाराब ने शोर लाया प्रजा आम जाहान के पेखवारे।
भँवें तान कामान की भाँति प्यारी निकामान ही नैन के बाण मारे॥

सीताजी के नयन इस तरह गुलाबी हो रहे थे, मानो मदिरा की मस्ती से मस्त हो उठे हों; तथा शोभायुक्त गुलाब के फूल की तरह शोभायमान हो रहे थे। सीता के नेत्र देखकर नरगिस (एक तरह का फूल) ने भी नाक चढ़ा ली (अर्थात् सीता की आँखों की सुन्दरता नरगिस के फूल से भी अधिक थी)। उनके नेत्र देखते ही मृगी का मान भी टूट जाता है। वे नेत्र देखकर दिन-रात मदिरा भी शोर मचा रही है। (अर्थात् उसे भी यह सोच हो रहा है कि इनमें मुझे मात करनेवाली इतनी मस्ती कहाँ से आ गई!) वे नेत्र देखकर सारा संसार सब कुछ वारने को तैयार होता था। सीता की भौंहें इतनी सुन्दर थीं कि मानो तनी हुई कमानें हों; और इसी लिए वह बिना कमान के भी केवल आँखों से तीर चला सकती थी।

कवित्त

ऊँचे द्रुम साल जहाँ लाँघे वट ताल तहाँ,
ऐसी ठौर तप को पधारे ऐसो कौन है।
जाकी छवि देख दुति खाण्डव की फीकी लागै,
आभा ताकी नन्दन विलोकै भजे भौन है।
तारन की कहा नैक नभ न निहार्यो जाय,
सूरज की जोति तहाँ चन्द्र की जौन है।
देव न निहार्यो कोऊ दैत न विहार्यो तहाँ,
पंछी का न गमन जहाँ चींटी को न गौन है॥



कवि उस वन का वर्णन करते हैं—जहाँ ऊँचे ऊँचे साल के पेड़ हैं, जहाँ ऊँचे ऊँचे वड़ और ताल के पेड़ हैं, वहाँ तपस्या के लिए जानेवाला और कौन है ? (अर्थात् श्रीराम ही हैं जो ऐसे स्थान पर गये हैं) जिस स्थान की छवि देखकर खाण्डव वन की छवि भी फीकी लगती है, और जिसकी आभा (चमक-दमक) देखकर देवताओं का वेचारा नन्दन वन भी झूठा हो जाता है, (अर्थात् वहाँ इतने प्रकार के फल-फूल हैं जो नन्दन वन में भी नहीं हैं) उस स्थान से ऊपर की ओर देखने पर तारों की तो वात ही क्या, जरा-सा आकाश भी दिखाई नहीं देता (अर्थात् वह वहुत ही घना है)। वहाँ सूर्य का प्रकाश और चाँदनी भी नहीं पहुँच सकती। वह स्थान किसी देवता ने नहीं देखा, किसी दानव की वहाँ पहुँच नहीं हुई। वहाँ पंछी तो क्या, च्यूँटी भी नहीं पहुँच पाई। ऐसे वन में श्रीराम तपस्या के लिए पहुँचे।

अपूर्व छन्द

लक्खिए आलक्ख। तक्किए सूभच्छ ॥
पाइयो वीराध। वंकड्यो वीवाद ॥

इन पद्यों में कवि विराध नामक राक्षस के आने और उससे युद्ध होने का वर्णन करते हैं—विराध राक्षस श्री रामचन्द्र को अनजान समझकर और अपनी भोज्य सामग्री (खुराक) देखकर वहाँ आया, और वड़वड़ाने लगा।

लक्खियं अव्वद्ध। संवह्यो सानद्ध ॥
सम्भले हथ्यार। ऊरड़े लुज्झार ॥

श्रीराम ने उसे अवध्य (न मारने योग्य) देखकर और अस्त्र-शस्त्रों से सन्नद्ध (तैयार) देखकर शस्त्र सँभाले और युद्ध के लिए तैयार हो गये।

चिक्कड़े चावण्ड। सम्मुहे सावन्त ॥
सज्जिए सूवाह। अच्छरौ ऊछाह ॥

धनुषों की टंकार सुनाई देने लगी और शूर-वीर एक दूसरे के सामने



हुए। सभी सुभट योद्धा सज्जित होने लगे। यह देखकर अप्सराओं को भी उत्साह होने लगा।

पक्खरे पावंग। मोहले मातंग॥
चावड़ी चिंकार। उज्झरे लूझार॥

घोड़े इतनी सुंदरता से सजे हुए थे कि उन्हें देखकर हाथी भी मोहित हो जाते थे। सारी चावड़ी (पड़ाव) चीत्कार की ध्वनि से भर गई।

सिन्धुरे सिन्दूर। वज्जए तंदूर॥
सज्जिए सूवाह। अच्छरों ऊछाह॥

हाथी सिन्दूर से सजे हुए थे, एक प्रकार के छोटे ढोल बज रहे थे, युद्ध के लिए वीरों की तैयारी हो रही थी, अप्सराओं में उन्हें वरने का उत्साह दिखाई दे रहा था।

बिज्झुड़े ऊझाड़। सम्भले सूमार॥
हाहले हंकार। अंकड़े अंगार॥

सभी योद्धा कई भागों में बँट गये। वे एक दूसरे की मार से सँभलने का प्रयत्न करने लगे। चारों ओर हाहाकार मचा था। सभी शूर-वीर आग के अंगारों की तरह चमक रहे थे।

सम्भले लूझार। छूटते वीषार॥
हाहले हंवीर। संघरे सूवीर॥

प्रत्येक वीर योद्धा अपने को सँभाल रहा था, विषैले तीर चल रहे थे। हा-हाकार और वीरों के हुंकार सुनाई दे रहे थे। अनेक शूर-वीर मर और मार रहे थे।

अनूप नाराच छन्द

गजं गजे हयं हले हलाहली हलो हलं।
बबज्ज सिंधुरे सुरं छुटंत बाण केवलं॥

पपक्क पक्खरे तुरे भभक्ख घाइ निर्मलं।
पलुथ्थ लुथ्थ विख्खरी अमख्ख जुथ्थ उथ्थलं॥

हाथी चिंघाड़ रहे थे और घोड़ों की ठेल-पेल हो रही थी। रण में खूब हल्ला मच रहा था। बड़े-बड़े नगाड़े वज रहे थे, वाण छूट रहे थे। घोड़ों के घावों से निर्मल रक्त वह रहा था। लाशों पर लाशें पड़ी थीं। असंख्य शूर-वीर युद्ध कर रहे थे।

अजुथ्थ लुथ्थ विथ्थरी मिलंत हथ्थ वख्खयं।
अघुम्य घाइ घुम्मए चवक्क वीर दुध्धरं॥
किलं करंत खप्परी पिवंत शोण पानयं।
हहक्क भैरवं सुतं उठंत जुध्ध ज्वालयं॥

कहीं कोई अकेली लाश पड़ी थी। कहीं एक लाश का हाथ दूसरी के वक्ष (छाती) पर पड़ा था। योद्धा घायल होकर चक्कर खाते थे। दोनों ओर के वीर भयंकर शब्द करते थे। रणभूमि में खप्परधारिणी यक्षिणियाँ किलकारी मार रही थीं और रक्त-पान कर रही थीं। भैरव रूप शिव का पुत्र कार्त्तिकेय राम की ओर से ललकारता था, अथवा भैरव स्वयं अपने परिवार के साथ हुंकार कर रहा था। युद्ध में मानो अग्नि वरस रही थी।

फिकन्त फिंकरी फिरं रटंत गिद्ध वृद्धनं।
डहक्क डामरी उठं बकार वीर वैतलं॥
खहत्त खग्ग खत्रियं खिमंत धार उज्जलं।
धसक्क जान साँवलं लसंत वेग विज्जुलं॥

गीदड़ियाँ फुफकार करती हुई घूम रही थीं, बड़े-बड़े गिद्ध शब्द कर रहे थे। कहीं डमरू की डहक सुनाई देती थी, मानो वीर वैताल बोलता हो। शूर-वीरों के खड्ग आपस में खह (टकरा) रहे थे और उनकी तेज धार ऐसी चमक रही थी, मानो सावन की काली घटाओं में बिजली चमक रही हो।

पिवंत शोण खप्परी भखंत मास चावडं ।
हँकार वीर संभिड़ै लुझार धार दुद्धरं ॥
पुकार मार कै परे सहंत अंग भारयं ।
विहार देव मंदलं कटंत खग्ग धारयं ॥

खप्परधारिणी योगिनियाँ रक्त पी रही थीं, और चुड़ैलें मांस खा रही थीं। योद्धा आपस में ललकारते हुए भयंकरता से लड़ रहे थे। व 'मारो मारो' की पुकार मचा रहे थे तथा शरीर पर घाव सह रहे थे। कई वीर तलवारों से कटकर देवताओं के घर (स्वर्ग) जा रहे थे (अर्थात् मर रहे थे)।

प्रचार वार पैज कै खुमार घाइ घूमहीं ।
तपी मनो अधोमुखं सधूम आग धूमहीं ॥
टुटंत अंग भंगयं वहंत अस्त्र धारयं ।
उडंत छिच्छ इच्छयं पिवंत मास हारयं ॥

सभी वीर अपना अपना प्रचार कर (शोर मचा) रहे थे और पाँव दृढ़ता से रख रहे थे। अनेक वीर घाव लगने से उसकी खुमारी के कारण चक्कर खाकर गिर पड़ते थे। ऐसा प्रतीत होता था कि तपस्वी लोग नीचे मुँह किये हुए आग ताप रहे हों। अस्त्र-शस्त्रों की तीखी धार से अंग कटकर गिर रहे थे। उनसे जो लहू के छींटे उछल रहे थे, उनसे प्रसन्न होकर मांसाहारी पिशाच आदि इच्छानुसार (पेट भरकर) रक्त-पान कर रहे थे।

अघोरि घाय अद्घए कटे परे सु प्रासनं ।
घुमंत जान रावलं लगे सुसिद्ध आसनं ॥
परंत अंग भंग ह्वै वकन्त मार मारयं ।
वदन्त जान वंदियं सुकृत्त कृत्त पारयं ॥

कटे हुए घायल लोगों को भूतादिक शिव गण खा खाकर प्रसन्न हो रहे थे। कई घायल इस प्रकार उलटे हो रहे थे, मानो योगियों ने सिद्धासन लगा रखा हो। कइयों के अंग भंग हुए पड़े थे; फिर भी वे अपने साथियों को

उत्साह देने के लिए 'मारो मारो' चिल्ला रहे थे। वे बोलते हुए ऐसे प्रतीत होते थे, मानो वंदीजन स्तुति करने में लगे हों। (अर्थात् अपना सुकृत कविता के रूप में सुना रहे हों।)

बजन्त ताल तंबुरं विशेष वीन वेणयं।
मृदंग झाल नाफिरं सनाय भेरि भैकरं॥
उठन्त नाद निर्मलं तुरन्त ताल तत्थियं।
बदन्त कित्त बंदियं कवीन्द्र काव्य कत्थियं॥

युद्ध में प्रोत्साहन देने के लिए छैने, ढोल, तंबूरे, छोटी वीणाएँ और वीनें, मृदंग, झाल (झाँझ), नफीरियाँ, सनाय और भयंकर भेरियाँ बज रही थीं। ये सभी बाजे और साज लगातार बज रहे थे। इनमें कहीं ताल का भंग होना प्रतीत नहीं होता था। ऐसा जान पड़ता था कि वन्दीजन कीर्ति-गान कर रहे हों अथवा कवीन्द्र लोग कविता का पाठ कर रहे हों।

ढलन्त ढाल मालयं खहंत खग्ग खेतयं।
चलन्त बाण तीछनं अनन्त अन्त कंकयं॥
सिमिट्टि साँग सूँकड़ं सटक्क सूल सेलयं।
रुलन्त रुण्ड मुण्डयं झलन्त झाल अज्झलं॥

अपने परित्राण के लिए निरन्तर ढालों का प्रयोग हो रहा था और उनसे ध्वनि निकल रही थी। उन पर तलवारों की चोट पर चोट पड़ रही थी। तीखे बाण चल रहे थे। ऐसा प्रतीत होता था कि उनका कभी अन्त नहीं होगा। कई वीर सिमिटकर अपनी साँग (बरछी) दूसरे के पेट में घुसेड़ देते थे। कई योद्धा अपने त्रिशूल और नेजे एक दूसरे को मार रहे थे और कई खड्गों की असह्य चोटें सह रहे थे। शस्त्रों के प्रहार से रुण्ड मुण्ड कट कटकर गिर रहे थे।

विचित्र चित्रितं सरं वहन्त दारुणं रणं।
ढलन्त ढाल अड्ढलं ढुलन्त चारु चामरं॥

दलन्त निर्दलो दलं पपात भूतलं दितं ।
उठन्त गद्द सद्दयं निनद्द नद्द दुब्भरं ॥

अनेक प्रकार के बाण वह रण और भी दारुण बना रहे थे । वे बाण जब ढाल पर रोके जाते थे, तो वे ऊपर से होकर इस तरह निकल जाते थे, जैसे कोई चँवर डुलाया जा रहा हो । दलन करने के योग्य न होने पर भी (अर्थात् अत्यन्त बलशाली होने पर भी) उस दल को योद्धा दल रहे थे । उन लड़नेवाले वीरों की गदाओं से बहुत भयंकर शब्द हो रहा था ।

भरन्त पत्र चौंसठी किलंक खेचरी करं ।
फिरन्त हूर पूरयं वरन्त दुद्धरं नरं ॥
सनद्ध बद्ध गोधयं सशोभ अंगुलं त्रिणं ।
डकन्त डाकिनी भ्रमं भखन्त आमिषं रणं ॥

भूत और खेचरगण किलकारियाँ मार रहे थे तथा चौंसठ योगिनियाँ अपने खप्पर रक्त से भर रही थीं । ऊपर आकाश में अप्सराएँ शूर-वीरों का वरण करने के लिए घूम रही थीं । शूर-वीरों ने गोह (छिपकली की तरह का एक जीव) के अंगुलित्राण (दस्ताने) पहने हुए थे । रण-भूमि में पड़े हुए मांस के टुकड़े खा-खाकर डाकिनियाँ डकार रही थीं ।

किलंक देवियं करं डहक्क डामरू सुरं ।
कड़क्क कत्तियं उटं परन्त घूर पक्खरं ॥
बवज्ज सिन्धुरे सुरं नृघात शूल सैथियं ।
भभज्ज कातरो रणं निलज्ज भज्ज भू भरं ॥

देवियाँ भी किलकार रही थीं और डमरू बजाकर प्रसन्न हो रही थीं । तलवारों के चलने की कड़-कड़ की ध्वनि हो रही थी और घोड़ों की पाखरें कटकर जमीन पर गिर रही थीं । सिन्धुर नामक रणभेरियाँ स्वर में बज रही थीं । कहीं त्रिशूलों और बरछियों से नर-संहार हो रहा था । कायर लोग निर्लज्जतापूर्वक रण से भागे जा रहे थे ।

सुशस्त्र अस्त्र सन्निधं जुझंत जोधनो जुधं।
अरुज्झ पंक लज्जनं करन्त द्रोह केवलं ॥
परन्त अंग भंग ह्वै उठन्त मांस कर्दमं।
खिलन्त जान कंदुकं सुमज्झ कान्ह गोपिकं ॥

अस्त्र-शस्त्रों से सन्नद्ध (तैयार) होकर शूर-वीर युद्ध में जूझ रहे थे। परन्तु जो लज्जा रूपी कीचड़ में फँसे हुए थे, वे केवल द्रोह कर रहे थे (क्योंकि उनसे और कुछ बन न पड़ता था)। कई शूर-वीरों के अंग कट जाने से वे मांस के कर्दम (कीचड़) में से उठते हुए ऐसे प्रतीत होते थे, मानो गोपियों में कान्ह (कृष्ण) कन्दुक-क्रीड़ा कर रहे हों (गेंद खेल रहे हों)।

डहक्क डौर डाकनं झलन्त झालरो सरं।
निनद्द नद्द नाफिरं वजन्त भेरि भीषणं ॥
घुरन्त घोर दुंदुभी करन्त कान्हरो सुरं।
करन्त झाँझरो झड़ं वजन्त बाँसुरी वरं ॥

कहीं डाकिनियाँ डमरू बजाकर शब्द कर रही थीं, तो कहीं तलवारों की झालरें झलक रही थीं। उनके चलने से खूब ध्वनि होती थी। कहीं अनेक प्रकार की नफीरियाँ बज रही थीं तो कहीं भयंकर भेरियों का शब्द हो रहा था। कहीं कान्हड़ा राग के स्वर में दुन्दुभियाँ बजा रही थीं। ऐसा प्रतीत होता था, मानो झाँझ आदि के साथ बाँसुरी बज रही हो।

नचन्त बज्जि तीछनं चलन्त चाचरी कृतं।
लिखन्त लीक उर्व्वियं सुभन्त कुण्डली करं ॥
उड़न्त धूर भूरियं खुरीन निद्दली नभं।
परन्त भूर भौरनं सुभौर ठौर जूँ जलं ॥

घोड़े बहुत तीव्र गति से उछलते थे और चंचलता से इधर-उधर चलते थे। उनके चलने पर खुरों के संघर्षण से पृथ्वी पर एक तरह की लीक (रेखा) सी बन जाती थी, और उससे एक प्रकार का वृत्त (गोल चक्कर) बन जाता

था। उनके खुरों से बहुत धूल उड़ रही थी। रणभूमि में कुछ वीरों को इतना डर हो रहा था, मानो कोई तैराक होकर भी गहरे पानी से डर रहा हो।

भजन्त धीर वीरनं चलन्त मान प्राण लै।
दलन्त पंत दन्तियं भजन्त हार मान कै॥
मिलन्त दन्त घास लै ररच्छ शब्द उच्चरं।
विराध दानवं जुझो सुहत्थि राम निर्मलं॥

युद्ध इतना भयंकर हुआ कि बड़े बड़े धीर वीर भी प्राण बचाने के लिए भाग निकले। बड़े बड़े हाथियों की पंक्तियों की पंक्तियाँ दली गईं। कई तो हार मानकर भाग ही निकले और कई अपनी रक्षा के लिए दाँतों में घास लेकर (दीनता दिखाते हुए) शरण में आये और 'रक्षा-रक्षा' कहने लगे। इस प्रकार विराध भी युद्ध में श्री राम के पवित्र हाथों से मारा गया।

इति विराध-वधाध्यायः

अथ वन में प्रवेश कथनम्

दोहा

इह विधि मारि विराध को, वन में धँसे निसंक।
सुकवि श्याम इह विध कह्यो, रघुवर युद्ध प्रसंग॥

इस प्रकार श्रीराम विराध राक्षस का अन्त करके निश्शंक होकर वन में प्रविष्ट हुए। श्याम कवि ने इस प्रकार श्रीराम के युद्ध का वर्णन किया है।

सुखदा छन्द

रिख अगस्त धाम। गये राज राम॥
धुज धरम धाम। सिया सहित बाम॥

धर्म की साक्षात् ध्वजा के रूप श्रीराम अपनी वामा सीता सहित अगस्त्य मुनि के आश्रम में पहुँचे।

लख राम बीर। रिख दीन्ह तीर॥
रिप सर्ब चीर। हरि सर्ब पीर॥

राम को वीर जानकर अगस्त्य मुनि ने उन्हें बाणों की भेंट दी; और श्री राम ने भी वहाँ के राक्षसादि मुनि-शत्रुओं को मारकर ऋषियों का कष्ट दूर किया।

रिख बिदा कीन। आसिषा दीन॥
दुति राम चीन। मुनि मनि प्रबीन॥

मुनि-मणि और प्रवीण अगस्त्य ने राम की अलौकिक सुन्दरता का परिज्ञान किया और उन्हें आशीर्वाद दिया।

प्रभु भ्रात संग। सिय सँग सुरंग॥
तजि चिन्त अंग। धस वन निसंग॥

प्रभु राम अपने भाई लक्ष्मण और सुन्दरी सीता के साथ, शरीर की चिन्ता छोड़कर, निस्संकोच भाव से वन में आगे बढ़े।

धर वाण पाण। कटि कसि कृपाण॥
भुजवर अजानु। चल तीर्थ न्हानु॥

हाथों में धनुष लिये और कमर पर तलवार बाँधे, घुटनों तक लम्बी भुजाओंवाले श्री राम ने तीर्थादि में स्नान किया।

गोदावर तीर। गये सहित वीर॥
तज राम चीर। किय सुच शरीर॥

गोदावरी नदी के किनारे पहुँचकर भाई के साथ श्री राम ने वल्कल आदि उतारकर अपना शरीर शुचि (पवित्र) किया (अर्थात् स्नान किया)।

लख राम रूप। अद्भुत अनूप॥
जहँ हुती सूप। तहँ गए भूप॥

(इसके बाद उस वन में जो घटना हुई, उसका कवि अत्यन्त संक्षेप में संकेत मात्र ही करते हैं।)

श्री राम का अद्भुत और अनुपम (अत्यन्त सुन्दर) रूप देखकर भूप (उस भूमि के पालक या रखवाले) अपनी स्वामिनी शूर्पनखा के पास गये।

कही ताहि घाति। सुनि सूप वाति॥
द्वै अथित न्हात। लहे अनुप गात॥

घाति (दूत) ने जाकर उससे कहा—स्वामिनी ! हमारी बात सुनो। दो अतिथि आकर यहाँ नहा रहे हैं; उनका शरीर बहुत ही सुन्दर है।

सुन्दरी छन्द

सूपनखा इह भाँत सुनी जब। धाय चली अविलम्ब त्रिया तब ॥
काम स्वरूप कलेवर जानै। रूप अनूप तिहूँ पुर मानै ॥

जब शूर्पनखा ने श्री राम की सुन्दरता का समाचार पाया, और उनके शरीर को तीनों लोकों में अत्यन्त सुन्दर तथा उन्हें साक्षात् काम-रूप समझा, तब वह उन्हें देखने के लिए जल्दी से चल पड़ी।

धाइ कह्यो रघुराइ भए तिह। जैस निलाज कहै न कोउ किह ॥
हौं अटकी तुमरी छबि के वर। रंग रँगी रँगए दृग दू पर ॥

उसने श्री राम के पास पहुँचकर इस तरह बातें कीं, जिस तरह कोई निर्लज्ज स्त्री भी नहीं कर सकती। उसने कहा—हे रँगीले राम! मैं तुम्हारी छवि पर मोहित हूँ और तुम्हारी दोनों आँखों ने मुझे मस्त कर दिया है।

राम उवाच

जाहु तहाँ जहँ भ्रात हमारे। वै रिझहैं लख नैन तिहारे ॥
संग सिया अविलोक कृशोदरि। कैसे क राख सकै तुमकौ धरि ॥

श्री राम ने उत्तर दिया—जहाँ मेरा छोटा भाई है, वहाँ जाओ। वही तुम्हारी आँखें देखकर रीझ सकेगा; क्योंकि मेरे साथ तो यह कृशोदरि सीता है; इसलिए तुम्हें किस प्रकार घर में रख सकता हूँ (अर्थात् पत्नी बना सकता हूँ)?

मात पिता कहँ मोहि तज्यो मन। संग फिरी हमरे बन ही बन ॥
ताहि तजौं कस कै सुनि सुन्दरि। जाहु तहाँ जहँ भ्रात कृशोदरि ॥

इस कृशोदरी सीता ने मुझ में मन लगाकर (अर्थात् मेरे लिए) अपने माता-पिता को भी छोड़ दिया है और मेरे ही साथ वनों में घूम रही है।

भला जिसने मेरे लिए इतना त्याग किया है, उसे मैं किस तरह छोड़ सकता हूँ! इसलिए तुम मुझे छोड़कर भाई लक्ष्मण के पास जाओ।

जात भई सुनि बैन त्रिया तहँ। बैठ हुते रणधीर जती जहँ ॥
सो न बरै अति रोष भरी तब। नाक कटाइ गई गृह को सब ॥

यह सुनकर वह (शूर्पनखा) वहाँ पहुँची, जहाँ लक्ष्मण यती (संयमी) बैठे थे। लक्ष्मण ने भी जब उसका वरण नहीं किया, तब वह बहुत क्रोध में भर गई। अत्यन्त विनय आदि करने पर भी जब उसकी बात नहीं सुनी गई, तब मानो उसकी नाक कट गई और वह इस तरह अपनी नाक कटाकर (अर्थात् अपना अपमान कराके) अपने घर चली गई।

अथ खर-दूषण दैत्य युद्ध कथनम्

सुन्दरी छन्द

रावण तीर रुरोद भई जव । रोप भरे दनु वंश वली सब ॥
लंकस धीर वजीर वुलाए । दूपण औ खर दैत पठाए ॥

जब शूर्पनखा अपने भाई रावण के पास जाकर रोई, तब सारा दानव वंश गुस्से में भर गया (अर्थात् सभी दानव क्रोध में आ गये) ।

रावण ने अपने कई धीर वीर मन्त्री बुलाये और उनसे सलाह करके अपनी बहन के प्रतिशोध के लिए खर और दूपण नामक दानवों को भेजा ।

साज सनाह सुवाह दुरंगत । बाजत वाजि चले गज गज्जत ॥
मार हि मार दसो दिस कूके । सावन की घट ज्यों घुर ढूके ॥

बड़ी-बड़ी भुजाओंवाले और बहुत दूर की सोचनेवाले वीर शस्त्र सजा कर चल पड़े । उस समय बाजे बज रहे थे और हाथी चिंघाड़ रहे थे । दसों दिशाओं में 'मारो मारो' की पुकार मच रही थी । जिस तरह सावन की घटाएँ उमड़ आती हैं, उसी तरह गरजते हुए वे वीर भी श्री राम की ओर चले ।

गज्जत हैं रणधीर महामन । तज्जत हैं नहिं भूमि अयोधन ॥
छाजत हैं चख श्रोणत से सर । नादि करैं किलकार भयंकर ॥

स्थिर चित्तवाले योद्धा धीर बनकर रण-स्थल में गरजते थे । वे युद्ध-भूमि नहीं छोड़ रहे थे । उनके नेत्र रक्त के समान लाल हो रहे थे और वे भयंकर चीख-पुकार मचाते हुए शोर कर रहे थे ।

तारका छन्द

रण राज-कुमार विरच्चहिगे । सर सेल सरासन नच्चहिगे ।
सु विरुद्ध अवद्ध सु गाजहिगे । रण रंगहि राम विराजहिगे ॥

युद्ध आरंभ हुआ। दोनों राजकुमार (राम और लक्ष्मण) रण में जूझ पड़े। शूर-वीरों के हाथों में बाण, भाले, धनुष आदि शस्त्र दिखाई देने लगे। सभी वीर मरते दम तक गरजते ही रहते थे। श्री राम भी उस युद्ध में शोभा पा रहे थे।

सर ओघ प्रओघ प्रहारइगे। रण रंग अभीतु विहारइगे ॥
सर सूल सनाहरि छुट्टहिगे। दिति पुत्र धरा पर लुट्टहिगे ॥

वीरगण, अनेक बाणों के समूह विपक्षियों पर फेंक रहे थे, निडर होकर साथ घूम रहे थे। वे बाण, भाले और अन्यान्य शस्त्र चला रहे थे। इस तरह युद्ध के बाद दिति-पुत्र (दानव) पृथ्वी पर लोट गये (मारे गये)।

सर संक असंकत बाहहिगे। बिन भीत भया दल दाहहिगे ॥
छिति लुत्थ बिलुत्थ बिथारहिगे। तरु सनै समूल उपारहिगे ॥

सभी वीर निश्शंक होकर तीर चला रहे थे और भयंकरता से दूसरे दल को भस्म कर रहे थे। पृथ्वी पर लाशों का ढेर लग गया। ऐसा प्रतीत होता था, मानो श्री राम आज ही सारे पेड़ जड़ सहित उखाड़ फेंकेंगे (राक्षसों को रावण सहित आज ही मार डालेंगे)।

नव नाद नफीरन बाजत भे। गल गाजि हठी रण रंग फिरे ॥
लग बाण सनाह दुसार कढ़े। सुअ तच्छक के जनु रूप मढ़े॥

नई-नई नफीरियाँ और धौंसे बजने लगे। सिंह-नाद करते हुए वीर योद्धा रण में घूम रहे थे। श्री राम और लक्ष्मण जब अपने बाण और खड्ग चलाते थे, तब दूसरी ओर (उस पार) निकाल देते थे। वे बाण तक्षक साँप का रूप धारण किये हुए थे (अर्थात् अत्यन्त विषैले थे); और जिसे लगते थे, उसे तुरन्त मार डालते थे।

बिनु संक सनाहरि झारत है। रण वीरन वीर प्रचारत है ॥
सर सुद्ध सिला सित छोरत है। जिअ रोष हलाहल घोरत है॥

सभी वीर निर्भय होकर तलवारें चला रहे थे। रण में एक वीर दूसरे को ललकार रहा था। कुछ वीर अपने वाण शिला (पत्थर) पर घिस-घिसकर तीखे वनाकर एक दूसरे पर छोड़ रहे थे और अपने मन में क्रोध रूपी हलाहल विप वोल रहे थे।

रण-धीर अयोधनु लुज्झत है। रद पीस भजे कर जुज्झत है॥
रण देव अदेव निहारत है। जय सद्द निनद्द पुकारत है*॥

रणधीर योद्धा क्रोध में दाँत पीसते हुए जूझ रहे थे। देवता, दानव आदि सभी वह युद्ध देख रहे थे और अपने-अपने पक्ष का जय-जयकार करते थे।

रण गिद्धन वृद्ध रड़ंत नभं। किलकंत सुडाकन उच्च सुरं॥
भ्रम छाँड़ भकारत भूत भुअं। रण रंग विहारत भ्रात दुअं॥

युद्ध में वड़े-वड़े गिद्धों के समूह आकाश में शोर कर रहे थे (मांस आदि देखकर प्रसन्नता से वोल रहे थे)। डाकिनियाँ ऊँचे स्वर से किलकारियाँ मार रही थीं। निडर होकर भूतगण भी भयंकर शब्द कर रहे थे। इधर दोनों भाई (राम-लक्ष्मण) रण के रंग में (मस्त होकर) झूम रहे थे।

खर-दूपण मारि वहाइ दए। जय सद्द निनद्द विहद्द भए॥
सुर फूलन की वरखा वरसे। रणधीर अधीर दोऊ परखे॥

खर और दूपण को दोनों भाइयों ने मारकर मानों नदी में वहा दिया। अत्यन्त जय-जयकारों के शब्द हुए और देवताओं ने फूल वरसाये। सचमुच इस युद्ध में धीरों और कायरों की पूरी तरह से पहचान हो गई।

इति खर-दूपण-वधाध्यायः

---

* ये 'है' वस्तुतः 'थे' के वाचक हैं।

अथ सीता-हरणम्

मनोहर छन्द

रावण नीच मरीचहुँ के गृह बीच गए वध वीर सुनैहै।
बीसहुँ बाँह हथ्यार गहे रिस मार मनै दससीस धुनै है॥
नाक कट्यो जिन सूपनखा कहतो तिहको दुख दोष लगैहै।
रावल को बनु कै पल मो छल कै तिह की घरनी धरि लैहै॥

नीच रावण (अपने मामा) मारीच के घर पहुँचा और उसने वीरों (खर-दूषण आदि) के वध का सारा समाचार सुनाया। उस समय रावण ने अपनी बीसों भुजाओं में शस्त्र ले रखे थे और मन में क्रोध दबाये हुए सिर धुन रहा था। वह कहने लगा—जिसने बहन शूर्पनखा की नाक काटी है, उसे भी कुछ दुःख अवश्य देना चाहिए। मैं रावल (योगी) बनकर उसकी स्त्री को पल भर में हर (चुरा) लाऊँगा।

मारीच उवाच

नाथ अनाथ सनाथ कियो करि कै अति मोर कृपा कह आए।
भौन भँडार अँटी विकटी प्रभु आज सबै घर वार सुहाए॥
द्वै करि जोर करौं बिनती सुनि कै नृपनाथ बुरो मति मानो।
श्री रघुबीर सही अवतार तिनैं तुम मानस कै न पछानो॥

मारीच ने कहा—हे स्वामी! मुझ अनाथ पर आज आपने कृपा करके मुझे सनाथ (धन्य) किया। मेरा भवन, भण्डार, यह जंगल तथा घरबार (आपके यहाँ पधारने से) सभी आज विशेष रूप से सुहावने प्रतीत हो रहे

हैं। परन्तु मैं हाथ जोड़कर एक विनय करता हूँ। आप बुरा न मानें। श्री राम सचमुच अवतार हैं; उन्हें आप मनुष्य न समझें।

रोष भर्यो सब अंग जर्यो मुख रत्त कर्यो जुग नैन तचाए।
तैं न लगे हमरे सठ बोलन मानस द्वै अवतार कहाए॥
मात की एक ही बात कहे तजि तात घृणा बनवास निकारे।
ते दोउ दीन अधीन जुगी कस कै भिरिहैं सँग आन हमारे॥

तब रावण क्रोध में भर गया और उसके सारे अंग जलने लगे। उसका मुँह लाल हो गया। उसने क्रोध भरी आँखों से मारीच की ओर देखकर कहा—अरे शठ! क्या मेरी बात पर तुझे विश्वास नहीं हुआ, जो उन दो मनुष्यों को अवतार कहता है! अरे! माता के एक बात कहने से ही पिता ने घृणा करके उन्हें घर से निकाल दिया। वे दोनों तो अब दीन-हीन होकर योगी बनकर घूम रहे हैं। भला वे मेरे साथ क्या लड़ सकेंगे!

जो नहिं जात तहाँ कह तैं सठ तोर जटान को जूट पटैहौं।
कंचन कोट के ऊपर तें उरि तोहिं नदीसर बीच डुबैहौं॥
चित्त चिरात विसात कछू न रिसात चल्यो मुनि घात पछानी।
रावण नीच की मीच अधोगत राघव-पाणि परी सुरि मानी॥

जल्दी बतला, अगर तू वहाँ नहीं जाना चाहता तो मैं अभी तेरी जटाएँ उखाड़कर फेंक दूँगा, या इस स्वर्ण गढ़ (लंका) के ऊपर से गिराकर सागर में फेंक दूँगा। यह सुनकर मारीच मुनि मन में बहुत प्रसन्न हुआ कि इस दुष्ट के आगे कुछ बस नहीं चलता; परन्तु इस नीच के हाथ से मरने की अपेक्षा तो श्री राम के हाथों से मुक्ति मिले, यह कहीं अच्छा है; क्योंकि इसके हाथ से मरने से तो अधोगति होगी, पर श्री राम के हाथों मरने से मुक्ति होगी।

कंचन को हरना बनि कै रघुवीर बली जहँ थो तहँ आयो।
रावण ह्वै उत तै जुगिया सिय लैन चल्यो जनु मीच चलायो॥

सीय विलोक कुरंग प्रभा कह मोहि रही प्रभु तीर उचारी।
आनि दिजै हम कउ म्रिगवा सुन श्री अवधेश मुकंद मुरारी॥

यह विचारकर वह मारीच सोने का हरिण बनकर वहाँ आया, जहाँ श्री राम निवास करते थे। उधर से रावण भी योगी का वेश धारणकर सीता को हरने के लिए चला, मानो उसकी मृत्यु ने उसे प्रेरित किया हो। इधर वह सोने का हरिण देखकर सीता उसपर मोहित हुई और पति से कहने लगी—हे स्वामी! हे अवधेश! मुरारी! मुझे यह हरिण ला दो।

राम उवाच

सीय मृगा कहुँ कंचन को नहिं कान सुन्यो विधि नै न बनायो।
बीस बिसै छल दानव को बन मैं जिह आन तुम्हैं बहकायो॥
प्यारी को आयस मेटि सकै न विलोक सिया कहुँ आतुर भारी।
बाँध निषंग चले कटि सौं कहि भ्रात इहाँ करिजै रखवारी॥

श्री राम ने कहा—सीते! कभी सोने का हरिण सुनने में नहीं आया और न विधाता ने सोने का मृग बनाया ही है। यह तो निश्चय ही किसी दानव का छल-प्रपंच है, जिसने यह रूप धारण करके तुम्हें भ्रम में डाला है। अपनी प्रिया को उस हरिण के ग्रहण करने की लालसा में आतुर देखकर श्री राम उसकी बात टाल नहीं सके और तुरन्त कमर पर तूणीर (तरकस) बाँधकर चल पड़े। जाते समय उन्होंने अपने भाई लक्ष्मण से कहा—भाई! तुम इस स्थान की सीता सहित रक्षा करना।

ओट थक्यो करि कोटि निशाचर श्री रघुवीर निदान सँघार्यो।
हे लहु बीर उबार लै मो कौं यौं कहि कै पुनि राम पुकार्यो॥
जानकी बोल कुबोल सुन्यो तब ही तिह ओर सौमित्र पठायो।
रेख कमान की काढ़ि महाबलि जात भये इत रावण आयो॥

उधर मारीच अपने बचाव के करोड़ों उपाय करता-करता थक गया और

अन्त में श्री राम ने उसका संहार कर ही डाला। तब वह मरते-मरते लक्ष्मण को पुकारकर बोला—लक्ष्मण ! मुझे बचाओ। 'राम-राम' कहता हुआ वह मर गया। उधर जब जानकी ने यह पुकार सुनी, तब उसी क्षण उसने लक्ष्मण को भेजा। लक्ष्मण अपने धनुष से (कुटिया के चारों ओर) रेखा खींचकर और सीता को उससे बाहर न निकलने का आदेश देकर चल पड़े। इधर लक्ष्मण गये और उधर अवसर देखकर रावण आ पहुँचा।

भेख अलेख उचार कै रावण जात भयो सिय कै ढिग यौं।
अवलोक धनी धनवान बड़े तिह जाइ मिलै मग मैं ठग ज्यौं।
कछु देहु भिछा मृगनैनी हमैं इह रेख मिटाइ हमैं अबही।
बिनु रेख भई अवलोक लई हर सीय उड्यो नभ कौ तबही॥

अपने योगी वेश के अनुसार ही अलख-अलख पुकारता हुआ (भीख माँगनेवाले साधु प्रायः अलख पुकारते हैं) सीता के पास इस प्रकार पहुँचा, जैसे किसी धनवान का धन देखकर रास्ते में ठग उसे लूटने की इच्छा से पीछे लग जाता है। जाते ही रावण ने अलख जगाया और कहा—मृगनयनी ! हमें कुछ भिक्षा दो। परन्तु पहले यह रेखा मिटा दो, तब हम भीख लेंगे। बन्धन-युक्त भीख योगी नहीं लेते। (सीता ने योगी का सत्कार करने के लिए उसकी बात मानकर वह रेखा मिटा दी।) बस रेखा के मिट जाने पर रावण ने सीता को झट-पट उठाया और वह आकाश में उड़ चला।

अथ सीता-खोज कथनम्

तोटक छन्द

रघुनाथ हरी सिय हेर मनं। गहि वाण सिला सित सज्जि धनं।
चहुँ ओर सुधार निहार फिरे। छिति ऊपर श्री रघुनाथ गिरे॥

(उधर से जब राम और लक्ष्मण लौटे, तो देखा कुटिया खाली है।)

श्री राम ने अपने मन में निश्चय कर लिया कि सीता को अवश्य कोई उठा ले गया। क्रोध में धनुष उठाकर उसपर तीखा बाण चढ़ाया और सीता की खोज में चल पड़े। जब आस-पास कहीं पता न पाया, तब सीता के वियोग में श्री राम धरती पर गिर पड़े।

लघु वीर उठाइ सु अंक भरे। मुख पोंछत वै बचना उचरे॥
कि अधीर परे प्रभु धीर धरो। सिय जाइ कहाँ तिहँ सोध करो॥

तब छोटे भाई लक्ष्मण ने श्री राम को उठाकर गोद में ले लिया और मुँह पोंछकर कहा—प्रभु, इस तरह अधीर क्यों होते हैं! धीरज धारण करें और जहाँ माता सीता गई हैं, वहाँ चलकर उनकी खोज करना आवश्यक है। इस तरह जी छोटा करने से काम नहीं चलेगा।

उठि ठाढ़ भए पुनि भूम गिरे। पहरेकक लौं फिर प्राण फिरे।
तन चेत सुचेत उठे हरि यों। रण-मण्डल मध्य गिस्यो भट ज्यों॥

श्री राम कुछ धीरज धारण करके उठ खड़े हुए, पर फिर गिर पड़े और बेसुध हो गये। एक पहर तक यही अवस्था रही। फिर जब सावधान हुए, तब इस प्रकार उठे, जैसे कोई शूर-वीर रणभूमि में गिरने के बाद उठता है।

चहुँ ओर पुकार बकार थके। लघु भ्रात भए बहु भाँति जथे।
उठकै पुनि प्रात सनान गए। जल-जंत सबै जरि छार भए॥

उठकर श्रीराम चारों ओर 'सीता' 'सीता' पुकारने लगे। लक्ष्मण भी बहुत दुखी हुए। रात के पश्चात् प्रातःकाल जब श्रीराम स्नान के लिए गये, तब उनकी विरहाग्नि से सरोवर के सारे जीव-जन्तु जलकर भस्म हो गये!

बिरही जिस ओर सुदृष्टि परै। फल फूल पलास अकास जरै॥
कर सौं धर जौन छुअंत भई। कच बासन ज्यों पक फूट गई॥

विरही श्री राम जिस ओर दृष्टि डालते थे, उसी ओर के फल, फूल, ढाक क्या आकाश तक जलने लगते थे। जो धरती उनके हाथ से छू जाती थी, वह भी कच्चे बरतन की तरह पककर फूट जाती थी।

जिह भूम थली पर राम फिरे। दव ज्यों जल पात पलास गिरे॥
टुट आसहि आरुण नैन झरी। मनु तात तवा पर बुन्द परी॥

विरही श्री राम जिस स्थान पर पहुँचते थे, वहाँ के पलास और पत्ते जलकर इस तरह भस्म हो जाते थे, मानो दावानल ने उन्हें जला दिया हो। उनकी अरुण वर्ण आँखों से आँसू पृथ्वी पर गिरकर, इस प्रकार भस्म हो जाते थे, जैसे किसी जलते हुए तवे पर बूँद पड़कर भस्म हो जाय।

तन राघव भेंट समीर जरी। तज धीर सरोवर माँझ दुरी।
नहिं तत्र थली सतपत्र रहे। जल-जंत पतत्रिण पत्र दहे॥

राम की विरहाग्नि इतनी विकट थी कि उनके शरीर से मिलकर शीतल वायु भी दाहक हो जाती थी। यहाँ तक कि उसे भी अपने बचाव के लिए

सरोवर का आसरा लेना पड़ा। जहाँ से वह वायु होकर निकली, वहाँ के कमल, जीव-जन्तु सब जल गये और पक्षियों के पंख जलकर भस्म हो गये।

इत ढूँढ बने रघुनाथ फिरे। उत रावण आनि जटायु घिरे॥
रण छोर हठी पग द्वै न भज्यो। उड़ पच्छ गए पै न पच्छ तज्यो॥

इधर तो श्री राम जी व्याकुल होकर वन में सीता की खोज कर रहे थे, उधर रावण को जटायु ने सीता को ले जाते देखा तो उस गृद्धराज ने उसे जा घेरा। वह इतना हठी था कि घोर युद्ध होने पर भी दो कदम पीछे न हटा। उस युद्ध में उसके सब पंख नष्ट हो गये, परन्तु वह श्री राम का इतना भक्त था कि उसने उनका पक्ष नहीं छोड़ा।

गीता मालती छन्द

पच्छराज रावण मारि कै रघुराज सीतहिं लै गयो।
नभ ओर खोर निहारि कै सु जटायु सिय संदिश दयो॥
तब जान राम गए बली सिय सत्त रावण ही हरी।
हनुवन्त मारग मो मिले तब मित्रता तासों करी॥

राम जब सीता को ढूँढते हुए वहाँ पहुँचे, तब जटायु ने पुकारकर कहा—महाराज ! मुझ पक्षिराज जटायु को मारकर दुष्ट रावण सीताजी को ले गया है। यह कहकर जटायु ने आकाश मार्ग की ओर इशारा किया, जिसका आशय था कि रावण आकाश मार्ग से गया है। इस प्रकार सीता के हरण का संदेश जटायु ने राम को दिया। तब श्री राम को निश्चय हो गया कि रावण ने ही सीता का हरण किया है। फिर वह आगे बढ़े तो रास्ते में हनुमान से भेंट हुई और उनसे मित्रता हो गई।

तिन आन श्री रघुराज के कपिराज पायन डारयो।
तिन बैठ गोठ इकैठ ह्वै इह भाँति मंत्र विचारयो॥
कपि वीर धीर सधीर के भट मंत्र वीर विचार कै।
अपनाय सुग्रिव को चले कपिराज बालि सँघार कै॥

हनुमान ने भी अपने साथी कपिराज सुग्रीव को लाकर श्रीराम के चरणों में डाल दिया। सब ने एक जगह बैठकर मंत्रणा की। सब ने यही निश्चय किया कि सुग्रीव अपने वीरों के साथ श्री राम की सहायता करें। सब ने यह प्रतिज्ञा की कि हाँ, हम लोग ऐसा ही करेंगे। तब श्री राम ने भी उसकी सहायता का वचन दिया और सुग्रीव को सतानेवाले उसके भाई बालि को मारकर और सुग्रीव को अपना सहायक बनाकर वे सीता की खोज में लंका की ओर बढ़े।

अथ हनुमान सोध को पठैबो कथनम्

गीता मालती छन्द

दल बाँट चार दिशा पठ्यो हनुवंत लंक पठै दए।
लै मुद्रिका लँघ वारिधै जहँ सिय हुती तहँ जात भे ॥
पुर जारि अच्छ-कुमार छै बन टारि कै फिरि आइयो।
कृत चार जो अमरारि को सब राम तीर जताइयो ॥

सुग्रीव ने अपने वीरों को सीता का पता लगाने के लिए चारों दिशाओं में भेज दिया और हनुमान को लंका की ओर भेजा। हनुमान श्री राम की अँगूठी लेकर और समुद्र लाँघकर वहाँ पहुँचे, जहाँ सीता जी थीं। हनुमान ने लंका पुरी को जलाकर, अक्षयकुमार (रावण का पुत्र) को मारकर अशोक वाटिका का नाश किया। इस प्रकार सब काम करके फिर लौट आये और रावण की पुरी में पहुँचकर जो जो काम किये थे, वे सब श्री राम को सुनाये।

दल जोर कोर करोर लै बड़ घोर तोर सबै चले।
रामचंद्र सुग्रीव लछमन और सूर भले भले ॥
जामवंत सुखैन नील हनुवंत अंगद केसरी।
कपि पूत जूथप जूथ लै उमड़े चहूँ दिस कै झरी॥

इधर-उधर से वानर आ-आकर इकट्ठे होने लगे। देखते-देखते करोड़ों वानरों आदि ने घोर शब्द किया। अब सारी सेना चल पड़ी। उस सेना में श्री राम तो थे ही; और भी बड़े-बड़े वीर जैसे लक्ष्मण, सुग्रीव, जामवंत, सुषेण नील, नल, हनुमान, अंगद आदि योद्धा भी थे। वे सभी अपने परिवार

के पुत्र-पौत्रों के समूह के समूह लेकर चारों दिशाओं में इस प्रकार उमड़ चले, जैसे बादलों की झड़ी आती है।

पारि वारिधराज कौ करि बाट लाँघ जवै गए।
दून दैतन के हुते तब दौर रावण पै गए॥
रण साज बाज सबै करो इक बेनती मम मानिए।
गढ़ लंक बंक सँभारिए रघुवीर आगम जानिए॥

जब उल्लास में भरी हुई यह सेना सागर के किनारे पहुँची, तब वहाँ पुल बनाकर और आगे के रास्तों को पार करती हुई लंका में जा पहुँची। इधर रावण के दूतों ने जब यह देखा, तब दौड़े हुए रावण के पास पहुँचे और बोले—महाराज, जल्दी युद्ध का साज-बाज तैयार कर लीजिए। हमारी एक विनय यह है कि लंका के सुन्दर दुर्ग की रक्षा आप ही कीजिए; क्योंकि राम का आगमन होने को है।

धूम्रअच्छ सु जांबमालि बुलाय वीर पठै दए।
सोर कोर करोर कै जहँ राम थे तहँ जात भे॥
रोस कै हनुवंत था पर रोप पाँव प्रहारियं।
जूझ भूम गिरयो वली सुरलोक माँझ विहारियं॥

दूतों का कहना मानकर रावण ने भी अपने वीर योद्धा धूम्राक्ष और जांबमाली आदि को बुलाकर, श्री राम की सेना की रोक-थाम के लिए भेज दिया। वे भी अपने साथ करोड़ों राक्षसों की सेना लेकर शोर मचाते हुए वहाँ पहुँच गये, जहाँ श्रीराम का पड़ाव था। तब हनुमान ने क्रोध में आकर अपना पाँव जमाकर उन्हें मारना आरम्भ किया। जो शूर-वीर युद्ध करता हुआ पृथ्वी पर गिरा, वह सीधा यमपुर अथवा देव-लोक पहुँचा।

जांबमाल भिरे कछू पुनि मार ऐसे कै लए।
भाज कीन प्रवेश लंक सँदेश रावण सों दए॥

धूमराच्छ सु जाँबमाल दुहूँन राघव जू हस्यो।
है कछू प्रभु के हिये शुभ मंत्र आवत सो करो॥

राक्षस सेना का नायक जांबमाली कुछ देर तक अवश्य लड़ा; परन्तु उसका भी वही हाल हुआ (अर्थात् वह भी थोड़ी देर में मारा गया)। तब तो निस्सहाय सेना वहाँ से भागी। उसने जाकर लंका में शरण ली और रावण से कहा—महाराज, आपके दोनों योद्धा धूम्राक्ष और जांबमाली को श्रीराम ने मार डाला। अब आप के मन में जो विचार आवे, वह करें।

पेख तीर अकंपनै दल संग दै सु पठै दयो।
भाँति-भाँति बजे बजन्ता निनद सद्द पुरी भयो॥
सुरराय आदि प्रहस्त ते इह भाँति मंत्र विचारयो।
सिय दे मिलो रघुराज को कस रोस राव सँभारियो॥

उस समय रावण के पास अकंपन नामक दैत्य खड़ा था। रावण ने उसी को उस सेना के साथ कर दिया। अनेक प्रकार के बाजे बजने लगे, जिनकी आवाज से सारी लंका गूँज उठी। इधर प्रहस्त और सुरराय आदि मंत्रियों ने रावण को सलाह दी कि आप सीता को श्री राम के हाथ सौंप दें और उनसे सन्धि कर लें। यह रोष (या वैर) व्यर्थ है।

छप्पय

झलहलंत तरवार बज्या बाजन्त महा धुन।
खड़हड़न्त खल खोल ध्यान तजि परत चवध मुन॥
इक इक लै चलैं इक तन इक अरुज्झैं।
अंध-धुंध परि गई हत्थि अरु मुख्ख न सुज्झैं॥
समुह सूर सावंत सब फौज राज अंगद समर।
जै सद निनद विहद हुअ घनु जंपत सुर पुर अमर॥

तलवारें चमक रही थीं और ऊँची ध्वनि से बाजे बज रहे थे। कवचों

के आपस में रगड़ खाने से खड़ खड़ शब्द होता था। तलवारों की चमक से मुनियों के ध्यान भी टूट जाते थे। कुछ शूर-वीर एक दूसरे को उठाकर ले जा रहे थे, कुछ दूसरों से उलझ रहे थे। शस्त्रों की संख्या इतनी अधिक थी कि हाथ-मुँह भी दिखाई नहीं देते थे। श्री राम की सेना का अधिनायक अंगद शूर-वीरों के सामने खड़ा था। श्री राम की सेना जय-जयकार कर रही थी और आकाश में देवगण 'धन्य धन्य' कह रहे थे।

इत अंगद युवराज दुतिय दिस वीर अकंपन।
करत वृष्टि सर धार तजत नहि नैक अयोधन॥
हत्थ वत्थ मिल गई लुत्थ विथरी आहाड़ं।
घुम्मे घाइ अघाइ वीर वँकड़े वंबांड़॥
पिक्खत वैठ विवान वर धन्न धन्न जंपत अमर।
भव भूत भविष्य भवान मो अब लग लख्यो न अस समर॥

इधर बालि का पुत्र अंगद अधिनायक था और उधर अकम्पन था। दोनों तीरों की मूसलधार वर्षा कर रहे थे, और युद्ध-भूमि किसी तरह नहीं छोड़ते थे। अन्त में दोनों हाथों-हाथ लड़ने लगे। लाशों के ढेर लग गये और घायल होकर गरजते हुए अनेक वीर गिरने लगे। ऊपर बैठे हुए देवता यह दृश्य देखकर 'धन्य धन्य' कह रहे थे कि किसी ने भूत काल में ऐसा युद्ध नहीं देखा और न भविष्य में कोई देखेगा। वर्तमान काल में तो ऐसा युद्ध किसी ने देखा ही नहीं।

कहुँ मुँड पिखिअह कहूँ भक रुंड परे धर।
कित हि जाँघ तरफंत कहूँ उछरंत सु छविकर॥
भरत पत्र खेचरी कहुहूँ चावंड चिकारें।
किलकत कतह मसान कहुहुँ भैरव भभकारें॥
इह भाँति विजय कपि की भई हन्यो असुर रावण-तना।
भै दग्ग अदग्ग भगे हठी गहि गहि कर दाँतन तृणा॥

उस युद्ध में कहीं सिर बिखरे पड़े थे, कहीं धड़ फड़क रहे थे, कहीं टाँगें तड़प रही थीं और कहीं सुन्दर हाथ कटे हुए पड़े थे। योगिनियाँ अपने खप्पर भर रही थीं और चुड़ैलें चीख रही थीं। कहीं श्मशानवासी भैरव भयंकर स्वर में बोल रहा था। इस प्रकार युद्ध होने पर अन्त में कपि अंगद की जीत हुई और रावण का तनय (पुत्र) अकंपन मारा गया। अब दीनता दिखाते हुए शूर-वीर दाँतों में तिनके दबाकर भाग निकले।

उतै दूत रावणै जाइ हत वीर सुनायो।
इत कपि-पति अरु राम-दूत अंगदहिं पठायो॥
कही कत्थ तिह सत्थ गत्थ करि तत्थ सुनायो।
मिलहु देहु जानकी काल नातर तुहि आयो॥
पग भेंट चलत भयो बालि-सुत पृष्ठ पाणि रघुवर धरे।
भर अंक पुलक तन पसजयो भाँति अनिक आशिष करे॥

उधर दूतों ने जाकर रावण से अकम्पन की मृत्यु का समाचार कहा। इधर कपिपति सुग्रीव और श्री राम ने अंगद को अपना दूत बनाकर रावण के पास लंका भेजा। उसे समझा दिया कि रावण से कहना कि सीता को लौटा दो और राम से मिलाप (सन्धि) कर लो; नहीं तो अपना काल आया समझो। अंगद जब सब बातें समझकर श्री राम के चरण छूकर चलने को तैयार हुआ, तब श्री राम ने उसकी पीठ पर हाथ रखा और गले से लगा कर अनेक प्रकार से आशीर्वाद दिया।

प्रत्युत्तर संवाद

छप्पय

देहु सिया दसकंध छाँहि नहिं देखन पैहो।
लंक छीन लीजिए लंक लखि जीत लजैहो॥
क्रुद्ध विषै जिन घोर पिख्ख कस जुद्ध मचैहै।
राम सहित कपि कटक आज मृग स्यार खवैहै॥

जिन करसु गर्व सुन मूढ़मति गर्व गँवाय घनेर घर।
वस करे सर्व घर गर्व हम ए किन महिं द्वै दीन नर ॥

अंगद लंका जा पहुँचा और रावण से बोला—हे रावण ! तुम सीता को लौटा दो। रावण ने कहा—नहीं, राम अब सीता की परछाईं भी नहीं देख सकते। अंगद ने कहा—तुम्हारी लंका छीन ली जायगी। रावण ने कहा—चाहे लाखों लंकाएँ जीत लो, पर सीता नहीं मिलेगी। अंगद ने कहा—रावण ! तुम क्रोध रूपी विष मत घोलो। रावण बोला—तुम लोग देखना, कैसा युद्ध होता है ! राम तथा उसकी वानरों की सेना को मृग समझकर शेर की तरह खा जाऊँगा। अंगद ने कहा—रावण ! अभिमान मत करो, क्योंकि इस अभिमान ने अनेक घरों का विनाश किया है। रावण ने कहा—हाँ मैंने भी गर्व के साक्षात् भण्डार बड़े-बड़े अभिमानियों को वश में किया है ; इसी लिए मुझे गर्व है। ये दोनों दीन-हीन मनुष्य हैं ही क्या चीज !

रावण उवाच

अगनि पाक कहुँ करै पवन मुर बार बुहारै।
चँवर चंद्रमा धरै सूर छत्रहिं सिर ढारै ॥
मद लच्छमी पियाव वेद मुख ब्रह्म उचारत।
वरुण वारि नित भरे और कुल देव जुहारत ॥
निज कहत सुवल दानव प्रबल देत धनुद जछ मोहिं कर।
वे जुद्ध जीतने जाहिंगे कहाँ दोइ ते दीन नर ॥

रावण ने अंगद से कहा—अंगद ! अग्नि स्वयं मेरा भोजन पकाता है और वायु स्वयं मेरे दरवाजे पर झाड़ू देता है। चन्द्रमा ने अपने हाथों में मेरे लिए चँवर पकड़ रखा है और सूर्य सिर पर छत्र लगाता है। लक्ष्मी मुझे मदिरा पिलाती है, ब्रह्मा मेरे सामने खड़ा होकर वेदों का पाठ करता है। वरुण पानी भरता है और सभी देवता मुझे प्रणाम करते हैं। बड़े-बड़े दानव मुझे अपनायत की दृष्टि से देखते हैं। इसी कारण डर से यक्षराज कुबेर भी

मुझे कर देता है। भला इतने महाप्रतापी रावण के साथ लड़कर ये दोनों दीन-हीन मनुष्य क्या जीत सकेंगे !

कहि हार्‍यो कपि कोटि दैतपति इक्क न मानी।
उठत पाँव रूपयो सभा मध सो अभिमानी॥
थके सकल अमरार पाँव किनहुँ न उचक्कयो।
गिरे धरन मुरछाय विमन दानव दल थक्कयो॥
लै चल्यो बिभीषण भ्रात तिह बालि-पुत्र धूसर वरण।
भट हटक विकट तिह नास कै चलि आयो जित राम रण॥

बेचारा अंगद बहुतेरी बातें कहकर थक गया, पर रावण ने एक न मानी। इस पर अंगद ने भी अपना बल दिखाने के लिए रावण की सभा में अपना पाँव जमाकर रख दिया (और कहा) कि इसे कोई यहाँ से हटा दे। परन्तु उसका पैर कोई नहीं हटा सका। सब थक गये; यहाँ तक कि कई वीर तो मूर्च्छित होकर गिर पड़े। तब वह धूसर वर्णवाला बालिपुत्र अंगद अपने साथ बिभीषण को लेकर चल पड़ा और वहाँ पहुँचा, जहाँ राम रण-क्षेत्र में बैठे थे।

कहि बुल्ल्यो लंकेश ताहि प्रभु राजिव-लोचन।
कुटिल अलक मुख छके सकल संतन दुख-मोचन॥
कुपे सकल कपिराज बिजै पहली रण चख्खी।
फिरे लंक गढ़ घेरि दिशा दच्छनी परख्खी॥
प्रभु करे बिभीषण लंकपति सुनी बात रावण-घरनि।
सुधि सत्त तबै बिसरत भई गिरी धरनि पर ह्वै बिमन॥

बिभीषण जब श्री राम के पास पहुँचा, तो कमल-नयन श्रीराम ने उसे आते ही "लंकेश" शब्द से सम्बोधित किया। उस समय श्रीराम की अनुपम छवि हो रही थी। अलकें टेढ़ी थीं। उनका वह रूप संतों और सज्जनों के कष्ट दूर करनेवाला था। बिभीषण को 'लंकेश' कहने पर कपिराज सुग्रीव आदि पहले

तो मन में क्रुद्ध हुए, परन्तु फिर समझ लिया कि यह भी राजनीतिक चाल और युद्ध की पहली विजय की राह है। विभीषण से सब बातें समझकर उन्होंने लंका को घेर लिया। उधर जब रावण की पत्नी मन्दोदरी ने सुना कि श्री राम ने विभीषण को लंका का राजा कहा है और मानो बना ही दिया है, तब उसकी सुध-बुध भूल गई और वह उदास होकर पृथ्वी पर गिर पड़ी।

मन्दोदरी उवाच

उटंकन छन्द

सूर-वीरा सजे घोर वाजे वजे भाज कंता सुने राम आए।
बालि मार्‍यो बली सिंधु पाट्यो जिनै ताहि सों बैर कैसे रचाए॥
व्याध जीत्यो जिनै जंभ मार्‍यो उनै राम औतार सोई सुहाए।
दै मिलो जानकी बात है स्यान की चाम के दाम काहे चलाए॥

(कुछ देर बाद) मंदोदरी उठकर रावण के पास जाकर कहने लगी—प्रिय! देख रही हूँ कि शूर-वीर सजे हैं और भयंकर बाजे बज रहे हैं। सुना है कि श्री राम पधारे हैं। यह वही श्री राम हैं, जिन्होंने बलवान् बाली को मारा है और सागर पर भी पुल बना लिया है। भला ऐसे महान् व्यक्ति के साथ वैर क्यों साधा है? इन्होंने व्याध को जीता और जंभासुर को मारा है। यही राम अवतार धारण करके आये हैं। इसलिए ऐसे व्यक्ति से वैर न करें और सीता को लौटा दें। यही बात बुद्धिमानी की है; आप मान जायँ। अपने ही चमड़े के सिक्के न चलवावें (अपनी दुर्दशा आप न करावें)।

रावण उवाच

व्यूह सैना सजो घोर वाजे वजो कोटि जोधा गजो आन नेरे।
साज संजोय संवूह सैना सबै आज मारौं तरैं दृष्टि तेरे॥

इन्द जीत्यो करो जच्छ रीतो धनं नारि सीता-वरं जीत जुद्धै ।
स्वर्ग पाताल आकाश ज्वाला जरै बाँचिहै राम का मोर क्रुद्धै ॥

रावण ने कहा—मन्दोदरी ! मैं व्यूह की रचना करके, सेना सजाकर घोर बाजे बजाता हुआ अनेक शूर वीरों को साथ लेकर, कवच पहनकर देखते-देखते राम की सारी सेना नष्ट कर दूँगा । भला राम किस गिनती में है ! इन्द्र को जीता, यक्षराज कुबेर को धन से खाली कर दिया । यहाँ युद्ध में सुन्दर सीता को जीतते क्या देर लगेगी ! चाहे स्वर्ग, पाताल, आकाश सब जल जायँ, पर राम मुझ से बच न सकेगा ।

मंदोदरी उवाच

तारका जात ही घात कीनी जिनै और सुब्बाहु मारीच मारे ।
व्याघ बध्ध्यो खरं दूषण खेत थै एक ही बाण मों बालि मारे ॥
धूम्रअच्छादि औ जांबुमाली बली प्राण-हीनं कर्‍यो जुद्ध जै कै ।
मारिहैं तोहिं यों स्यार के सिंघ ज्यों लेहिंगे लंक को डंक दै कै ॥

मन्दोदरी ने कहा—महाराज ! उन्होंने ताड़का को जाते ही मार डाला, सुबाहु और मारीच को भी मार डाला । व्याघ, खर, दूषण आदि सभी को मार गिराया; और एक ही बाण से बालि को भी मार डाला । हमारी ओर के धूम्राक्ष, जांबुमाली आदि योद्धाओं को भी मार डाला और वे युद्ध में बराबर विजयी हुए हैं । यदि आप सीता न लौटावेंगे तो वे शेर की तरह गीदड़ (रावण) को मार डालेंगे और डंका बजाकर लंका जीत लेंगे ।

रावण उवाच

चौंर चंद्रं वरं सूर छत्रं धरं वेद ब्रह्मा ररं द्वार मेरे ।
पाक पावक करं नीर वरुणं भरं जच्छ विद्याधरं कीन चेरे ॥
अर्व खर्वं पुरं दर्व सर्वं करे देख कैसे करौं वीर खेतं ।
चिंकहैं चाँवडा फिंकहै फिंकरी नाचिहैं वीर वैताल प्रेतं ॥

रावण ने कहा—अरी बावली ! जरा देख तो सही, मेरे घर में स्वयं चन्द्रमा चँवर करता है, सूरज सिर पर छत्र रखता है और द्वार पर खड़ा स्वयं ब्रह्मा वेद पढ़ता है । अग्नि स्वयं मेरा भोजन पकाता है, वरुण पानी भरता है, यक्ष और विद्याधर दास बने हुए हैं । अरबों-खरबों की संख्या में लोगों को मानो चबा डाला है । तू देखना तो सही, कैसा युद्ध करता हूँ ! मेरे समय युद्ध में भूत-प्रेत तथा यक्ष-वैताल नाचेंगे और प्रसन्न होंगे ।

मन्दोदरी उवाच

तास नेजे डुलै घोर बाजे बजै राम लीने दलै आन ढूके ।
बानरी पूत चिंकार अपारं करं मार मारं चहूँ ओर कूके ॥
भीम भेरी बजै जंग जोधा गजै बाण चापै चलैं जाहिं जौलौं ।
बात को मानिए घात पहिचानिए रावरी देह की सांति तौ लौं ॥

मन्दोदरी ने कहा—महाराज ! भयंकर भाले चलना, घोर बाजे बजना आदि बातें तभी तक हैं, जब तक, श्री राम आ नहीं जाते और वानर सेना अपनी भयंकर चीख-पुकारों से चारों ओर 'मारो मारो' की ध्वनि नहीं करती । बस तभी तक ये योद्धा गरज रहे हैं, बाजे बज रहे हैं और बाण चल रहे हैं । और सच पूछें तो आपके शरीर का अस्तित्व भी तभी तक है, जब तक श्री राम नहीं आ जाते । इसलिए मेरी बात मानें, समय की गति पहचानें और सीता को श्री राम के हाथ सौंप दें ।

घाट बाटै रुकौ बाट बाटै तुपौ ऐंठ बैठे कहा राम आए ।
खोर हर्राम हर्रीफ की आँख तैं चाम के दाम कैसे चलाए ॥
होइगो ख्वार खिसिआर खाना तुरा बानरी पूत जौ लौं न गज्जै ।
लंक को छाँड़ि कै कोट को फाँदि कै आसुरी पूत लै घासि भज्जै ॥

महाराज ! हैं तो ये बातें कड़वी, पर अब आप चारों ओर के घाट और रास्ते रोक दें । यों ऐंठकर बैठने से काम नहीं चल सकता । ये सभी मंत्री

आदि हरामखोर हैं जो बैरी को देखते हुए भी आपको चाम के दाम चलाने की प्रेरणा दे रहे हैं। अगर इनकी बात मानेंगे तो बहुत पछताना पड़ेगा। इस तरह आपका घर बरबाद हो जायगा। सच तो यह है कि ये सब बातें तभी तक हैं, जब तक वानरों की सेना आकर शोर नहीं मचाती। जहाँ वह लंका में आई, तहाँ ये सभी कु-शिक्षा देनेवाले लंका का कोट (परिधि) लाँघकर अपने-अपने परिवार के साथ भागते हुए दिखाई देंगे।

रावण उवाच

बावरी राँड क्या भाँड बातैं बकै रंक से राम का छोड़ रासा।
काढिहौं बास दै बाण बाजीगरी देखिहौं आज ताको तमासा॥
बीस बाहं धरं सीस दसियं सिरं सैन संवूह है संगि मेरे।
भाज जैहै कहाँ बाज पैहै उहाँ मारिहौं बाज जैसे बटेरे॥

रावण ने क्रोध में आकर कहा—अरी बावरी राँड ! क्या बकती है ! उस दीन-हीन राम की बात छेड़ रखी है ! वह तो रोन्द्रजालिक है जो इन्द्रजाल दिखा रहा है। मैं भी आज उसकी बाजीगरी का तमाशा देखूँगा। सच पूछो तो आज उसका भूत मैं उतार दूँगा। क्या तू जानती नहीं कि मेरे दस सिर और बीस भुजाएँ हैं ? और फिर इतनी बड़ी सेना मेरे साथ है। वे जहाँ भागकर जायँगे, वहीं पहुँचकर उन्हें इस तरह मार डालूँगा, जैसे बाज बटेरों को मार डालता है।

एक एकं हिरै झूम झूमं मरै आप आपं गिरै हाँक मारे।
लाग जैहौं तहाँ भाज जैहैं जहाँ फूल जैहैं कहाँ तै उबारे॥
साज बाजे सबै आज लेहूँ तिनै राज कैसो करै काज मोसौं।
बानरं छै करौं राम लच्छै हरौं जीतिहौं होड़ तौ आन तोसौं॥

देखना तो सही, मेरी एक ही ललकार पर वे झूम-झूमकर एक-एक करके गिरने (मरने) लगेंगे। वे जहाँ जायँगे, वहीं उन्हें जा पकड़ूँगा। आज ही

सारी सेना सजाकर बाजों की ध्वनि करता हुआ उन्हें जीत लूँगा। मैं देख लूँगा कि वह विभीषण भी कैसे राज्य करता है ! आज सभी वानरों का विनाश कर डालूँगा। बेचारे राम-लक्ष्मण तो मेरे सामने फूल की तरह हैं; उन्हें मैं मसल डालूँगा।

कोटि वातैं गुनीं एक कै ना सुनी कोरि मुंडी धुनी पुत्र पट्टै।
एक नारान्त देवान्त दूजो वली भूमि कंपी रणं वीर उट्टै॥
सार भारं परे धार धारं वजी क्रोह कै लोह की छिट्ट घुट्टै।
रुण्ड धुक-धुक परैं घाइ भक-भक करैं बित्थरी जुद्ध सो लुत्थ लुट्टै॥

मन्दोदरी ने बहुत कहा, पर रावण ने एक न मानी, बल्कि क्रोध से मुँह फेर लिया। फिर उसने अपने कई पुत्रों को रण के लिए भेज दिया। एक का नाम नारान्त और दूसरे का देवान्त था। दोनों वीर थे, दोनों रण के लिए चल पड़े। उस समय सारी पृथ्वी हिलने लगी और सभी ने हाथों में तलवारें ले लीं। उनकी धार पर धार बजने लगी और लहू के छींटे इधर-उधर उड़ने लगे। जब उन्होंने जाकर युद्ध किया, तो सिर टूट-टूटकर गिरने लगे और योद्धा घायल होकर चक्कर खाने लगे। लाशों के ढेर लग गये।

पुत्र जुग्गन भरैं सद्द देवी करैं नद्द भैरो ररैं गीत गावैं।
भूत औ प्रेत वैताल वीरं वली मास आहार भारी बजावैं॥
जच्छ गंधर्व औ विद्याधरं मद्ध आकाश भयो सद्द देवं।
लुत्थ वित्थुत्थहीं हूह कूहं भरी मच्चियं जुध अनूपं अतेवं॥

जब रावण के पुत्रों ने युद्ध आरम्भ किया, तब योगिनियाँ अपने खप्पर भरने लगीं, भैरव जोर-जोर से आवाज करने लगे, युद्ध की देवियाँ बोलने लगीं, भूत-प्रेत गीत गाने लगे, वीर-वैताल नाचते-कूदते हुए माँस भक्षण करने लगे। यक्ष, गन्धर्व, विद्याधर आदि और सभी देवता राम की सेना का जय-जयकार करने लगे। लाशों पर लाशें चढ़ गईं, चारों ओर हो-हल्ला मच गया। वह युद्ध सचमुच बहुत भयंकर था।

संगीत छप्पय छन्द

कागड़दी कुप्यो कपि-कटक बागड़दी बाजन रण बज्जिय।
तागड़दी तेग झलहली गागड़दी जोधा गल-गज्जिय॥
सागड़दी सूर सामुहे नागड़दी नारद मुनि नच्चयो।
बागड़दी वीर वैताल बोले आगड़दी आरुण रंग रच्चयो॥
संसागड़दी सुभट नच्चे समर फागड़दी फुंक फनियर करैं।
संसागड़दी समटै सुंकड़े फणपति कण फिरि फिरि धरैं॥

उधर वानरों की सेना ने भी बहुत क्रोध किया। रण में बाजे बजने लगे, तलवारें चमकने लगीं और योद्धा गरजने लगे। एक दूसरे के सामने होकर भिड़ने लगे। यह देखकर नारद मुनि भी प्रसन्नता से नाचने लगे। वीर वैताल आदि लाल रंग में नहा गये। बड़े-बड़े शूर-वीर मस्ती में नाचने लगे। इस प्रकार के युद्ध में शेष नाग की तरह शूर-वीर फुफकार रहे थे। परन्तु स्वयं शेष नाग डरकर सिकुड़ते जाते थे और बार बार फन इधर-उधर घुमाते थे।

फागड़दी फूँक फिंकरी रागड़दी रण गिद्ध रड़क्कै।
लागड़दी लुत्थ बित्थुरी भागड़दी भट धाय भभक्कै॥
बागड़दी बरषत बाण झागड़दी झलमलत कृपाणं।
गागड़दी गज्ज संजरै कागड़दी कच्छै किंकाणं॥
बंबागड़दी बहत बीरन सिरन तागड़दी तमकि तेगं कड़ीय।
झंझागड़दी झड़क दै झड़ झलमल झुकि विज्जुल झड़ीय॥

उस रण-स्थल में गीदड़ियाँ घूम रही थीं और गिद्ध मँडरा रहे थे। लाशों के ढेर बिखरे पड़े थे। कुछ शूर-वीर घायल होकर इधर-उधर घूम रहे थे और भड़क रहे थे। बाणों की वर्षा होती थी और कृपाण चमकते थे। कई शूर-वीर गरजते हुए एक दूसरे के सिरों पर तलवारें चला रहे थे। उन तलवारों की चमक ऐसी थी मानो बिजली कौंध (चमक) रही हो।

नागड़्दी नारान्तक गिरत दागड़्दी देवान्तक धायो।
जागड़्दी जुद्ध कर तुमुल सागड़्दी सुर-लोक सिधायो॥
दागड़्दी देव हरषंत आगड़्दी असुर रण सोभं।
सागड़्दी सिद्ध सरसंत नागड़्दी नाचत तजि जोगं॥
खंखागड़्दी खय भए प्रापत खल पागड़्दी पुहुप डारत।
जंजागड़्दी सकल जै जै जपैं सागड़्दी सुरपुरहि नर नारत॥

युद्ध करते-करते नारान्तक गिर पड़ा और तब देवान्तक ने धावा किया, और अंत में भयंकर युद्ध करके वह भी सुर-लोक सिधारा। देवगण हर्षित हुए और राक्षसों को शोक हुआ। सिद्ध मुनि भी अपना योग छोड़कर इसी प्रसन्नता में नाचने लगे। दुष्टों का नाश हुआ और देवताओं ने पुष्प-वर्षा की। आकाश के देवताओं और देवियों ने जय-जयकार किया।

रागड़्दी रावणहि सुन्यो सागड़्दी दोऊ सुत रण जुज्झे।
बागड़्दी बीर बहु गिरे आगड़्दी आहवहिं अरुज्झे॥
लागड़्दी लुत्थ बित्थुरी चागड़्दी चावंड चिकारं।
नागड़्दी नद्द भए गद्द कागड़्दी काली किलकारं॥
भंभागड़्दी भयंकर जुद्ध भयो जागड़्दी जूह जुग्गन जुरीय।
कंकागड़्दी किलकंत कूहर पागड़्दी पत्र श्रोणत भरीय॥

उधर रावण को भी पता लगा कि दोनों पुत्र मारे गये और बड़े-बड़े वीर मर चुके हैं—युद्ध में उलझकर समाप्त हो गये हैं। रण-भूमि में लाशों के ढेर पड़े हैं; उन पर चुड़ैलें चीख रही हैं। साक्षात् काली किलकारियाँ भर रही है। भयंकर युद्ध हुआ है। रण-स्थल में जोगनियों के समूह जुट गये हैं जो कूक-कूककर अपने पात्र रक्त से भर रहे हैं।

अथ प्रहस्त-युद्ध कथनम्

संगीत छप्पय छन्द

पागड़दी प्रहस्त पठयो दागड़दी दै कै दल अनगन ।
कागड़दी कँप भूअ उठी बागड़दी बाजी खुरी अनतन ॥
नागड़दी नील तिह झिन्यो भागड़दी गहि भूमि पछाड़िय ।
सागड़दी समर हाहाकार दागड़दी दानव दल मारिय ॥
घंघाड़दी घाइ भक भक करत रागड़दी रुहिर रण रंग बहि ।
जंजागड़दी जुयह जुग्गन जपै कागड़दी काक कर कहकहहि ॥

तब रावण का क्रोध और भी बढ़ा और उसने अपने मन्त्री प्रहस्त को अनगिनत सेना देकर युद्ध करने के लिए भेजा । उसके चलते ही पृथ्वी काँप उठी और घोड़ों के खुरों से उस (पृथ्वी) का अंग-अंग मानो छिल गया । जब युद्ध होने लगा, तब नील ने उस (प्रहस्त) को पकड़कर झटका दिया और धरती पर पटक दिया । राक्षसों की सेना में हाहाकार मच गया कि दानव दलपति मारा गया । घावों से खून भक-भक करके निकलने लगा । योगिनियाँ इकट्ठी होकर खप्पर भरने लगीं और कौए काँव-काँव करने लगे ।

पागड़दी प्रहस्त जुझंत लागड़दी लै चल्यो अप्प दल ।
भागड़दी भूमि भड़हड़ी कागड़दी कँपे दोइ जल थल ॥
नागड़दी नादन निहनद्द भागड़दी रण भेरि भयंकर ।
सागड़दी साँग झलहलत चागड़दी चमकंत चलत सर ॥
खंखागड़दी खतखङ्ग खिमकंत थहत चागड़दी चटक चिनगैं कढ़ैं ।
टंटागड़दी टाट ठठ कर मनो ठागड़दी ठनक ठठिअर गढ़ैं ॥

प्रहस्त अपनी सेना लेकर बढ़ा और जूझ पड़ा । पृथ्वी और जल में हड़-

कम्प मच गया। रण में भयंकर भेरियों की ध्वनि सुनाई पड़ने लगी। तलवारें चमकने लगीं और चलते हुए वाण झलकने लगे। जगह-जगह तलवारों की धारें चमक उठीं और उनकी रगड़ से चिनगारियाँ निकलने लगीं। तलवारों के आपस में टकराने से ठठ-ठठ की ध्वनि होती थी। ऐसा प्रतीत होता था मानो ठठेरे बैठे हुए बरतन बना रहे हैं।

ढागड़दी ढाल उच्छलहिं बागड़दी रणवीर वबक्कहिं।
आगड़ही इक्क लै चलें इक्क कहुँ इक्क उचक्कहिं॥
तागड़दी ताल तंबूरं बागड़दी रण वीन सुवज्जें।
सागड़दी संख के शब्द गागड़दी गैवर गलगज्जें॥
धंधागड़दी धरणि धड़धुकि परत चागड़दी चकित चित मह असुर।
पंपागड़दी पुहुप वरषा करत जागड़दी जच्छ गन्धर्व वर॥

कहीं ढालें उछल रही थीं, कहीं युद्ध करते हुए शूर-वीर बोल रहे थे, कहीं एक दूसरे को उठाकर ले जा रहे थे, कहीं मार रहे थे। कहीं शूर-वीरों को उत्साहित करने के लिए तंबूरे और वीणाएँ बज रही थीं। कहीं शंख की ध्वनि हो रही थी, कहीं क्रोध में भरकर योद्धा एक दूसरे को ललकार रहे थे। धरती इस प्रकार प्रतीत हो रही थी, मानो भूचाल आ रहा हो। वह युद्ध देखकर असुर भी चकित थे कि यह क्या हो रहा है! ऊपर आकाश से यक्ष, गंधर्व आदि राम की सेना पर पुष्प-वर्षा कर रहे थे।

झागड़दी जूझ भट गिरें मागड़दी मुख मार उचारें।
सागड़दी सेज पंजरे घाघड़दी घनिअर जनु कारे॥
तागड़दी तीर बरषंत गागड़दी गहि गदा गृष्टं।
मागड़दी मन्त्र मुख जपें आगड़दी अखखर वर इष्टं॥

संसागड़दी सदाशिव सिमर कर जागड़दी जूझ जोधा मरत।
संसागड़दी सुभट सन्मुख गिरत आगड़दी अपच्छरन बरत॥

भट शूर-वीर जूझ-जूझकर गिर रहे थे और मुख से 'मारो-मारो' की आवाज लगा रहे थे। वीरों ने अपने शरीर पर जो कवच बाँध रखे थे, वे ऐसे प्रतीत होते थे, मानो काले बादल हों (लोहे के कवचों के कारण बादल की उत्प्रेक्षा है)। कुछ शूर-वीर बाणों की वर्षा कर रहे थे, कुछ हाथों में गदा लिये हुए घुमा रहे थे। कुछ अपने इष्टदेव का स्मरण करते हुए युद्ध में जूझ रहे थे। कहीं शूर-वीर भगवान शिव का नाम ले लेकर मर रहे थे। युद्ध में संमुख होकर मरनेवाले शूर-वीरों को अप्सराएँ वरण कर रही थीं।

भुजंग-प्रयात छन्द

इतै उच्चरे राम लंकेश बैनं। उतै देव देखे चढ़े रत्थ गैनं॥
कहो एक एकं अनेकं प्रकारं। मिले युद्ध जेते समंतं जुझारं॥

इस तरह का युद्ध होता हुआ देखकर श्री राम ने लंकेश (विभीषण) से कहा। उधर देवताओं ने आकाश में बैठकर देखा। श्री राम ने कहा— विभीषण! यह युद्ध करनेवालों के नाम और विशेषताएँ हमें बताओ। जो लोग इस युद्ध में उलझ रहे हैं, उन सबका परिचय दो।

विभीषण उवाच

धनुं मण्डलाकार जाकौ बिराजै। सिरं जैत-पत्रं सितं छत्र छाजै।
रथं बेष्टितं व्याघ्र चर्मं अभीतं। तिसै नाथ जानो हठी इन्द्रजीतं॥

विभीषण ने कहा—महाराज! जिसका धनुष मण्डलाकार है, जिसके सिर पर कलगी और छत्र है और जिसका रथ व्याघ्र-चर्म से मढ़ा है, उसका नाम इन्द्रजीत है।

नहे पिंग बाजी रथं जेन सोभैं। महाकाय पेखे सबै देव छोभैं।
रहे सर्व गर्वं धनंपाल देवं। महाकाय नामा महाबीर जेवं॥

जिसके रथ में धूसर वर्ण के घोड़े जुते हैं और जिसकी देह देखकर देवता

भयभीत होते हैं, जो अपने धनुष से देवताओं का गर्व भी नष्ट करता है, उस महावीर का नाम महाकाय है।

लगे मोर वर्णं रथं जेन वाजी। बकै मार मारं तजै बाण ताजी॥
महाजुद्ध कर्ता महोदर वखानो। तिसै जुद्धकर्ता बड़ा राम जानो॥

जिसके रथ में मोर के रंगवाले घोड़े जुते हैं और जो 'मारो मारो' की पुकार मचाकर बाण छोड़ रहा है, उस महायुद्धकारी को महोदर समझें।

लगे मूषकं वर्ण वाजी रथेशं। हँसै पौन के गौन को चार देशं॥
धरे बाण पाणं किधौं काल रूपं। तिसै राम जानो सही दैत भूपं॥

जिसके रथ में चूहों के रंग के ऐसे घोड़े हैं, जो अपनी गति से चारों दिशाओं की वायु को भी मात करते हैं और जिसके हाथ में बाण हैं, वह मानो साक्षात् काल रूप है। हे राम, वह स्वयं दानवराज रावण है।

फिरै मोर-पुच्छं दुरै चौंर चारं। रड़ै कित्त वंदी अनंतं अपारं॥
रथं स्वर्ण की किंकनी चारु सोहैं। लखैं देव-कन्या महा तेज मोहैं॥

इसी रावण के सिर पर मोरछल और चँवर डुलाये जाते हैं और वंदीजन इसी का सदा यशोगान करते हैं। इसके रथ पर सोने की घंटियाँ लगी हैं और इसका रूप देखकर देव-कन्याएँ भी मोहित हो जाती हैं।

छके मद्ध जाकी धुजा शार्दूलं। इहै दैतराजं दुरं द्रोह-मूलं॥
लसै क्रीट सीसं कसै चंद्रमा को। रमानाथ चीनो दसंग्रीव ताको॥

हे राम! जिसके रथ पर चीते के निशान का झंडा फहराता है, और जो दैत्यों का राजा है, यही द्रोह की जड़ रावण है। जिसका मुकुट चन्द्रमा की आभा (चमक) को भी लज्जित करता है, वही यह रावण है।

दुहूँ ओर बज्जे बजंत्रं अपारं। मचे शूर-वीरं महाशस्त्र धारं॥
करै अस्त्र-पातं निपातंत सूरं। उठे मद्ध जुद्धं कबंधं करूरं॥

विभीषण के इस प्रकार बतलाने के बाद जब युद्ध आरम्भ हुआ, तब दोनों ओर के बाजे बजने लगे और शूर-वीर योद्धा रण में मानों मत्त हो उठे। वे एक दूसरे पर शस्त्र फेंकने लगे। युद्ध भूमि में अनेक स्थानों पर कबन्ध घूमते हुए दिखाई देने लगे।

गिरे रुण्ड मुण्डं मुसुण्डं अपारं। रुले अंग भंगं समंतं लुझारं॥
परी कूह जूहं उठे गद्द सद्दं। जके सूरवीरं छके जानु मद्दं॥

रुण्ड-मुण्डों से धरती भर गई। टूटे हुए अंग इधर-उधर बिखरने लगे। योद्धा जूझ पड़े। चारों ओर भयंकर चीखें सुनाई पड़ रही थीं। सभी शूर-वीर इस प्रकार प्रतीत हो रहे थे, मानो सबने मदिरा पी रखी हो।

गिरे झूम भूमं अघूमे तिघायं। उठे गद्द सद्दं चढ़े चोप चायं॥
जुझे वीर एकं अनेक प्रकारं। कटे अंग जंगं रटै मार मारं॥

वे घावों के कारण झूम-झूमकर इधर-उधर घूमने लगे। उनका शब्द बहुत भयानक हो रहा था। प्रत्येक वीर भाँति भाँति के कौशल दिखा रहा था। वे दूसरों के अंग काट रहे थे और 'मारो मारो' का शोर मचा रहे थे।

छुटै पाण बाणं उठै गद्द सद्दं। रुले झूम भूमं सुमीरं बिहद्दं॥
नचे रंग जंगं ततत्थी ततत्थं। छुटै बाजि राजी फिरै छूछ हत्थं॥

वे जब अपने हाथों से बाण चलाते थे, तब उनसे भयंकर ध्वनि होती थी और असंख्य वीर मारे जाते थे। सभी शूर-वीर युद्ध के रंग में मानो ता थेई की ध्वनि पर नाच रहे थे। कइयों के हाथों से घोड़े छूट गये और वे खाली हाथ ही घूमते दिखाई देते थे।

गिरे अंकुशं वारणं वीर खेतं। नचे कंध-हीनं कबंधं अचेतं॥
भरैं खेचरी पत्र चौंसट्ठ चारी। चले सर्व आनन्द ह्वै मांसहारी॥

उस युद्ध में अनेक अंकुश और अनेक हाथी गिरे थे। कहीं सिर से

रहित कबंध भाग रहे थे, कहीं चौंसठ योगिनियाँ अपने पात्र रक्त से भरती दिखाई दे रही थीं और कहीं मांसाहारी इधर-उधर से दौड़े आ रहे थे।

गिरे बंकुड़े वीर बाजिं सुदेशं। परे पीलवानं छुटे चार केशं॥
करैं पैज वारं प्रचारंत वीरं। उठै श्रोण धारं अपारं हमीरं॥

शूर-वीर घोड़ों की पीठ से गिर रहे थे और हाथी के सवार योद्धा हाथियों से गिर रहे थे। उनके केश खुल जाते थे। शूर-वीर एक दूसरे को मारने की प्रतिज्ञाएँ करते थे और एक दूसरे को ललकारते थे। लहू की धार उठ रही थी, अनेक योद्धा मारे जा रहे थे।

छुटैं चारि चित्रं विचित्रंत वाणं। चले बैठ कै सूर वीरं विमानं॥
गिरे वारणं बित्थरी लुत्थ जुत्थं। खुले स्वर्ग-द्वारं गए वीर छुत्थं॥

उन वीरों के हाथों से अनेक चित्र-विचित्र धनुप और बाण छूट गये और वे मरने के बाद स्वर्ग जा पहुँचे। हाथी गिर पड़े, लाशों के ढेर लग गये, वीर सीधे स्वर्ग पहुँचे।

दोहा

इह विधि इत सेना भई, रावण राम विरुद्ध।
लंक बंक प्रापत भयो, दससिर महा सक्रुद्ध॥

इस प्रकार श्री राम के विरोधी रावण की सेना समाप्त हुई। अन्त में रावण भी लंका के गढ़ में घुस गया।

भुजंग-प्रयात छन्द

तवै मुकले दूत लंकेश अप्पं। मनं वच्च कर्मं शिवं जाप जप्पं॥
सवै मंत्रहीनं सवै अंत कालं। भजो एक चित्तं सुकालं कृपालं॥

तब रावण ने अपने दूत कैलाश पर्वत पर भेजे। वे सभी मन, वाणी और कर्म से शिव के ध्यान में लगे। कवि उपदेश देते हैं—जब अन्त निकट आता

है, तब सभी मन्त्र निष्फल हो जाते हैं; इसलिए मन लगाकर उस ईश्वर का ध्यान करो।

रथी पाइकं दंत-पंती अनंतं। चले पख्खरे बाजि राजं सुभंतं॥
धँसे नासिका श्रोण मज्झं सुबीरं। बजे कान्हरे डंक डौंरू नफीरं॥

(अब दूतों ने जाकर सोये हुए कुम्भकर्ण को जगाना आरम्भ किया।)

रथी, घोड़े, सवार, पैदल सभी उस कुम्भकर्ण को जगाने के लिए चल पड़े। कई वीर तो उसकी नाक में घुस गये, कइयों ने अपने हाथी-घोड़ों के साथ ही उसके कानों में घुसकर अनेक प्रकार के बाजे बजाये, जिनमें कान्हड़ा राग विशेष रूप से बजाया गया।

बजै लाग वादं निनादंत बीरं। उठै गद्द सद्दं निनद्दं नफीरं॥
भए आकुलं व्याकुलं छोर भाग्यं। वली कुंभकर्णं तऊ नाहि जाग्यं॥

शूर-वीरों ने अनेक बाजे बजाये, जिनसे बहुत भयंकर शब्द होने लगा। बहुत-से लोग वह भयंकर आवाज सुनकर ही भाग्य का भरोसा करके भाग खड़े हुए। फिर भी कुम्भकर्ण की निद्रा नहीं टूटी।

चले छाँड़ि कै आस-पासं निराशं। भए भ्रात के जागवे ते उदासं॥
तवै देवकन्या कियो गीत गानं। उठ्यो देव-दोषी गदा लै सुपानं॥

अन्त में शूर-वीर उसके जागने की आशा छोड़कर चल पड़े। रावण भी भाई के न जागने से निराश हो गया। तब देव-कन्याओं ने गीत गाने आरम्भ किये; तब कहीं जाकर कुम्भकर्ण की नींद टूटी। तब वह देव-द्रोही हाथ में गदा लेकर उठा (और चल पड़ा)।

कर्‍यो लंक देशं प्रवेशंत सूरं। वली बीस बाहं महा शस्त्र पूरं॥
करै लाग मंत्रं कुमंत्रं विचारं। इतै उच्चरै बैन भ्रातं लुझारं॥

जब कुम्भकर्ण ने लंका में प्रवेश किया, तब बीस भुजाओंवाला रावण

आकर उससे मिला। दोनों ने बैठकर अपने मन्त्रियों के साथ कुमन्त्रणा की और अपने भाई को आरम्भ से अन्त तक की सब बातें सुनाईं।

जलं गागरी सप्त साहस्र पूरं। मुखं पूंछ लग्यो कुंभकर्ण करूरं॥
कियो मांसहारं महामद्य पानं। उठ्यो लै गदा को भख्यो वीर मानं॥

पानी की सात हजार गागरों से मुँह-हाथ धोकर कुम्भकर्ण ने मांस खाया और मदिरा पी। तब वह अभिमानपूर्वक गदा लेकर उठ खड़ा हुआ।

भजी वानरी सर्व सैना अपारं। त्रसे जूथ पै जूथ जोधा जुझारं॥
उठे गद्द सद्दं निनद्दंत वीरं। फिरैं रुण्ड मुण्डं तनं तच्छ तीरं॥

कुम्भकर्ण को देखकर वानर सेना भाग खड़ी हुई और योद्धाओं के झुण्ड डर गये। भयंकर ध्वनि होने लगी। उधर श्री राम के तीर कुम्भकर्ण की सेना को गिराने लगे।

गिरे मुण्ड तुण्डं भुसुण्डं गजानं। फिरे रुंड मुंडं सुझुण्डं निशानं॥
रड़ै कंक वंकं ससंकंत जोधं। उठी कूह जूहं मिलै सैन क्रोधं॥

युद्ध में रुण्ड-मुण्ड और हाथी गिरने लगे। कहीं रुण्ड-मुण्ड तड़पते हुए घूमने लगे। ऊपर कौए बोलने लगे जिससे योद्धा अपने प्राणों का संशय करने लगे। क्रोध में भरकर सेनाएँ गुथ गईं।

झिर्मी तेग तेजं सरोषं प्रहारं। खिमी दामिनी जान भादों मझारं॥
हँसे कंक वंकं कसे सूर वीरं। ढलो ढाल मालं सभै तच्छ तीरं॥

शूर-वीर तेज तलवारें चलाने लगे और क्रोध में भरकर प्रहार करने लगे। ऐसा प्रतीत होता था कि भादों के महीने में बिजली चमक रही हो। शूर-वीरों के रुण्ड-मुण्ड हँसते दिखाई दे रहे थे। कई शूरों के शरीर तीरों से बिंधे हुए और ढालों से सजे हुए दिखाई दे रहे थे।

विराज छन्द

हक्क देवी करं । सद्द भैरो करं ॥
चावड़ी चिंकरं । डाकनी डिंकरं ॥

युद्ध की देवी पुकारती थी, भैरव बोलता था। चुड़ैलें चीखती थीं, डाकिनियाँ डकार रही थीं।

पत्र जुग्गन भरं । लुत्थ बित्थुत्थरं ॥
संमुहे संघरं । हूह कूहं भरं ॥

योगिनियाँ खप्पर भर रही थीं, लाशों पर लाशें गिर रही थीं। सामने होकर एक दूसरे को मारा जा रहा था और भयंकर हल्ला हो रहा था।

अच्छरी उच्छरं । सिंधुरे सिंधरं ॥
मार मारुच्चरं । वज्ज गज्जे सुरं ॥

अप्सराओं में उत्साह बढ़ रहा था, हाथी चिंघाड़ते थे। शूरवीर 'मारो मारो' की पुकार मचा रहे थे, बाजे बज रहे थे।

उज्झरे लुज्झरं । झुम्मरे जुज्झरं ॥
बज्जियं डम्मरं । तालनो तुम्बरं ॥

वीर लड़ रहे थे और मानो झूम रहे थे। डमरू बज रहे थे और तम्बूरों की तानें चल रही थीं।

रसावल छन्द

परी मार मारं । मँडे शस्त्र-धारं ॥
रटैं मार मारं । तुटैं खग्ग धारं ॥

चोट पर चोट पड़ रही थी। शस्त्रों की धारें तीखी की जा रही थीं और "मारो मारो' की ध्वनि हो रही थी। तलवारों की धारें कुण्ठित हो रही थीं।

उठै छिच्छ पारं। वहै श्रोण धारं॥
हँसै मासहारं। पिवैं श्रोण स्यारं॥

लहू के छींटे उड़ रहे थे, रक्त की धाराएँ बह रही थीं। मांसाहारी मस्त थे और गीदड़ रक्त की धाराएँ पी रहे थे।

गिरैं चौंर चारं। भजे एक हारं॥
रटैं एक मारं। गिरैं सूर स्वारं॥

कइयों के चँवर गिरे पड़े थे; कुछ भाग गये थे; कुछ 'मारो मारो' की रट लगा रहे थे; कुछ शूर-वीर घोड़े से गिर पड़े थे।

चले एक स्वारं। परे एक वारं॥
बड़ो जुद्ध पारं। निकारे हथ्यारं॥

कुछ सवार भाग निकले, कुछ एक दम टूट पड़े। कुछ ऐसे थे जो उस महान् युद्ध में तलवार निकालकर लड़ने लगे।

करैं एक वारं। लसैं खग्ग धारं॥
उठैं अंगि पारं। लखैं व्योमचारं॥

कुछ योद्धा प्रहार करते थे, जिनकी तलवारें उस समय बिजली की तरह चमक उठती थीं और उनकी रगड़ से चिनगारियाँ निकलती थीं। उनका युद्ध देखने के लिए आकाश में देवगण खड़े थे।

सुपैजं पचारं। मँडे अस्त्र-धारं॥
करैं मार मारं। इकै कंप चारं॥

कुछ शूर-वीर मरने-मारने की प्रतिज्ञा करके ललकार रहे थे और शस्त्रों से सजे हुए वीर 'मारो मारो' की पुकार मचा रहे थे। कुछ कायर ऐसे भी थे जो काँप रहे थे।

महावीर जूटैं। सरं संज फूटैं॥
तड़ंकार छूटैं। झडंकार ऊठैं॥

बड़े-बड़े शूर-वीर जूझ रहे थे। उनके तीरों से कवच भिदे जा रहे थे और तड़ाक-तड़ाक शब्द करते हुए टूट जाते थे, जिनसे झंकार उठती थी।

सरं धार बुट्ठें। जगं जुद्ध जुट्ठें॥
रणं रोप रुट्ठें। इकं एक कुट्ठें॥

तीरों की वर्षा हो रही थी। एक योद्धा दूसरे से भिड़ रहा था। युद्ध में क्रोध भरा हुआ था; एक को एक मार रहा था।

ढलीं ढाल उट्ठें। अरं फौज फुट्ठें॥
कि नेजे पलट्ठें। चमत्कार उट्ठें॥

ढालों की ढल-ढल की आवाज हो रही थी। शत्रुओं की फौज तितर-बितर होती दिखाई देने लगी। उन्हें नेजों से मारा गया। सचमुच यह भी एक चमत्कार ही था।

किते भूमि लुट्ठें। गिरें एक उट्ठें॥
रणं फेर जुट्टें। वहे तेग तुट्टें॥

कई शूर-वीर धरती पर लोट गये, कई गिरकर फिर उठ खड़े हुए और फिर से युद्ध में जूझ पड़े। चलाते-चलाते कइयों की तलवारें टुकड़े-टुकड़े हो गईं।

मचै वीर वीरं। धरे वीर चीरं॥
करैं शस्त्र पातं। उठैं अस्त्र घातं॥

शूर-वीर वीरता में भरे हुए थे। उन्होंने वीर-वस्त्र (कवच) पहने हुए थे। वे शस्त्र चलाते थे और अस्त्रों से अपनी रक्षा करते थे।

इतैं बानराजं। उतै कुंभकाजं॥
कियो साल पातं। गिरयो वीर भ्रातं॥

इधर वानरराज थे, उधर कुम्भकर्ण था। वानरराज सुग्रीव ने एक पहाड़ उठाकर कुम्भकर्ण पर पटका। रावण का वीर भाई कुम्भकर्ण उसकी चोट खाकर तुरन्त गिर पड़ा।

दोउ जाँघ फूटी। रतं धार छूटी॥
गिरे राम देखे। बड़े दुष्ट लेखे॥

उस प्रहार से उसकी दोनों जाँघें टूट गईं और उनसे रक्त की धारा बह निकली। श्री राम ने देवताओं के शत्रु दुष्ट कुम्भकर्ण को गिरते हुए देखा।

करी बाण वर्षं। भयो सैन हर्षं॥
हने बाण पाणं। झिन्यो कुंभकानं॥

श्री राम ने भी तीरों की वर्षा की। सारी सेना में हर्ष छा गया। श्री राम के चलाये हुए बाणों से कुम्भकर्ण मारा गया।

भए देव हर्षं। करी पुष्प-वर्षं॥
सुन्यो लंक-नाथं। हने भूमि माथं॥

देवताओं में हर्ष छा गया और उन्होंने पुष्प-वर्षा की। इधर जब रावण ने कुंभकर्ण की मृत्यु का समाचार सुना, तो उसने भूमि पर सिर पटक दिया।

अथ त्रिमुण्ड युद्ध कथनम्

रसावल छन्द

पठ्यो तीन मुण्डं । चल्यो सैन झुण्डं ॥
कृती चित्र जोधी । मँडे परम क्रोधी ॥

तब रावण ने त्रिमुंड को सेना का समूह देकर भेजा । वह साक्षात् युद्ध की मूर्ति बनानेवाला और बहुत बड़ा क्रोधी था ।

बकै मार मारं । तजै बाण धारं ॥
हनूमंत कोपे । रणं पाँच रोपे ॥

वह 'मारो मारो' की ध्वनि करता हुआ आया और आते ही उसने बाणों की वर्षा की । यह देखकर हनुमान क्रुद्ध हुए और स्वयं रण में कूद पड़े ।

असं छीन लीनो । तिसी कंठ दीनो ॥
हन्यो पष्ठ नैनं । हँसे देव गैनं ॥

हनुमान ने उसकी तलवार छीन ली और उसी के गले में भोंक दी । त्रिमुण्ड मारा गया । यह देखकर देवतागण प्रसन्न हुए ।

अथ महोदर मंत्री युद्ध कथनम्

रसावल छंद

सुन्यो लंक-नाथं । धुने सर्व माथं ॥
कियो मद्य पानं । भरे वीर मानं ॥

जब लंकाधिपति रावण ने त्रिमुंड का वध सुना, तो सबने सिर धुने । फिर सबने मदिरा-पान किया और वे वीर भाव में भर गये ।

महेश्वास कर्षे । सरं धार वर्षे ॥
महोद्रादि वीरं । हठे खग्ग धीरं ॥

धनुष खींच लिये और वाणों की वर्षा की । महोदर आदि वीरों ने भी हठपूर्वक तलवारें पकड़ लीं ।

मोहनी छंद

ढलहल्ल सु ढल्ली ढोलानं । रण रंग अभंगं कलोलानं ॥
भणणंक सुनादं नाफीरं । वरणंक सुवज्जे मंजीरं ॥

ढलहल ढलहल करते हुए ढोल बज रहे थे, रण-रंग में मस्त शूर-वीर खेल-कूद कर रहे थे । भणणंक शब्द करती हुई नफीरियाँ बज रही थीं; और वरणंक शब्द करते हुए मँजीरे (एक प्रकार का छोटा छैना) बज रहे थे ।

भरणंक सुभेरी घोरानं । जनु सावन भादों मोरानं ॥
उछलीये प्रखरे पावंगं । मचि जुज्झारे सब जोधंगं ॥

भरणंक शब्द से भेरियाँ गूँज रही थीं । ऐसा प्रतीत होता था कि सावन-भादों में मोर बोल रहे हों । उनका शब्द सुनकर घोड़े उछल रहे थे और लड़ाके वीर युद्ध-रंग में मस्त हो रहे थे ।

सिंधुरिये सुण्डी दन्ताले। नचते पखरीये मुच्छाले ॥
उरड़ीये सर्वं सैनायं। ललते सब देवं गैनायं ॥

बड़े-बड़े सूँडों और दाँतोंवाले हाथी मदमस्त होकर चल रहे थे और बड़ी-बड़ी मूँछोंवाले वीर रण-मत्त होकर नाच रहे थे। घुड़सवार घोड़े नचा रहे थे। सारी सेना उमड़ पड़ी थी। देवता भी आकाश से वह दृश्य देखने लगे।

झल्ले अवझड़ियं ऊझाड़ं। रण उट्ठै बैठै वक्वाड़ं ॥
घै घुम्मे घायं अघ्घायं। भुअ डिग्गे अद्धं अद्धायं ॥

उस समय सभी वीर असह्य प्रहार सहते हुए एक दूसरे के साथ उलझ रहे थे। युद्ध में सभी शूर-वीर कभी उठ रहे थे, तो कभी बैठ रहे थे। इस प्रकार पैंतरे बदल रहे थे और ललकार रहे थे। कई शूर-वीर घाव आदि लगने से घूमकर, चक्कर खाकर गिर पड़ते थे; कुछ आधे कटकर गिर रहे थे।

रिस मंडे छंडे आछंडे। हठि हस्से कस्से कोदंडे ॥
रिस वाहैं गाहैं जोधानं। रण रोहैं जे हैं क्रोधानं ॥

क्रोध में भरे हुए योद्धा बड़े-बड़े वीरों को पटक रहे थे और हठी वीर हँस-हँसकर धनुष कस-कसकर पकड़ रहे थे। गुस्से में भरकर योद्धाओं को बाँहों से पकड़कर फेंक रहे थे तथा क्रोध में भरकर युद्ध कर रहे थे।

रण गज्जे सज्जे शस्त्रानं। धनु कर्षे वर्षे अस्त्राणं ॥
दल गाहै वाहै हथ्थारं। रण रुज्झे लुज्झे लुज्झारं ॥

सभी शूर-वीर रण की वेश-भूषा से सजे हुए ललकार रहे थे, धनुष खींच रहे थे और अस्त्रों की वर्षा कर थे। कई शूर-वीर सेना को मसलते हुए शस्त्र चला रहे थे। प्रतीत होता था कि सभी युद्ध में उलझ पड़े हों।

भट भेदे छेदे वर्मायं। भुअ डिग्गे चौरे चर्मायं ॥
उग्घे जनु नेजे मतवाले। चल्ले ज्यों रावल जट्टाले ॥

कवचों में छेद हो जाने से योद्धा बिंध रहे थे। उनकी चौड़ी ढालें पृथ्वी

पर गिर रही थीं। कहीं-कहीं योद्धा हाथों में खुले नेजे लिये हुए ऐसे प्रतीत होते थे, मानो जटाधारी योगी हों।

हठ्ठी तरवरिये हंकारं। मच्चे पखरीये सूरारं ॥
अक्कड़ियं वीरं पैंठाले। तन सोहे पत्री पत्राले ॥

हठी योद्धा तलवारें लिये हुए, घोड़ों पर चड़े हुए क्रोध की आग में जल रहे थे। वे सभी ऐंठ रहे थे, अकड़ रहे थे। कई शूर-वीरों के शरीर लगे हुए तीखे तीरों से शोभा पा रहे थे।

नव छन्द

तर भर पर सर। निरखत वर नर ॥
हर पुर पुर सर। निरखत वर नर ॥

सभी जगह तीर चल रहे थे, देवता और मानव देख रहे थे, सूर्य का नगर (आकाश) तीरों से भर गया था। लोग देख रहे थे।

बरसत सर वर। करषत धनु कर ॥
परहर फुर कर। निरखत वर नर ॥

बलपूर्वक तीर चलाये जा रहे थे, धनुष खींचे जा रहे थे, फुर्र की ध्वनि से तीर चल रहे थे, लोग देख रहे थे।

सर वर धर कर। पर हर पुर सर ॥
परखत उर नर। निसरत उह घर ॥

धनुष पर बढ़िया तीर चढ़ाया जाता था और तेजी से छोड़ा जाता था। वे तीखे तीर पहले मनुष्य की छाती परखते थे, फिर दूसरी ओर निकल जाते थे।

उझरत जुझकर। बिछुरत जुझकर ॥
हरसत मसहर। बरसत सित सर ॥

योद्धा जूझ-जूझकर उछल रहे थे और बिछुड़ रहे थे। मांसाहारी जीव प्रसन्न हो रहे थे। सफेद चमकीले बाण बरस रहे थे।

झुर झर कर कर। डर डर घर हर॥
हर वर धर कर। बिहरत उठ नर॥

वीर एक दूसरे को मारते थे, काँपते थे और हड़बड़ी में पड़कर उठ रहे थे, भाग रहे थे।

उचरत जम नर। बिचरत धँसि नर॥
थरकत नर हर। बरषत भुअ पर॥

उस समय मनुष्य को 'यम' कहना ठीक प्रतीत होता था, क्योंकि वे एक दूसरे को चलते-फिरते (जीवित) धँसा (अर्थात् मार) रहे थे। उनका रूप रौद्र था, जिसे देखकर प्रत्येक मनुष्य काँप जाता था। पृथ्वी पर सहसा वर्षा की तरह योद्धा गिर रहे थे, तड़ाक से ताड़ (मार) रहे थे।

तिलकड़िया छन्द

चटाक चोटै। अटाक ओटै॥
झड़ाक झाड़ै। तड़ाक ताड़ै॥

चटाक से (झटपट) प्रहार करते थे, अटाक से (आगे से) रोकते थे। झड़ाक से (तुरन्त) झाड़ रहे थे, तड़ाक से ताड़ (मार) रहे थे।

फिरंत हूरं। वरंत सूरं॥
रणंक जोहं। उठंत कोहं॥

युद्ध-स्थल में अप्सराएँ घूम रही थीं और शूर-वीरों का वरण कर रही थीं। जब वे शूर-वीर रण की ध्वनि सुनते थे, तब एक दम से क्रोध में भरकर उठ खड़े होते थे।

भरंत पत्रं। तुटंत अन्त्रं॥
फड़ंत अग्नं। जलंत जग्नं॥

युद्ध में खप्पर भरे जा रहे थे, आँतें टूट रही थीं। तलवारों के टकराने से आग निकल रही थी। ऐसा मालूम होता था कि जुगनूँ चमक रहे हैं।

तुटंत खोलं । जुटंत टोलं ॥
खिमंत खग्गं । उठंत अग्गं ॥

खोल (युद्ध में सिर की रक्षा के लिए पहना जानेवाला टोप या खोद) टूट रहे थे, टोलियों की टोलियाँ आपस में जूझ रही थीं । तलवारें रगड़ खाती थीं और उनमें से आग निकल रही थी ।

चलंत वाणं । रुकं दिशानं ॥
पपात शस्त्रं । अघात अस्त्रं ॥

युद्ध में इतने तीर चल रहे थे कि दिशाएँ रुक गई थीं । शस्त्र चल रहे थे, अस्त्रों की चोटें हो रही थीं ।

खहंत खत्री । भिरंत अत्री ॥
वुठंत वाणं । खिवै कृपाणं ॥

क्षत्री (योद्धा, शूर-वीर) आपस में खह (भिड़) रहे थे । अस्त्रधारी भिड़ रहे थे, वाण बरस रहे थे, तलवारें चमक रही थीं ।

दोहा

लुत्थ जुत्थ वित्थुर रही, रावण राम विरुद्ध ॥
हत्यो महोदर देखकर, हर-अर फिर्यो सक्रुद्ध ॥

राम के विरोधी रावण की सेना में लाशों का ढेर लग गया और महोदर मन्त्री मारा गया । उसे मरा हुआ देखकर हर-अरि (इन्द्र-शत्रु) मेघनाद क्रोधित होकर लौट पड़ा ।

अथ इन्द्रजीत युद्ध कथनम्

सिरखंडी (श्रीखंड) छंद

जुट्टे वीर जुझारे धग्गाँ वज्जियाँ।
बज्जे नाद करारे दला मेसाहदा (?)॥
लुज्झे कारणयारे संघर सूरमे।
वुट्ठे जानु डरारे घनिअर कैवरी॥

इन्द्रजीत के युद्ध में जब डफें (एक प्रकार का बाजा) बजने लगीं, तब सभी वीर आपस में जूझ पड़े। जोर-जोर से धौंसे बजने लगे। दोनों ओर की सेनाएँ आपस में भिड़ गईं तथा युद्ध करनेवाले शूर-वीर युद्ध करने लगे। तीरों की वर्षा इस प्रकार होने लगी, मानो डरावने काले बादल बरसने लगे हों।

बज्जे संगलियाले हाठा जुट्टियाँ।
खेत वहे मुच्छाले कहर ततारचे॥
डिग्गे वीर जुफारे हुग्गाँ फुट्टियाँ।
बके जानु मतवाले भंगाँ पीइकै॥

बड़ी बड़ी साँकलोंवाले* धौंसे बजने लगे। दोनों ओर की सेनाएँ आपस में भिड़ गईं। कई शूर-वीर खेत रहे थे (अर्थात् मारे गये)। जब वीर पृथ्वी पर गिर रहे थे, तब (हुग्गाँ) हुंकार हो रहे थे। जो मुँह में आ रहा था, वही एक दूसरे को कह रहे थे। मानो सभी ने भाँग पी रखी हो और वे मतवाले हो रहे हों।

---

* बहुत बड़े बड़े धौंसे गाड़ियों पर चलते थे और सिक्कड़ों से बँधे रहते थे।

उरड़ये हंकारी धग्गाँ बाइ कै।
वाहि फिरैं तरवारी सूरे सूरियाँ॥
वग्गे रत्त झुलारी झाड़ी कैवरी।
पाई धूम लुझारी रावण राम की॥

हुंकार करते हुए, बड़े-बड़े धौंसें बजाते हुए शूर-वीर एक दूसरे पर तलवारें चला रहे थे। तीरों की चोट खाई हुई सेना के शरीर से झरनों की तरह रक्त (वग) वह रहा था। दोनों ओर के योद्धाओं ने अपने-अपने पक्ष (राम और रावण) की धूम मचा रखी थी।

दोहीं धौंस वजाई संघर मच्चियां।
वाहि फिरं वैराई तुरे ततारचे॥
हूराँ चित्त वधाई अम्बर पूरिया।
जोध्याँ देखन ताईं हूले होइयाँ॥

दोनों ओर के वीरों ने धौंसे बजाये तो एक दम से युद्ध छिड़ गया। बुड़-चढ़े सैनिकों ने वैरियों पर तीर चलाना आरम्भ कर दिया। अप्सराओं के हृदय में प्रसन्नता की बधाई हो रही थी। उन अप्सराओं से आकाश भर गया। वे सभी योद्धाओं को देखने के लिए इकट्ठी हो रही थीं।

पाधड़ी छन्द

इन्द्रारि वीर कुप्प्यो कराल। मुकतंत बाण गहि धनु विशाल।
थरकंत लूथ फरकंत वाह। जूझंत सूर अछरौ उछाह॥

उस समय इन्द्रारि मेघनाद ने भयंकर क्रोध करते हुए हाथ में धनुष लेकर तीर चलाने आरंभ कर दिये। लाशें तड़पने लगीं, शूर-वीर जूझने लगे और अप्सराओं को उत्साह होने लगा।

चमकंत चक्र सरकंत सेल। जुज्झे जटाल जनु गंग मेल॥
संघरे सूर अध्घाय घाय। बरषंत बाण चढ़ चोप चाय॥

चक्र चमकने लगे, सेल (भाले) चलने लगे। बड़ी बड़ी जटाओंवाले राक्षस ऐसे प्रतीत होते थे, मानो गंगा के तट पर साधुओं का मेला लगा हो। शूर-वीर उस युद्ध में बारम्बार घाव खा रहे थे। बाणों की वर्षा हो रही थी और वीरों को मानो एक प्रकार का चाव चढ़ रहा था।

सम्भले शूर आरुहे जंग। बरषंत बाण विषधर सुरंग ॥
नभ ह्वै अलोप सर बरष धार। सब ऊँच नीच कीने शुमार॥

शूर-वीर अपने आपको सँभालते हुए युद्ध में उलझ रहे थे। विषधर (जहरीले) बाणों की वर्षा हो रही थी। सारा आकाश उन छोटे-बड़े बाणों की गणना (बहुसंख्या) से ढक (भर) गया।

सब शस्त्र अस्त्र विद्या-प्रवीन। सरधार वर्ष सरदार चीन ॥
रघुराज आदि मोहे सुबीर। दल सहित भूमि डिग्गे अधीर ॥

योद्धा मेघनाद सभी विद्याओं में प्रवीण था। उसने मन्त्र आदि पढ़कर तीरों की इतनी वर्षा की कि रघुराज रामचन्द्र आदि भी मूर्च्छित-से हो गये और उनके दूसरे योद्धा दल सहित अधीर होकर भूमि पर गिर पड़े।

तब कही दूत रावणहिं जाय। कपि कटक आजु जीत्यो बनाय ॥
सिय भजो आजु ह्वै कै निचींत। संघरे राम रण इन्द्रजीत ॥

यह देखकर दूत ने रावण के पास जाकर कहा—आज सारी कपि-सेना जीत ली गई, इसलिए आप निश्चिन्त होकर सीता का उपभोग करें (रंग-रलियाँ मनावें); क्योंकि इन्द्रजीत ने राम को रण में पछाड़ दिया है।

तब कहे बैन त्रिजटी बुलाय। रण मृतक राम सीतहिं दिखाय ॥
लै गई नाथ जहँ गिरे खेत। मृग मारि सिंह ज्यों सुअ अचेत ॥

रावण ने उसी समय त्रिजटा (विभीषण की बहन, जो सीता की देख-भाल के लिए उसके पास रखी गई थी) को बुलाकर कहा—सीता को युद्ध में मरा हुआ राम दिखाओ। वह त्रिजटा सीता को वहाँ ले गई, जहाँ राम युद्ध-

क्षेत्र में गिरे हुए पड़े थे। राम इस तरह पड़े थे, मानो मृगों को मारकर शेर अचेत होकर सो रहा हो।

सिय निरख नाथ मन महिं रिसान। दस अउर चार विद्या-निधान॥
पढ़ नाग मन्त्र संघरी पाश। पति भ्रात जिवइ चित भा हुलास॥

सीता ने जब स्वामी को इस तरह पड़े हुए देखा, तब उसे बहुत क्रोध आया और चौदह विद्या-निधान (चतुर) सीता ने उसी समय नाग-मन्त्र पढ़कर वह नाग-पाश काट दिया और पति तथा उनके भाई लक्ष्मण को जीवित कर दिया। तब उसे बहुत आनन्द हुआ।

सिय गई जगे अँगराय राम। दल सहित भ्रात जुत धर्मधाम॥
बज्जे सुनाद गज्जे सुवीर। सज्जे हथ्यार भज्जे अधीर॥

यह कार्य करके ज्यों ही सीता वहाँ से हटी, त्यों ही राम भी अँगड़ाई लेकर भाई और दल-बल सहित उठ खड़े हुए। फिर बड़े-बड़े धौंसे बजने लगे और वीरगण ललकारने लगे। सभी ने अपने अपने शस्त्र सजा लिये। उधर रावण की ओर के कायर भागने लगे।

संभले सूर सर बरष जुद्ध। हन साल ताल विकराल क्रुद्ध॥
तजि जुद्ध सुद्ध सुर मेघ घण्ण। थल गयो निकुंभल होम कण्ण॥

राम की सेना के सभी शूर-वीर सँभलकर युद्ध में बाणों की वर्षा करने लगे। भयंकर क्रोध में भरकर तलवारों से सालने (मारने) लगे। यह देखकर मेघनाद को सुध आई और वह तुरन्त निकुम्भल (एक पर्वत की गुफा) नामक स्थान पर हवन करने के लिए चल पड़ा।

लघु वीर तीर लंकेश आन। इमि कहे बैन तज भ्रात कान॥
आई है शत्रू घात हाथ। इन्द्रारि वीर अरिवर प्रमाथ॥

इधर यह हुआ कि लंकेश रावण के छोटे भाई विभीषण ने राम आदि के पास जाकर (अपने भाई रावण की कुछ परवाह न करते हुए) कहा—यद्यपि

इन्द्रजित मेघनाद बलवान है, वीर है; परन्तु इस समय हमारे हाथ में शत्रु की घात आ गई है।

निज मास काटकर करत होम। थरहरइ भूमि अरु चकित व्योम॥
तँह गयो राम-भ्राता निशंक। कर धरे धनुष कटि कस्सि निषंग॥

उधर मेघनाद ने अपने शरीर से मांस काट-काटकर हवन करना आरम्भ किया। यह देखकर भूमि काँप उठी और आकाश चकित हो गया। तब वहाँ राम के भाई लक्ष्मण बिना किसी डर के जा पहुँचे। लक्ष्मण ने हाथों में धनुष ले रखा था और कमर पर तूणीर (तरकश) बाँध रखा था।

चिती सुचित्त देवी प्रचण्ड। अरु हन्यो बाण कीने दुखण्ड॥
रिपु फिरे मार दुंदुभि बजाइ। उत भजे दैत दलपति जुझाइ॥

मेघनाद के मन में देवी की प्रचण्ड मूर्ति थी (अर्थात् वह देवी के ध्यान में बैठा था)। उसी समय लक्ष्मण ने वहाँ पहुँचकर खींचकर ऐसा बाण मारा कि मेघनाद के दो टुकड़े हो गये। इस तरह शत्रु को मारकर दुंदुभी बजाई, जिसे सुनकर दलपति मेघनाद की सेना के दैत्य भाग निकले।

इति इन्द्रजीत वधाध्यायः

अथ अतिकाय दैत्य युद्ध कथनम्

संगीत पधिष्टका छंद

कागड़दंग कोप कै दईत राज । जागड़दंग जुद्ध को सज्यो साज ॥
वागड़दंग वीर बुल्ले अनन्त । रागड़दंग रोष रोहे दुरंत ॥

तब दैत्यराज रावण ने क्रुद्ध होकर युद्ध का साज और भी विकट रूप से सजाया और अनन्त शूर-वीरों को बुला लिया । वे सभी बहुत क्रोधी थे ।

पागड़दंग परम बाजी बुलंत । नागड़दंग चतुर नट ज्यों कुदंत ॥
कागड़दंग क्रूर कड्ढे हथ्यार । आगड़दंग आन बज्जे जुझार ॥

अच्छे-अच्छे सवार बुला लिये गये । वे सभी चतुर नट की भाँति कूदने-फाँदनेवाले थे । उनके पास बहुत भयंकर हथियार थे । वे एक दम से आकर रण में कूद पड़े ।

रागड़दंग राम सेना सक्रुद्ध । जागड़दंग ज्वान जूझंत जुद्ध ॥
नागड़दंग निशान नव सेन साज । मागड़दंग मूढ़ मकराक्ष गाज ॥

इधर राम की सेना भी क्रोध में भरकर आगे बढ़ी और सभी सैनिक युद्ध में जूझने लगे । नये-नये धौंसे बजने लगे । मूर्ख मकराक्ष नामक दैत्य फिर से गरजने लगा ।

आगड़दंग एक अतिकाय वीर । रागड़दंग रोष कीनो गहीर ॥
आगड़दंग एक हंके अनेक । सागड़दंग सिंध बेला विवेक ॥

अतिकाय नामक वीर गंभीर (भयंकर) क्रोध से गरजने लगा । उसके साथ के योद्धा भी अनेक प्रकार से हुंकार (ललकार) करने लगे ।

उस समय युद्ध-भूमि ऐसी प्रतीत हो रही थी, मानो समुद्र-बेला हो अर्थात् सागर में तूफान आ रहा हो।

तागड़दंग तीर छूटै अपार। बागड़दंग बुंद बन दल नुसार॥
आगड़दंग अरथ टीडी प्रमाण। चागड़दंग चार चींटी समान॥

अनेक तीर छूटने लगे। वे ऐसे प्रतीत हो रहे थे, मानो आकाश से बूँदें बरस रही हों। अरथ (रथ-विहीन या पैदल) सेना टिड्डी-दल की तरह प्रतीत हो रही थी; अथवा यों कह सकते हैं कि च्यूँटियों की फौज थी।

बागड़दंग बाहुड़े बड़े नेख। जागड़दंग जुद्ध अतिकाय देख॥
दागड़दंग देव जै जै करंत। भागड़दंग भूप धन धन भनंत॥

बहुत-से वीर बड़े-बड़े नेख (शस्त्र) चलानेवाले थे। वे सभी अतिकाय का युद्ध देखकर वीरता से भर रहे थे। ऊपर आकाश में देवता लोग राम का युद्ध देखकर जय-जयकार कर रहे थे और धन्य-धन्य कह रहे थे।

कागड़दंग कहक काली कराल। जागड़दंग जूह जुग्गन विशाल॥
भागड़दंग भूत भैरो अनन्त। सागड़दंग सोण पानं करंत॥

युद्ध में मानो विकराल काली स्वयं हँस रही थी और बहुत-सी योगिनियों के झुंड, अनेक भूत, भैरव आदि रक्त-पान कर रहे थे।

डागड़दंग डौर डाकिनि डहक। कागड़दंग क्रूर कागं कहक॥
चागड़दंग चतुर चावड़ि चिकार। भागड़दंग भूत डारत धमार॥

युद्ध में डाकिनियाँ प्रसन्न होकर डहक-डहक डमरू बजा रही थीं। बड़े बड़े भयंकर कौए, गिद्ध आदि प्रसन्न होकर कूक रहे थे। चारों ओर चुड़ैलें चीखें मारती हुई घूम रही थीं। भूत-प्रेत आदि आपस में धमार (होली की धमा-चौकड़ी) मचा रहे थे।

दोहा छंद

टुटे परे। नवे मुरे॥ असं धरे। रिसं भरे॥

सभी वीर एक दूसरे पर टूट पड़े। वे जरा भी पीछे नहीं मुड़े। उन्होंने तलवारें ले रखी थीं और वे क्रोध में भरे हुए थे।

भुटे सरं। चक्यो हरं ॥ रुकी दिशं। चपे किसं ॥

तीर इस तरह चल रहे थे कि उन्हें देखकर स्वयं शिव भी चकित हो रहे थे (अथवा बादल भी चकित हो रहे थे, क्योंकि उनसे भी कभी ऐसी झड़ी नहीं लगती)। सभी दिशाएँ रुक गई थीं। यह देख-कर (किस = कीश) वानर क्रोध में भर गये।

छुटे सरं। रिसं भरं ॥ गिरे भटं। जिमं अटं ॥

क्रोध में भरे हुए योद्धाओं के तीर भयंकर रूप से चल रहे थे। योद्धा धड़ाधड़ गिर रहे थे। उनके गिरने से पृथ्वी अँट (भर) गई (अर्थात् लाशों के ढेर लग गये)।

घुमे घयं। भरे भयं ॥ चपे चले। भटं भले ॥

घायल वीरों को इतना चक्कर आ रहा था कि भय वे से काँपकर गिरने लगे। अनेक योद्धा वीरतापूर्वक धनुषों का प्रयोग कर रहे थे।

रटे हरं। रिसं भरं ॥ रुपे रणं। घुमे व्रणं ॥

अनेक योद्धा 'हर हर' की पुकार कर रहे थे। वे क्रोध में मानो जल रहे थे और युद्ध में जूझ रहे थे। जिन्हें घाव लगे थे, वे इधर-उधर घूम रहे थे।

गिरै धरं। हुलै नरं ॥ सरं तछे। कछं कछे ॥

अनेक योद्धा पृथ्वी पर गिर रहे थे। एक का धक्का दूसरे को लग रहा था। सभी बाणों से बिंधे हुए तथा घायल थे।

घुमे व्रणं। भ्रमे रणं ॥ लजं फँसे। कटं कसे ॥

सभी योद्धा घायल होकर रण में घूम रहे थे। अनेक योद्धा साहस न होते हुए भी लज्जावश मर्यादा की रक्षा के लिए कमर कसकर तैयार हो रहे थे।

धुके धकं । टुके टकं ॥ छुटे सरं । रुके दिशं ॥

युद्ध में धक्का-मेल हो रही थी । टक-टक की ध्वनि से टुकड़े होते हुए दिखाई दे रहे थे । तीरों की बौछार इतनी हो रही थी कि सब दिशाएँ रुक गई थीं ।

छप्पय छन्द

इक्कै इक्क आरुहै इक्क इक्कन कहँ तक्कैं ।
इक इक लै चलैं इक्क कँढ इक्क उचक्कैं ॥
इक्क इक सर बरख, इक्क धनु करष रोष भर ।
इक्क इक तरफंत, इक्क भव-सिंधु गए तर ॥
इक सावंत भिड़ैं रणे, इक्क इक्क हुअ बिच्छड़ैं ।
नर इक्क, अनिक शस्त्रन भिड़ैं इक्क इक्क अवझड़ झड़ैं ॥

एक वीर दूसरे से उलझ रहा था । यदि एक वीर दूसरे की ओर ताक रहा था (क्रोध से देख रहा था) तो दूसरा योद्धा किसी दूसरे को खींचने में लगा हुआ था । कोई दूसरे को वहाँ से उठाकर ले जा रहा था । कुछ योद्धा बाणों की वर्षा कर रहे थे, तो कुछ क्रोध में भरकर धनुष चढ़ा रहे थे । कुछ युद्ध-भूमि में तड़प रहे थे और कुछ यह संसार-सागर पार कर चुके थे (मर चुके थे)। एक सामंत वीर दूसरे से भिड़ रहा था, तो एक दूसरे से बिछुड़ रहा था । एक एक वीर अनेक शस्त्रधारियों से भिड़ रहा था । कोई शूर-वीर अडिग होता हुआ भी झड़ रहा था (गिरकर मर रहा था) ।

इक्क जूझ भट गिरैं, इक्क बबकंत मद्ध रण ।
इक्क देवपुर बसैं, इक्क भजि चलत पाइ व्रण ॥
इक्क जुज्झ उज्झड़ैं इक्क बिझड़ैं झाड़ैं असि ।
इक्क अनिक व्रण झलैं इक्क मुकतंत बाण कसि ॥
रण भूम घूम सावँत मँडैं दीग्घ काय लछमन प्रबल ।
थिर रहे बृच्छ उपवन किधौं जनु उत्तर दिस द्वै अचल ॥

कुछ शूर-वीर जूझ-जूझकर गिर रहे थे, तो कुछ युद्ध-भूमि में एक दूसरे को ललकार रहे थे। कुछ वीर देवपुर (स्वर्ग) पहुँच गये और कुछ घाव खाकर भाग चले। कुछ जूझकर एक दूसरे को गिराने का यत्न कर रहे थे, तो कुछ तलवार की झाड़ (मार) से झड़कर गिर रहे थे। कुछ वीर शरीर पर अनेक घाव सहकर युद्ध कर रहे थे, तो कुछ वाणों की वर्षा कर रहे थे। कुछ रण-भूमि में घूम रहे थे। अतिकाय नामक दैत्य और वीर लक्ष्मण ने भी युद्ध मचा रखा था। दोनों वीरों को देखने से यह प्रतीत होता था कि किसी उपवन में दो अचल वृक्ष खड़े हों; अथवा उत्तर दिशा में दो अचल पहाड़ खड़े हों।

अजबा छन्द

जुट्टै वीरं। छुट्टै तीरं॥ ढुक्की ढालं। क्रोहे कालं॥

वीर आपस में जूझकर तीर चला रहे थे और एक दूसरे के तीर ढालों पर रोक रहे थे। सभी क्रोध में भरे हुए थे और काल-रूप प्रतीत हो रहे थे।

ढक्के ढोलं। बंके बोलं॥ कच्छे शस्त्रं। अच्छे अस्त्रं॥

ढक्के और ढोल बज रहे थे। सभी एक दूसरे को जोर से ललकार रहे थे। उन सबने तीखे शस्त्र और अच्छे अस्त्र ले रखे थे।

क्रोधं गालैं। बोधं दालैं॥ गज्जैं वीरं। तज्जैं तीरं॥

वे योद्धा क्रोध मानो पी रहे थे। उस समय उनकी बुद्धि और विवेक सब दब गया था (चूर या नष्ट हो गया था)। उन्हें एक ही लक्ष्य दिखाई था और वह था युद्ध; इसी लिए वे बार-बार गरज रहे थे और वाणों की वर्षा दे रहा कर रहे थे।

रत्ते नैनं। मत्ते बैनं॥ लुज्झे सूरं। सुज्झे हूरं॥

सभी शूर-वीरों की आँखें रक्त की तरह लाल हो रही थीं। उनके शब्द मदमत्तों की तरह निकल रहे थे। इधर शूर-वीर लड़ रहे थे, उधर ऊपर आकाश में हूरें (अप्सराएँ) देख रही थीं।

लग्गै तीरं। भग्गै वीरं॥ रोषं रुज्झै। शस्त्रं जुज्झै॥

तीर लगने से कुछ योद्धा भाग रहे थे और कुछ क्रोध में भरकर शस्त्र लेकर जूझ रहे थे।

झुम्मै सूरं। घुम्मै हूरं॥ चक्कै चारं। वक्कै मारं॥

सभी शूर-वीर झूम रहे थे और अप्सराएँ उनको वरण करने के लिए आकाश में घूम रही थीं। वे सभी वीर शत्रुओं को ढूँढने के लिए चारों ओर देख रहे थे और 'मारो मारो' की ध्वनि कर रहे थे।

भिद्दे वर्मं। छिद्दे चर्मं॥ टुट्टे खग्गं। उट्टे अग्गं॥

कवच भिद रहे थे और उनके अन्दर से शरीर छिद रहे थे। तलवारें एक दूसरी पर पड़ने के कारण टूट रही थीं और उनके संघर्ष से आग निकल रही थी।

नच्चे ताजी। गज्जे गाजी॥ डिग्गे वीरं। तज्जे तीरं॥

घोड़े नाच रहे थे (उछल-कूद मचा रहे थे), हाथी चिंघाड़ रहे थे, वीर गिर रहे थे और तीर छूट रहे थे।

झुम्मे सूरं। घुम्मे हूरं॥ कच्छे वाणं। मत्ते माणं॥

शूर-वीर झूम रहे थे और उनके वरण के लिए अप्सराएँ घूम रही थीं। वे सभी मदमत्त होकर तीखे वाण चला रहे थे।

पाधरी छंद

तहँ भयो घोर आहव अपार। रण-भूमि झूमि जूझे अपार॥
इत राम-भ्रात अतिकाय उत्त। रिस झुज्झ उज्झरे राजपुत्त॥

उस समय वहुत भयंकर रूप में युद्ध होने लगा। रणभूमि में योद्धा जूझने लगे। एक ओर राम के भाई लक्ष्मण थे, तो दूसरी ओर अतिकाय दैत्य। दोनों राजपुत्र थे, दोनों जूझकर एक दूसरे को गिराने का प्रयत्न कर रहे थे।

तब राम-भ्रात अति कीन्ह क्रोध । जिमि परै अग्नि घृत करत जोध ॥
गहि वाण पाणि तज्जे अनन्त । जिमि जेठ सूर किरणै दुरंत ॥

तब राम के भाई लक्ष्मण ने बहुत रोष किया, मानो आग में घी पड़ गया हो । उन्होंने हाथों में इतने अधिक वाण लेकर चलाये, मानो जेठ का सूरज अपनी असंख्य तीखी किरणों से चमक रहा हो अथवा किरणें फेंक रहा हो ।

व्रण आप मध्य वाहत अनेक । वरनै न जाहिं करि एक एक ॥
उज्झरे वीर जुज्झन जुझार । जय शब्द देव भाखत पुकार ॥

दोनों एक दूसरे को घायल करने का प्रयत्न कर रहे थे । उनके शरीर के घावों का अलग-अलग वर्णन करना कठिन है । सभी वीर आपस में जूझकर एक दूसरे को गिराने का यत्न कर रहे थे । कई वीर आपस में भिड़ रहे थे । यह देखकर आकाश में देवता जय-जयकार कर रहे थे ।

रिपु कर्‍यो शस्त्र अस्त्रं विहीन । वहु शस्त्र शास्त्र विद्या-प्रवीन ॥
हय,मुकुट,सूत, विनु भयो गँवार । कछु चपे चोर जिमि वल सँभार ॥

तब अस्त्र-शस्त्र-विद्या में प्रवीण लक्ष्मण ने अपने शत्रु को अस्त्र-शस्त्रों से रहित कर दिया । वह दुरात्मा गँवार अतिकाय दैत्य, घोड़े, मुकुट तथा अपने सारथी से रहित हो गया । उसके कुछ साथी अपने आपको सँभालते हुए चोरों की तरह कहीं दव (छिप) गये ।

रिपु हने बाण जिमि वज्र घात । सम चले काल की ज्वाल तात ॥
तब कुप्यो वीर अतिकाय ऐस । जनु प्रलय काल को मेघ जैस ॥

तब लक्ष्मण ने वज्र के समान वाणों से शत्रु पर प्रहार किया । वे वाण कालानल (काल की ज्वाला) की तरह चल रहे थे और शरीर जला रहे थे । इससे अतिकाय दैत्य भी भड़क उठा और इस प्रकार क्रोधित हुआ, मानो प्रलय-काल का बादल हो ।

इमि करन लाग लपटैं लवार । जिमि जुवन हीन लपटाय नार ॥
जिमि दंत रहित गहि श्वान ससक । जिमि गए वैस वल वीर्ज रसिक॥

अतिकाय क्रोध में भरकर व्यर्थ इस प्रकार भड़कने लगा, जैसे यौवन-रहित मनुष्य अथवा बुड्ढा नारी से लिपट रहा हो; या दाँतों से रहित कोई कुत्ता शशक (खरगोश) को पकड़ना चाहता हो; या कोई बल-वीर्य-रहित मनुष्य आयु व्यतीत हो जाने पर रसिकता की बातें करना चाहता हो।

जिमि द्रव्य हीन कछु करि बिपार। जनु शस्त्र-हीन रुज्झयो जुझार ॥
जिमि रूप-हीन वेश्या प्रभाव। जनु बाजि-हीन रथ को चलाव ॥

जैसे कोई द्रव्य-रहित मनुष्य व्यापार करना चाहता हो अथवा कोई शस्त्र-रहित योद्धा युद्ध में जूझना चाहता हो। जैसे रूप-हीना वेश्या का कुछ प्रभाव नहीं पड़ता, और जैसे घोड़ों के बिना रथ चलाना सम्भव नहीं, उसी प्रकार लक्ष्मण के प्रति अतिकाय दैत्य का क्रोधित होना व्यर्थ था।

तब तमक तेग लछमन उदार। तेहि हन्यो सीस कीनो दुफार ॥
तब गिरयो बीर अतिकाय एक। लख ताहि सूर भज्जे अनेक ॥

अतिकाय दानव के इस प्रकार क्रोधित होने पर, लक्ष्मण ने अपनी तलवार चमकाते हुए उसे आहत किया, और उसके सिर के दो टुकड़े कर दिये। तब अतिकाय एक दम से गिर पड़ा। यह देखकर उसके अनेक शूर-वीर भाग निकले।

इति अतिकाय दैत्य वधाध्यायः

अथ मकराक्ष युद्ध कथनम्

पाधरी छन्द

तब रुप्यो सैन मकराछ आन । कँह जाहु राम, नहिं पैहो जान ॥
जिन हत्यो तात रण मों अखंड । सो लरौ आन मोसों प्रचंड ॥

अतिकाय के मरने पर मकराक्ष दैत्य युद्ध के लिए आया । रण भूमि में आते ही उसने सारी सेना को भगा दिया और अपनी भागती हुई सेना को रोका तथा सामने खड़े होकर राम से कहा—हे राम, तुम्हें यहाँ से जाने नहीं दिया जायगा । जिस व्यक्ति ने मेरे तात (अतिकाय) को मारा है, जिसने इस अखंड युद्ध में तात के प्राणों का संहार किया है, वह मेरे सामने आकर प्रचंड युद्ध करे ।

इमि सुनि कुबैन रामावतार । गहि शस्त्र अस्त्र कोप्यो अपार ॥
बहु तान बाण तिह हने अंग । मकराछ मारि डार्यो निसंग ॥

श्री राम ने यह कुवचन सुनकर अस्त्र-शस्त्र लेकर क्रोधित होकर युद्ध करना आरंभ किया; और बहुत से बाण तान-तानकर चलाने आरंभ किये और उसके अंग अंग काट दिये । इस प्रकार निश्शंक होकर उसे मार गिराया ।

तब हते वीर अरु हनी सैन । तब भजे सूरद्धै कर निचैन ॥
तब कुम्भ और अनकुम्भ आन । दल रुक्यो राम को त्याग कान ॥

मकराक्ष के मारे जाने पर और भी कई वीर मारे गये और बहुत-सी सेना भी मार गिराई गई । तब कुंभ और निकुंभ नामक दैत्य श्री राम की मर्यादा का तनिक भी ध्यान न करते हुए युद्ध के लिए आ कूदे और उन्होंने अपनी भागती हुई सेना को रोक लिया ।

अजबा छंद

त्रप्पे ताजी । गज्जे गाजी । सज्जे शस्त्रं । कच्छे अस्त्रं ।

घोड़े कूदने लगे, हाथी चिंघाड़ने लगे और वीर अस्त्र-शस्त्रों से सज गये ।

टुट्टे त्राणं । छुट्टे बाणं । रुप्पे वीरं । बुट्ठे तीरं ॥

युद्ध होने पर शस्त्रों की मार से कवच टूट गये, बाण छूटने लगे, वीरों ने पाँव रोप दिये (अर्थात् पाँव जमा दिये) और वे तीरों की वर्षा करने लगे ।

घुम्मे घायं । जुम्मे चायं । रज्जे रोषं । तज्जे होशं ॥

घाव लगने से कई वीर चक्कर खा गये और कई रण के चाव से इधर-उधर घूमने लगे । कई इतने क्रोध में भरे हुए थे कि होश भी भुला बैठे थे ।

कज्जे संजं । पूरे पंजं । जुज्झे खेतं । डिग्गे चेतं ॥

कई वीरों ने कवच आदि के द्वारा अपने शरीर अच्छी तरह ढके हुए थे और अपने हाथों में पंजे (एक प्रकार का शस्त्र) पहन रक्खे थे । वे सभी उस रण-क्षेत्र में जूझ-जूझकर अचेत होकर गिर रहे थे ।

घेरी लंकं । वीरं वंकं । भज्जी सैनं । लज्जी नैनं ॥

तब श्रीराम की सेना ने सारी लंका घेर ली और उनकी सेना के सभी वीर ललकारने लगे । राक्षसों की सारी सेना भाग निकली । सचमुच उन वीरों को रण में रहते लज्जा आ रही थी ।

डिग्गे सूरं । भिग्गे नूरं । ब्याहे हूरं । कामं पूरं ॥

कई शूर-वीर गिर पड़े । उनके चेहरे नूर (एक प्रकार के तेज) से दीप्त हो रहे थे अथवा नूर (रक्त) से भींगे हुए थे । इस प्रकार की वीरता से मस्त होकर अप्सराएँ उनका वरण करने लगीं । सचमुच उन अप्सराओं की कामना पूरी हो गई ।

अथ रावण-युद्ध कथनम्

दोहा छंद

सुन्यो इसं । जिन्यो किसं ॥ चप्यो चितं । बुल्यो वितं ॥

जब दानव-राज रावण ने वानरों की जीत सुनी, तब उसका हृदय एक दम से बैठ गया और वह सारा बल लगाकर कहने लगा—

घिर्‍यो गढ़ं । रिसं बढ़ं ॥ भजी त्रियं । भ्रमी भयं ॥

आज लंका घिर गई है, क्रोध बढ़ रहा है, सभी स्त्रियाँ भय तथा भ्रम से भाग-दौड़ रही हैं।

भ्रमी तबै । भजी सबै ॥ त्रियं इसं । गह्यो किसं ॥

सभी स्त्रियाँ भ्रम के कारण भाग रही हैं और स्त्रियों की ईश-रूप मंदोदरी को वानरों ने पकड़ लिया है।

करै हहं । अहो दयं ॥ करो गई । छमो भई ॥

मन्दोदरी 'हाय हाय' कर रही है और कह रही है—अरे दया करो, दया करो। अब जाने दो, क्षमा करो। (इसलिए अब हमें उठ खड़े होना चाहिए और युद्ध की पूरी तैयारी करनी चाहिए।)

सुनी श्रुतं । धुनं उतं ॥ उठ्यो हठी । जिमं भठी ॥

इधर मंदोदरी की 'हाय हाय' की वह आर्त ध्वनि जब रावण ने स्वयं सुनी, तब वह हठी इस प्रकार क्रोध में भर उठा, जैसे भट्ठी में आग का भभूका होता है।

कछ्यो नरं । तजे सरं ॥ हने किसं । रुकी दिसं ॥

तब सभी वीर तैयार हो गये और बाण छोड़ने लगे। कई वानरों को मार डाला गया और सारी दिशाएँ रुक गईं।

त्रिणनन छन्द*

त्रिणनन तीरं। व्रिणनन वीरं॥
ढणनन ढालं। ज्रणनन ज्वालं॥

तीर चल रहे थे, शूर-वीर बोल या गरज रहे थे, ढालें खड़खड़ा रही थीं, और उनके संघर्ष से ज्वालाएँ प्रकट हो रही थीं।

खणनन खोलं। ब्रणनन बोलं॥
रणनन रोषं। ज्रणनन जोशं॥

(सिर पर चोट पड़ने से) खोल या खोद खनक रहे थे, शूर-वीरों का क्रोध बढ़ रहा था, उनमें जोश भर रहा था।

व्रणनन वाजी। त्रणनन ताजी॥
ज्रणनन जूझै। लूणनन लूझै॥

घोड़े उछल रहे थे। ताजी (घोड़े) तड़प रहे थे। शूर-वीर जूझ रहे थे, सब आपस में उलझ रहे थे।

हरणन हाथी। स्रणनन साथी॥
भरणन भाजे। लरणन लाजे॥

हाथी भाग रहे थे, उन पर चढ़े हुए साथी गिर रहे थे। कुछ लोग भाग रहे थे, कुछ लज्जित हो रहे थे।

चरणन चर्मं। वरणन वर्मं॥
करणन काटे। वरणन बाटे॥

ढालें कट रही थीं और कवच छिद रहे थे।

---

* इसमें किसी शब्द के आरम्भिक अक्षर के अनुकरण पर उसकी क्रिया के कुछ अनुकरणवाची शब्द बनाकर पहले रखे जाते हैं।

मरणन मारे । तरणन तारे ॥
जरणन जीता । सरणन सीता ॥

श्री राम ने वैरियों को मारा और कितनों को तारा (मोक्ष प्रदान किया), सीता जिसकी शरण में है, ऐसे श्री राम ने युद्ध जीत लिया ।

गरणन गैनं । अरणन ऐनं ॥
हरणन हूरं । परणन पूरं ॥

जिनका घर आकाश में है, ऐसी हूरों (अप्सराओं) से आकाश भर गया ।

वरणन वाजे । गरणन गाजे ॥
सरणन सूझे । जरणन जूझे ॥

वाजे बज रहे थे, हाथी चिंघाड़ते थे, शूर-वीर अच्छी तरह देख-देखकर एक दूसरे को मार रहे थे और आपस में जूझ रहे थे ।

त्रिगता छन्द*

तत्ततीरं । बब्बब्बीरं ॥ ढढ्ढालं । जज्जज्वालं ॥

वीर लोग जब तीर छोड़ते थे, तब ढालों से आग निकलती थी ।

तत्तत्ताजी । गग्गग्गाजी ॥ मम्मम्मारे । तत्तत्तारे ॥

ताजी घोड़े कूदते थे, हाथी चिंघाड़ते थे । श्री राम ने बहुतों को मारकर तारा (मुक्ति दी) ।

जज्जज्जीते । लल्लल्लीते ॥ तत्तत्तोरे । छच्छच्छोरे ॥

कई वीरों को जीता गया, कइयों को ले लिया (मार डाला) गया । कवच तोड़ दिये और हथियार छीन लिये ।

रर्रराजं । गग्गग्गाजं ॥ धद्धद्धायं । चच्चच्चायं ॥

रावण की सेना के सवार गरजते हुए चाव में भरकर आक्रमण करने लगे ।

---

* इसमें शब्द के आरम्भिक अक्षर की तीन तीन बार आवृत्ति होती है ।

डड्डुडिग्गे । भभ्भभिग्गे ॥ शश्शशोणं । तत्तत्तोणं ॥

रक्त में भरे हुए सभी वीर गिरने लगे ।

सस्सस्साधैं । बव्बवाधैं ॥ अअअ अंगं । जज्जज्जंगं ॥

रण-भूमि में एक दूसरे पर निशाना साधकर अंग-प्रत्यंग काटने लगे ।

कक्कक्कोधं । जज्जज्जोधं ॥ घघ्घघ्घाये । धध्धध्धाये ॥

रण में योद्धा क्रोधित हो-होकर दौड़-दौड़कर शत्रुओं को मारने लगे ।

हःहःहूरं । पप्पप्पूरं ॥ गग्गग्गैनं । अ अ अयनं ॥

उस समय सारा आकाश अप्सराओं से भर गया ।

बब्बब्बाणं । तत्तत्तानं ॥ छच्छच्छोरं । जज्जज्जोरं ॥

सभी वीर तान तानकर और जोर लगा लगाकर एक दूसरे को मारने के लिए बाण छोड़ रहे थे ।

बब्बब्बाजे । गग्गग्गाजे ॥ भभ्भभ्भूमं । झज्झज्झूमं ॥

जिन्हें तीर लग रहे थे, वे पुकार पुकारकर 'हाय हाय' मचाते हुए झूम झूमकर पृथ्वी पर गिर रहे थे ।

अनाद छन्द

चल्ले बाण रुक्के गैन । मत्ते सूर रत्ते नैन ॥
ढक्के ढोल ढुक्की ढाल । छुट्टे बाण उट्ठी ज्वाल ॥

बाणों के चलने से आकाश भर गया था । शूर-वीर लोग मत्त हो रहे थे । उनकी आँखें लाल हो रही थीं । ढोल बज रहे थे, ढालें एक दूसरी के प्रहार रोक रही थीं जिससे आग की ज्वाला उत्पन्न होती थी ।

भिग्गे शोण डिग्गे सूर । झुम्मे भूमि घुम्मी हूर ॥
बज्जे शंख सद्दं गद्द । तालं शंख भेरी नद्द ॥

रक्त में नहाये हुए वीर गिर रहे थे, आकाश में अप्सराएँ घूम रही थीं। शंखों का गम्भीर शब्द हो रहा था। तालों, शंखों और भेरियों का नाद हो रहा था।

टुट्टे त्राण फुट्टे अंग। जुज्झे वीर रुज्झे जंग।
मच्चे सूर नच्ची हूर। मत्तीं घुम्म भुम्मी पूर॥

कवच टूट रहे थे, अंग फुट रहे थे। वीर एक दूसरे के साथ रण-भूमि में जूझ रहे थे। सभी मानो क्रोध में जल रहे थे। हूरें (अप्सराएँ) नृत्य कर रही थीं। सारी पृथ्वी पर एक प्रकार की मस्ती छाई थी।

उट्ठे अद्ध वद्धं बद्ध। पक्खर राग खोलं नद्ध॥
छक्के छोभ छुट्टे केस। संधे सूर सिंहं भेस॥

आधे कटे हुए धड़ उठ रहे थे, उनके शरीरों और सिरों पर कवच थे। कई वीर क्रोध में भरे थे, उनके केश खुले थे। ऐसा प्रतीत होता था मानो शेर लड़ रहे हों।

टुट्टे टीक, टुट्टे टोप। भग्गे भूप भग्गी घोप॥
घुम्मे घाय, झुम्मी भूम। उज्झे झाड़ धूमं धूम॥

कई वीरों के सिर टूट रहे थे और कइयों की रीढ़ की हड्डियाँ टूट रही थीं। कई वीर राजा अपनी घोपों (संगीनों अथवा तलवारों) के टूट जाने के कारण भाग रहे थे। कई वीर झूम झूमकर गिर रहे थे। भयानक झाड़-झंखाड़ के अंधकार की तरह रण-भूमि में धूआँ ही धूआँ छा रहा था।

वज्जे नाद वादं अपार। सज्जे सूर वीरं जुझार॥
जुज्झे टूक टूक हु खेत। मत्ते मद्द जानो अचेत॥

बहुत-से बाजों का नाद हो रहा था। शूर-वीर अस्त्र-शस्त्रों से सजे हुए रण में जूझ रहे थे। कई वीर टुकड़े-टुकड़े हो गये थे, मानो मद (नशा या शराब) पीकर बेसुध हो गये हों।

छुट्टे शस्त्र अस्त्रं अनन्त। रंगे रंग भूमं दुरंत ॥
खुल्ले अंध-धुंधं हथ्यार। बक्के शूर-वीरं चिक्कार ॥

रण में अनन्त शस्त्र-अस्त्र चल रहे थे। सारी भूमि रक्त से रँगी हुई थी। शस्त्रों का अन्धाधुन्ध प्रयोग हो रहा था। विकराल रूप धारण किये हुए शूर-वीर एक दूसरे को ललकार रहे थे।

विक्खी लूथ जूथं अनेक। मच्चे कोटि भग्गे अनेक ॥
हस्से भूत प्रेतं मसान। लुज्झे जुज्झ रुज्झे कृपान ॥

रण में लाशों के ढेर लगे थे। करोड़ों शूर-वीर क्रोध की आग में जल रहे थे और अनेक भागते हुए दिखाई देते थे। कई इतना भयंकर अट्टहास करते थे, मानो श्मशान में भूत-प्रेत हँस रहे हों। कई वीर कृपाण लेकर लड़ रहे थे।

वहड़ छन्द

अधिक रोष कर राज पखरिया धावहिं।
राम राम बिनु संक पुकारत आवहिं ॥
रुज्झ जुज्झ झड़ पड़त भयानक भूम पर।
रामचन्द्र के हाथ गये भव-सिंधु तर ॥

रावण की सेना के राजा, जो घोड़ों पर सवार थे, निडर होकर 'राम राम' का शोर मचाते हुए दौड़े आते थे और उस भयानक युद्ध में जूझ पड़ते थे तथा मरकर पृथ्वी पर गिर जाते थे। वे सचमुच श्री राम के हाथों से संसार-रूपी सागर पार कर जाते थे।

सिमटि साँग संग्रहैं सामुँह ह्वै जूझहिं।
टूक टूक ह्वै गिरत न घर कहुँ बूझहिं ॥
खण्ड खण्ड ह्वै गिरत खण्ड घन खण्ड रन।
तनिक तनिक लग जाहिं असिन की धार तन ॥

सभी वीर इकट्ठे होकर बरछे लिये हुए एक दूसरे के सामने आकर जूझते

थे। कई टुकड़े टुकड़े होकर गिर जाते थे, पर घर लौटने का ध्यान भी न करते थे। जिस प्रकार मनुष्य टुकड़े टुकड़े होकर गिरते थे, उसी प्रकार धनुष भी टुकड़े टुकड़े होकर गिर रहे थे। जिनके शरीर में तलवार की ज़रा-सी धार भी छू जाती थी, उनकी यही दशा होती थी।

संगीत वहड़ छंद*

सागड़दी साँग संग्रहैं, रागड़दी रण तुरी नचावहिं।
झागड़दी झूम गिर भूमि, सागड़दी सुरपुरहि सिधावहिं॥
अंगड़दी अंग ह्वै भंग, आगड़दी आहव महि डिग्गहिं।
वागड़दी वीर विकरार हो, सागड़दी सोणत तन भिग्गहिं॥

वीर लोग हाथों में तलवारें लेकर युद्ध में तुरी (तुरग=घोड़े) नचाते फिरते थे। कई वीर घाव के कारण चक्कर खाते हुए झूमकर पृथ्वी पर गिरते थे और स्वर्ग सिधार जाते थे। कइयों के अंग कट रहे थे और वे युद्ध-भूमि में गिर रहे थे। कई वीर विकराल रूप धारण किये हुए, रक्त में स्नान किये हुए-से दिखाई देते थे।

रागड़दी रोष रिपु-राज, लागड़दी लछमन पै धायो।
कागड़दी क्रोध तन कुढ्यो, पागड़दी पवन ह्वै सिधायो॥
आगड़दी अनुज उर तात, गागड़दी गहि धाइ प्रहार्‍यो।
झागड़दी झूम झूम गिर्‍यो, सागड़दी सुत बैर उतार्‍यो॥

उस समय रिपुराज रावण लक्ष्मण की ओर दौड़ा। शरीर में क्रोध व्याप्त होने पर वह वायु की गति से लक्ष्मण की ओर झपटा और उसने राम के अनुज (लक्ष्मण) पर शक्ति से प्रहार किया। लक्ष्मण पृथ्वी पर गिर पड़े। इस प्रकार रावण ने अपने पुत्र के मारे जाने का बैर (बदला) चुकाया।

---

* यह भी वहड़ छंद है, पर इसमें के सागड़दी, कागड़दी आदि शब्दों का कोई अर्थ नहीं। संगीत या स्वर-ताल के लिए ही इनका प्रयोग हुआ है।

चागड़दी चिंक चाँवड़ी, डागड़दी डाकिनी डकारी।
भागड़दी भूत भरहरे, रागड़दी रण रोष प्रचारी॥
मागड़दी मूर्च्छा भयो, लागड़दी लछमन रण जूझ्यो।
जागड़दी जान जूझि गयो, रागड़दी रघुपत इमि बूझ्यो॥

उस समय रण-भूमि में चुड़ैलें चीख रही थीं और डाकिनियाँ डकार रही थीं। रावण भी मानो क्रोध में जल रहा था। शस्त्रों के घाव के कारण युद्ध करते हुए लक्ष्मण मूर्च्छित होकर गिर पड़े। तब राम ने पूछा—क्या लक्ष्मण समाप्त हो गये?

इति लक्ष्मण मूर्च्छाध्यायः।

संगीत बहड़ छंद

कागड़दी कटक कपि भज्यो, लागड़दी लछमन गिस्यो जब।
रागड़दी राम रिस भस्यो, गागड़दी गहि अस्त्र शस्त्र सब॥
घागड़दी घड़ल घड़हड्यो, कागड़दी कोडंभ कड़क्यो।
भागड़दी भूमि भड़हड़ी, पागड़दी प्रलय जनु पलस्यो॥

ज्योंही लक्ष्मण गिरे, त्योंही सारी वानर-सेना भागी। तब श्री राम रोष में भर गये और अस्त्र-शस्त्र लेकर सावधान हुए। राम का कोप देखकर घड़ल (पृथ्वी को अपने सींगों पर उठानेवाला बैल) भी काँप उठा, और पृथ्वी को धारण करनेवाले कच्छप की पीठ भी कड़कड़ा गई—सारी पृथ्वी हिल गई; मानो फिर प्रलय आने का समय हुआ।

अर्द्ध नराच छंद

कढ़ी सु तेग दुद्धरं। अनूप रूप सुब्भरं॥
भकार भेरि भैकरं। वकार वंदनो वरं॥

रावण ने भी अत्यन्त शोभा-युक्त दुधारी तलवार निकाल ली। भयंकर भेरियाँ बजने लगीं और रावण के बंदीजन उसकी स्तुति करने लगे।

विचित्र चित्रितं शरं। तजंत तीखनो नरं॥
परंत जूझतं भटं। जनो कि सावनं घटं॥

इधर श्री राम ने भी विचित्र-विचित्र अर्थात् अनेक प्रकार के तीखे तीर निकालकर रावण की सेना पर छोड़ना आरम्भ किया। सभी शूर-वीर ऐसे प्रतीत हो रहे थे, मानो सावन की घटाएँ हों।

घुमंत अघ उघ्घयं। वदंत वक्त्र ते जयं॥
चलंत त्यागतो तनं। भणंत देवता धनं॥

उस समय चारों ओर पाप-रूप राक्षस भरे थे। वे सभी रावण की सेना का जय-जयकार और जय-घोष करते थे। परन्तु राम के तीर खा-खाकर वे शरीर त्यागकर चल बसते थे। उस समय देवता 'धन्य धन्य' कहकर आनन्द मनाते थे।

छुटंत तीर तीखनं। बजंत भेरि भीषणं॥
उठंत गद्द सद्दनं। ममत्त जान मद्दनं॥

तीखे तीर चल रहे थे, भयंकर रण-भेरियों की ध्वनि सुनाई दे रही थी, गम्भीर शब्द हो रहा था, मानो सभी मद्य पीकर मस्त हो रहे हों।

करंत चाचरो चरं। नचंत नर्त्तनो हरं॥
पुअंत पार्वती सिरं। हसंत प्रेतनी फिरं॥

रण में भट लोग यशोगान करते थे। उस रण-भूमि में मानो शिवजी तांडव नृत्य कर रहे थे। पार्वती रुंडों (कटे हुए सिरों) की माला पिरोने में लगी थीं और प्रेतगण हँसते हुए घूम रहे थे।

डकंत डाकनी डुलं। भ्रमंत बाजि कुण्डलं॥
रटंत बन्दिनो कृतं। वदन्त मागधो जयं॥

रण में डाकिनियाँ डकारती हुई घूम रही थीं। घोड़े कुण्डल (गोलाकार घेरे) में दौड़ रहे थे। बन्दीजन उस कविता का पाठ करते थे जो अपने-अपने पक्ष की प्रशंसा में लिखी गई थी। भाट लोग जय-जयकार करते फिरते थे।

ढलंत ढाल उढ्ढलं। खिमंत तेग निर्मलं॥
चलंत राज-वंशरं । पपात उर्वियं नरं॥

ढालें एक दूसरी के संघर्षण से ध्वनि कर रही थीं। तलवारें निर्मल होने के कारण चमकती थीं। राजवंश के योद्धा इधर-उधर घूम रहे थे और बहुत-से लोग पृथ्वी पर गिर रहे थे।

भजंत आसुरी-सुतं । किलंत वानरी-पुतं॥
बजंत तीर तूपकं। उठंत दारुणो सुरं॥

राक्षसी-पुत्र भागते हुए दिखाई देते थे और वानरी-सुत किलकारियाँ मार रहे थे। तीरों और तुपकों (तोपों या बन्दूकों) के भयंकर शब्द हो रहे थे।

भभक्क भूत भैकरं। चचक्क चौदहो चक्रं॥
ततख्ख पख्खनो तुरे। वजे निनद्द सिंधुरे॥

भयानक भूत बोल रहे थे और चौदहो भुवन मानो घूम रहे थे। जड़ाऊ फूलोंवाले घोड़े चल रहे थे और हाथियों की चिंघाड़ें हो रही थीं।

उठंत भैकरी सुरं। मचंत जोधनो जुधं॥
खिमंत उज्जली असं। ववर्ष तीखनो शरं॥

रण का भयंकर शब्द हो रहा था और योद्धा लोग शोर मचा रहे थे। उजली चमकीली तलवारें चमक रही थीं और तीखे तीर चल रहे थे।

संगीत भुजंग-प्रयात छंद*

जागड़दंग जूझ्यो, भागड़दंग भ्रातं।
रागड़दंग रामं, तागड़दंग तातं॥
वागड़दंग बाणं, छागड़दंग छोरे।
आगड़दंग आकाश तें जान ओरे॥

---

* संगीत बहड़ की तरह इसमें भी जागड़दंग, भागड़दंग आदि शब्द केवल वीर-भाव लाने के लिए रखे गये हैं।

इधर जब राम के छोटे भाई लक्ष्मण मूर्च्छित हो गये, तब श्री राम ने भी क्रोध में भरकर इस तरह तीर छोड़े, मानो आकाश से ओले गिरते हों।

बागड़दंग बाजी रथी बाण काटे।
गागड़दंग गाजी गजी बीर डाटे॥
मागड़दंग मारे सागड़दंग सूरं।
बागड़दंग ब्याहैं हागड़दंग हूरं॥

श्री राम के बाणों ने रथ के घोड़ों और सारथियों को काट गिराया तथा बड़े बड़े हाथियोंवाले हथवानों को भी भयातुर कर दिया। अनेक शूर-वीर मार गिराये। उनके मरने पर अप्सराओं ने उनका वरण किया।

जागड़दंग जीता, खागड़दंग खेतं।
भागड़दंग भागे, कागड़दंग केतं॥
सागड़दंग सूरानुजं आन पेखा।
पागड़दंग प्राणान तैं प्राण लेखा॥

इस प्रकार श्रीराम जी ने युद्ध-क्षेत्र जीत लिया। सभी कायर भाग निकले। उन सब को भगाकर श्री राम ने अपने शूर-वीर भाई को—जो प्राणों से भी प्रिय थे—आकर देखा।

चागड़दंग चिंतं, पागड़दंग प्राजै।
सागड़दंग सेना, लागड़दंग लाजै॥
सागड़दंग सुग्रीव तैं आदि लै कै।
कागड़दंग कोपे, तागड़दंग तै कै॥

अब श्री राम को युद्ध में पराजय की चिंता सताने लगी। सारी सेना लज्जित हो गई और सुग्रीव आदि सभी वीर क्रोध में भरकर एक दूसरे को देखने लगे।

हागड़दंग हनुअ कागड़दंग कोपा।
बागड़दंग बीरान मों पाँव रोपा॥

सागड़दंग सूरा हागड़दंग हारे।
तागड़दंग तै के हनु तऊ पुकारे॥

तब हनुमान ने क्रोधित होकर वीरों में अपना पाँव रोप दिया (यह प्रसंग उस समय का है, जब श्री राम ने सुखेन वैद्य को बुलाया था और उसने आकर संजीवनी बूटी लाने के लिए कहा था। तब हनुमान ने सबसे पूछा कि कौन वीर वह बूटी ला सकता है?) परन्तु जब सभी वीर चुप रहे, तब हनुमान ने क्रोध में भरकर उनकी ओर देखते हुए कहा—

सागड़दंग सुनहू रागड़दंग रामं।
दागड़दंग दीजै पागड़दंग पानं॥
पागड़दंग पीठं ठागड़दंग ठोको।
हराँ आज पानं सुरं मोहे लोको॥

हे राम, सुनिए, आप मुझे पयान (प्रयाण) की आज्ञा दीजिए और मेरी पीठ ठोंकिए (अर्थात् मेरी पीठ पर अपना शुभ हाथ रखिए)। मैं आज देवताओं का पान (पीने की वस्तु) अमृत भी ला सकता हूँ, यह आप भली भाँति देख लीजिए।

आगड़दंग अइसे कह्यो औ उड़ानो।
गागड़दंग गैनं मिल्यो मध्य मानो॥
रागड़दंग रामं आगड़दंग आसं।
बागड़दंग बैठे नागड़दं निरासं॥

इतना कहकर हनुमान उड़ चले और देखते-देखते आकाश के मध्य में जा पहुँचे। तब श्री राम को, जो निराश हो बैठे थे, लक्ष्मण के बचने की आशा हो गई।

आगड़दंग आगे कागड़दंग कोऊ।
मागड़दंग मारे सागड़दंग सोऊ॥

नागड़दंग नाकी तागड़दंग तालं।
मागड़दंग मारे वागड़दं विशालं॥

उधर हनुमान के आगे जो कोई विघ्न-रूप में आया, वही मार डाला गया। (चलते-चलते जब हनुमान एक तालाब पर पहुँचे, तो वहाँ एक राक्षस नाक अर्थात् मगर के रूप में रहता था)। हनुमान ने उस विशाल मगर को भी मार डाला।

आगड़दंग एकं दागड़दंग दानो।
चागड़दंग चीरा दागड़दं दुरानो॥
दागड़दंग देखी वागड़दंग बूटी।
आगड़दंग हैं एक तैं एक जूटी॥

(इस प्रकार चलते-चलते जब हनुमान बूटी के पास पहुँचे, तब) वहाँ जो दानव छिपा बैठा था, उसे चीर डाला। इसके बाद उस बूटी की देख-भाल की। परन्तु वहाँ एक से एक बढ़कर बूटियाँ आपस में गुथी पड़ी थीं।

चागड़दंग चौंका हागड़दं हनुमंता।
जागड़दंग जोधा महा तेजवंता॥
ऊगड़दंग उखारा पागड़दं पहारं।
आगड़दंग औषधि को लै सिधारं॥

तब हनुमान चकित हो गये। उन महा तेजस्वी योद्धा ने सारा पहाड़ ही उखाड़ लिया और इस प्रकार ओषधि लेकर वह लौट पड़े।

आगड़दंग आए जहाँ राम खेतं।
वागड़दंग वीरं जहाँ ते अचेतं॥
वागड़दंग विशल्या मागड़दंग मुख्यं।
डागड़दंग डारी सागड़दंग सुख्यं॥

बूटी लेकर महावीर वहाँ आ पहुँचे, जहाँ रण-क्षेत्र में श्री राम बैठे थे और

जहाँ लक्ष्मण अचेत पड़े थे। वह विशल्य* बूटी लक्ष्मण के मुख में डाली गई। उसी समय लक्ष्मण सुखी हो गये (अर्थात् जीवित हो उठे)।

जागड़दंग जागे सागड़दंग सूरं।
घागड़दंग घुम्मी हागड़दंग हूरं॥
छागड़दंग छूटे नागड़दंग नादं।
बागड़दंग बाजे नागड़दंग नादं॥

जब लक्ष्मण चेतना अवस्था में आ गये, तब मानो सब शूर-वीर भी जाग उठे। यह दृश्य देखकर आकाश में अप्सराएँ चक्कर लगाने लगीं। बड़े बड़े नगाड़े बजने लगे और उनसे महान् घोष निकलने लगा।

तागड़दंग तीरं छागड़दंग छूटे।
गागड़दंग गाजी जागड़दंग जूटे॥
खागड़दंग खेतं सागड़दंग सोये।
पागड़दंग ते पाक शहीद होये॥

फिर से युद्ध होने लगा, तीर चलने लगे, गाजी (योद्धा) आपस में भिड़ गये। उन योद्धाओं में से जो रण में सो गये (अर्थात् मर गये)। वे ही पाक शहीद (पवित्र हुतात्मा) कहलाये।

कलस छन्द

मच्चे शूर-वीर विकरारं। नच्चे भूत-प्रेत वैतारं॥
झम झम लसत कोटि करवारं। झलहलंत उज्जल असि-धारं॥

युद्ध में विकराल शूर-वीर क्रोध में भर गये। उधर भूत-प्रेत तथा वैताल नाचने लगे। करोड़ों तलवारों की धारें झम झम करती हुई चमकने लगीं।

---

* शरीर को सब प्रकार के शल्यों अर्थात् विकारों, विषों आदि से रहित करनेवाली।

त्रिभंगी छंद

उज्ज्वल असि-धारं, लसत अपारं, करन लुझारं छवि धारं ।
सोभित जिमि आरं अति छवि धारं सुविध सुधारं अरिगारं ॥
जयपत्रं दाती मदिरं माती शोणं राती जय-करणम् ।
दुर्जन दल हंती अछल जयंती किल्विष हंती भय-हरणम् ॥

अत्यन्त छवियुक्त, युद्ध करनेवाली तलवार की धारें चमक रही थीं। ऐसा प्रतीत होता था, मानो आरे की तरह शोभित होती हुई अरियों (शत्रुओं) को गला रही (अर्थात् काट रही) हों । वे तलवारें क्या थीं, जयपत्र (विजय का प्रमाणपत्र) देनेवाली थीं । युद्ध में मानो वह तलवारें मदिरा पीकर मस्त हो उठी हों, रक्त में रँगी हुई हो और विजय करनेवाली हो । दुर्जनों का विनाश करके छल-रहित (शुद्ध) विजय देनेवाली, पापों का नाश करनेवाली, और भय दूर करनेवाली हों । (ये सब तलवारों की विशेषताएँ हैं) ।

कलस छन्द

भरहरंत भज्जत रण शूरं । थरहर करत लोह तन पूरं ॥
तड़भड़ वजैं तवल अरु तूरं । घुम्मी पेख सुभट रण हूरं ॥

कई शूर-वीर रण में खलबली मचाते हुए भागने लगे और कई लोह-त्राण पहने हुए भी काँपने लगे । तड़भड़ की ध्वनि करते हुए बाजे और तुरहियाँ बज रही थीं । रण में शूर-वीरों को देखती हुई अप्सराएँ घूम रही थीं ।

त्रिभंगी छन्द

घुम्मी रण हूरं नभ झड़ पूरं लख सूरं मन-मोही ।
आरुण तन वाणं छवि अप्रमाणं अनुदत खानं तन सोही ॥
काछनी सुरंगं छवि अँग अंगं लजत अनंगं लख रूपं ।
सायक दृग हरनी कुमत प्रजरणी वर वर वरणी वुध-कूपं ॥

आकाश में घूमनेवाली अप्सराएँ शूर-वीरों को देख-देखकर मस्त होती हुई इस प्रकार प्रतीत हो रही थीं, मानो आकाश में झड़ (बादलों का झुण्ड) इकट्ठा हो रहा हो। उन अप्सराओं के शरीर पर लाल बाना (वस्त्र) था। उन लाल वस्त्रों में उनकी छवि (रूपमाण) अत्यन्त सुन्दर हो रही थी। उनके शरीर की शोभा, सुन्दरता की अद्वितीय खान थी। उनकी पोशाकें बहुत सुन्दर रंगों की थीं, जिन्हें देखकर कामदेव भी लज्जित हो रहा था। उन अप्सराओं की आँखें बाणों की शोभा हरनेवाली थीं (अर्थात उनके कटाक्षों की मार बहुत तीखी थी अथवा उनकी दृष्टि बहुत तीक्षण थी), इसी लिए वे कुमति का नाश करनेवाली थीं। वे सभी अप्सराएँ बुद्धि का कूआँ (भण्डार) और सुन्दरता की साकार मूर्त्ति थीं।

कलस छन्द

कमल-वदन सायक मृग-नैनी। रूप-रास सुन्दर पिक-वैनी।
मृगपति कटि छाजत गज-गैनी। नैन कटाछ मनहिं हर लैनी॥

उनका मुँह कमल-सा था और आँखें मृग तथा बाण की-सी थीं। वे सभी रूप का खजाना थीं और उनकी बोली कोयल की तरह थी। सिंह के समान कमर थी और चाल हाथी की तरह थी। उनकी आँखों के कटाक्ष मन को मोहित करनेवाले थे।

त्रिभंगी छन्द

सुन्दर मृग-नैनी सुर पिक-वैनी चित हर लैनी गज-गैनं।
माधुर विधुवदनी सुबुधिन सदनी कुमतिन कदनी छविमैनं॥
अंगिका सुरंगी नटवर रंगी झाँझ उतंगी पग धारं।
वेसर गजरारं पहुँचि अपारं कच घुँघरारं आहारं॥

उन अप्सराओं की आँखें मृग की आँखों की सी सुन्दर थीं, उनका स्वर कोयल का-सा था और उनकी मनोहर चाल हाथी की तरह थी। वे बहुत

मधुर प्रतीत होती थीं, मानो बुद्धि का घर हों तथा कुबुद्धि का नाश करनेवाली हों। उनकी सुन्दरता साक्षात् कामदेव की सुन्दरता की-सी थी। उन अप्सराओं की अँगियाएँ बहुत रंगों की बनी हुई थीं। वे सभी नट की तरह अनेक प्रकार के वस्त्र धारण किये हुए थीं और पैरों में झाँझरें पहने थीं। नथ, गजरे, पहुँचियाँ आदि भी पहने थीं। उनके केश बहुत ही घुँघराले थे।

कलस छंद

चिबुक चारु सुन्दर छबि धारं। ठौर ठौर मुकतन के हारं॥
कर कंगन पहुँची उजियारं। निरख मदन दुति होत सुमारं॥

उन अप्सराओं की ठोढ़ी तथा छवि अत्यन्त सुन्दर थी और प्रत्येक अंग पर मोतियों के हार पड़े थे। उनके हाथों में कंगन तथा पहुँचियाँ चमक रही थीं, जिन्हें देखकर मदन (कामदेव) की द्युति भी बे-सुध-सी हो रही थी।

त्रिभंगी छंद

शोभित छबिधारं कच घुँघरारं रसन रसारं उजियारं।
पहुँची गजरारं सुबिध सुधारं मुकतनि हारं उर धारं॥
सोब्रत चख चारुं रँग रंगारं विविध प्रकारं अति आँजे।
विषधर मृग जैसे जलजन वैसे ससियन जैसे सर माँजे॥

अत्यन्त शोभा-युक्त घुँघराले केश चमकते थे और उनका संभाषण बहुत ही रसीला था। उनके हाथों में पहुँचियाँ थीं और गजरे पड़े थे तथा वक्ष-स्थल पर मोतियों के हार थे। बहुत सुन्दरता से डाले हुए सुरमे के कारण उनकी आँखें रंगीन (नशीली) प्रतीत हो रही थीं। यदि उन आँखों की उपमा दें तो विषधर (तीखे बाण) और मृग तथा कमल से दी जा सकती है। उनके मुँह के सामने चन्द्रमा भी शरमा जाता था।

कलस छंद

भयो मूढ़ रण रावण क्रुद्धं। मच्यो आन तुमुलं जब युद्धं॥
जूझे सकल सूरमा शुद्धं। अरि-दल मध्य शब्द कर उद्धं॥

अब कवि युद्ध का वर्णन करते हैं—मूर्ख रावण फिर युद्ध में क्रोध करने लगा। फिर से तुमुल संग्राम छिड़ गया। सभी शूर-वीर आपस में भिड़ने लगे और शत्रु-दल में भयानक शब्द होने लगे।

त्रिभंगी छंद

धायो कर क्रुद्धं सुभट विरुद्धं गलित सुबुद्धं गहि बाणं।
कीनो रण शुद्धं नचत कबद्धं अति धुनि उद्धं धनु तानं॥
धाए रजवारे दुधर हकारे, सुव्रण प्रहारे करि कोपं।
घाइन तन रज्जे दु पग न भज्जे जनहर गज्जे पग रोपं॥

तब रावण अत्यन्त क्रोध में भरकर आया और उसके आते ही शूर-वीर एक दूसरे के विरुद्ध बुद्धिहीन की तरह (अपने पराये का भेद-भाव भूलकर) हाथों में बाण लेकर चलाने लगे। युद्ध इतना भयंकर था कि उसमें कबंध नाच रहे थे, धनुष खींचे जा रहे थे और अत्यन्त कोलाहल हो रहा था। दोनों ओर के राजा लोग आपस में क्रोध में भरकर हुंकार करते हुए एक दूसरे पर प्रहार करते थे। कुछ वीर घावों से भरे हुए होने पर भी दो पग भी हटना नहीं चाहते थे, बल्कि पाँव जमाकर लड़ना चाहते थे और इसी लिए हरि (शेर) की तरह गरज रहे थे।

कलस छन्द

अधिक रोष सावँत रण जूटे। बखतर, टोप, जिरह सब फूटे॥
निसर चले सायक जनु छूटे। जनक सिचान मास लख टूटे॥

सभी योद्धा क्रोधित हो-होकर युद्ध में भिड़ गये। उनके जिरह, बखतर (कवच), टोप आदि सब टूटने लगे। शूर-वीरों के हाथों से निकले हुए बाण शत्रुओं की ओर इस प्रकार दौड़ते थे, मानो सिचान (श्येन, बाज) पक्षी मांस देखकर उसपर टूटता हो।

त्रिभंगी छन्द

सायक जनु छूटे तिमि अरि जूटे बखतर फूटे जेव गिरे।
मसहर मुखियाए तिमि अरि धाए शस्त्र नचायन फेरि फिरे॥
सन्मुख रण गाजैं किमहुँ न भाजैं लखि सुर लाजैं रण रंगं।
जै जै धुनि करहीं पुहुपन डरहीं सुविधि उचरहीं जै जंगं॥

शत्रुओं के दल आपस में एक दूसरे की ओर बाणों की तरह बढ़ रहे थे। उनके कवच, शिरस्त्राण आदि सब टूट रहे थे। वे एक दूसरे पर शस्त्र लेकर इस प्रकार टूट रहे थे, मानो मांसाहारी जीव हों। दोनों दल के शूर-वीर युद्ध में गर्जन करते थे और जरा भी पीछे नहीं हटते थे। युद्ध का ऐसा रंग देखकर देवता भी शरमा जाते थे। वे जय-जयकार करते तथा पुष्प-वर्षा करते थे। जोरों से युद्ध का घोष हो रहा था।

कलस छन्द

मुख तँबोर अरु रंग सुरंगं। निडरे फिरत भूमि उह जंगं॥
लिपत मलै घनसार सुरंगं। रूप भानु गति बाण उतंगं॥

शूर-वीर अपने लाल मुँह के कारण ऐसे प्रतीत होते थे, मानो पान चबा रहे हों। वे सभी निडर होकर युद्ध-भूमि में घूमते थे। कई वीरों के शरीर में मलय (चन्दन) और कपूर लगा था। कई वीरों ने केसर लगा रखा था। उनका रूप भानु (सूर्य) के समान था और उनकी गति ऊर्ध्वगामी बाण की तरह तीव्र थी।

त्रिभंगी छन्द

तन सुभत सुरंगं छवि अँग अंगं लजत अनंगं लख नैनं।
शोभित कच कारे अति घुँघरारे रसन रसारे मृदु बैनं॥
मुखि छकत सुवासं दिनस प्रकासं जनु ससि भासं तस सोभं।
रीझत चख चारं सुर पुर प्यारं देव दिवारं लखि लोभं॥

उनका सुन्दर वर्ण-युक्त शरीर शोभा पा रहा था। अंग अंग से छवि फूटी पड़ती थी, जिसे देखकर कामदेव भी लज्जित हो रहा था। घुँघराले और काले केश शोभा पा रहे थे। उनके वचन बहुत रसीले थे और बोलते समय उनके मुँह से सुगंधि निकलती थी। उनका शरीर (दिनस=दिनेश) सूर्य के प्रकाश की तरह शोभित था, और मुँह मानो चन्द्रमा की शोभा से युक्त था। उनके रूप देखकर स्वर्ग के प्रिय देवता और (दिवार=देवारि) दानव भी रीझ रहे थे।

कलस छन्द

चन्द्रहास एकं कर धारी। द्वितिय धोप गहि तृतिय कटारी॥
चतुरथ हथ सैहथि उजियारी। गोफन, गुरज, करत चमकारी॥

(कविजी रावण के हाथों में लिये हुए शस्त्रों का वर्णन करते हैं।)

रावण के एक हाथ में चन्द्रहास नामक तलवार थी, दूसरे में धोप (एक तरह की बरछी) थी। तीसरे हाथ में कटार, चौथे में सैहथी (एक तरह की लम्बी तलवार) थी। पाँचवें हाथ में गोफन था, तो छठे हाथ में गुर्ज (एक प्रकार की गदा) था।

त्रिभंगी छंद

सतवें असि भारी गदहि उभारी त्रिशुल सुधारी छुरकारी।
जँबुवा अरु बाणं सुकसि कमानं चरम प्रमाणं धर भारी॥
पंद्रएँ गलोलं पाश अमोलं परस अडोलं हथिनालं।
बिछुआ पहरायं पटा भ्रमायं जिमि यम धायं विकरालं॥

सातवें में भारी खड्ग, आठवें में गदा, नवें में त्रिशूल, दसवें में छुरक (छुरा) और ग्यारहवें में जँबुवा (सँडसी की तरह का एक अस्त्र) था। बारहवें हाथ में बाण तथा तेरहवें में कमान, चौदहवें में एक बहुत भारी ढाल थी। पंद्रहवें हाथ में गलोल (गुलेल या एक प्रकार का छोटा धनुष) थी।

सोलहवें हाथ में अमूल्य पाश, सत्रहवें में परशु (कुल्हाड़ा) और अठारहवें में हथनाल (बंदूक) थी। उन्नीसवें हाथ में विछुआ था तो बीसवें में पटा (एक प्रकार का काठ का डंडा जिस पर चमड़ा मढ़ा हुआ होता है) था। रावण वह पटा घुमा रहा था। उस समय ऐसा प्रतीत हो रहा था कि मानो साक्षात् यमराज भयंकर रूप धारण करके आये हों।

कलस छंद

शिव शिव शिव मुख एक उचारं। द्वितिय प्रभा जानकी निहारं॥
तृतिय झुंड सब सुभट पुकारं। चतुरथ करत मार ही मारं॥

रावण एक मुँह से 'शिव शिव' कह रहा था तो दूसरे से सीता की सुंदरता देख रहा था। तीसरे से वीरों को ललकार रहा था तो चौथे से 'मारो-मारो' की पुकार मचा रहा था।

त्रिभंगी छन्द

पँचएँ हनुमंतं लख दुतमंतं सुबल दुरंतं तजि कलिनं।
छठएँ लखि भ्रातं तकत पपातं लगत न घातं जिय जलनं॥
सतएँ लखि रघुपति कपि-दल-अधिपति सुभट विकट मति जुत भ्रातं।
अठवें सिरि फेरै नवम निहोरै दसअन बोरैं रिस रातं॥

पाँचवें मुँह से द्युतिमान और बलशाली हनुमान महावीर को देखकर शान्ति या धैर्य छोड़ रहा था। छठे मुँह से अपने छोटे भाई विभीषण को देखकर उसे गिराने का दाँव सोचता था, परन्तु अवसर न मिलने से मन ही मन जल रहा था। सातवें मुँह से वानरों के अधिपति सुग्रीव को तथा अन्य वीरों से घिरे हुए लक्ष्मण और राम को देख रहा था। आठवाँ मुँह इधर-उधर घुमा रहा था तो नवें मुँह से वीरों को उत्साहित कर रहा था और दसवाँ मुँह रोष में भर कर लाल हो रहा था।

चौबोला छन्द

धाए महावीर साधे सितं तीर काछे रणं चीर बाना सुहाए।
रवाँ कर्द अरक़ब यलो तेज इम शब चु तुंद अजदहो उभिआ जँगाहे॥
भिड़ आए ईहाँ वुले बैन कीहाँ करें घाइ जीहाँ भिड़े भेड़ भज्जे।
पियो पोस्ताने भछो रावड़ीने कहा छै अनीरे धनी ने निहारे॥

युद्ध में बड़े-बड़े शूर-वीर चमकीले बाणों से युक्त और रण-भूमि के योग्य वस्त्रों से सजे हुए शोभा पा रहे थे। कई वीरों ने रण-भूमि में अपने-अपने (अरकव रथ चलाये और इतनी तेजी से चलाये कि मानो रात के भयानक अन्धकार-सा काला साँप भागा जा रहा हो। कुछ शूर-वीर वहाँ आकर भिड़ने लगे तो रावण ने उन्हें इस प्रकार कहा—अरे, यहाँ आकर लड़ो, यहाँ आकर लड़ो। इस प्रकार के शब्द कहता हुआ रावण कइयों को मार-काट रहा था। युद्ध में कई योद्धा भागते दिखाई देते थे। कई शूर-वीर युद्ध की मस्ती से इतने मस्त हो रहे थे कि मानों उन्होंने पोस्त पी रखी हो या वे रबड़ी खाकर मस्त हो रहे हों। वे सभी नशे में इस प्रकार बोल रहे थे—अरे, बतलाओ तो, इस सेना का स्वामी कहाँ है? जरा हम भी उसे देखें।

गाजे महाशूर घुम्मी रणं हूर भरमी नभं पूर वेशं अनूपं।
वले वल्ल साईं जिवीं जुग्गाँ ताईं तैंडे घोली जाई अलावीत ऐसे॥
लगो लार थाने वरो राज माने कहो और काने हठी छाँड़ थे से।
वरो आन मोको भजौं आन तो को चलो देव-लोको तजो वेगि लंका॥

बड़े-बड़े शूर-वीर गरज रहे थे और उनके लिए रण-भूमि के ऊपर आकाश में अप्सराएँ घूम रही थीं। उन अप्सराओं से सारा आकाश भर गया था। वे उन वीरों से कह रही थीं—स्वामी, तुम युगों तक जिओ, हम तुम पर वारी (न्योछावर) जाती हैं। आज हम तुम्हारे पल्ले पड़ती हैं, हमारा वरण करो; क्योंकि तुम जैसे वीरों को छोड़कर और किससे कहें। हमारा

वरण करो, तो हम भी तुम्हारी सेवा करें। बस अब आओ, देवलोक को चलो और लंका छोड़ दो।

सवैया बहु-तुका छन्द

रोष भर्‌यो तजि होश निशाचर श्री रघुराज को धाइ प्रहारे।
जोश बड़ो कर कौशलिशं अधबीच ही तें सर काट उतारे॥
फेर बड़ो कर रोष दिवारी धाइ परें कपि पुंज सँघारें।
पट्टस, लोह, हथी परसं गड़िए, जँबुए, जमदाढ़ चलावैं॥

उधर रावण क्रोध में भरकर श्रीराम जी पर प्रहार करने के लिए दौड़ा। श्रीरामचन्द्र जी ने भी आवेश में भरकर बीच में ही तीरों को काट गिराया। देवारि रावण क्रोध में भरकर श्रीराम की सेना के वानरों को मारने लगा और अपने हाथों से पटा, तलवार, हाथ का कुल्हाड़ा, गँड़ासा, बरछा, तथा जमदाढ़ (कटार) आदि चलाने लगा।

चौबोला छन्द

श्री रघुराज सरासन लै रिस ठान घनी रण बाण प्रहारे।
बीरन मार दुसार गए सर अंबर तें बरसे जनु ओरे॥
बाजि, गजी, रथ-साज गिरे धर पत्र अनेक सु कौन गनावै।
फागुन पौन प्रचण्ड बहे बन पत्रन तें जनु पत्र उडारे॥

श्री राम ने भी क्रोध में भरकर युद्ध-भूमि में बहुत-से बाणों की वर्षा की। वे तीर वीरों को मारते हुए पार निकल रहे थे। ऐसा प्रतीत होता था कि आकाश से ओले बरस रहे हैं। घोड़े, हाथी और रथों के सवार सभी अपने-अपने साज-सामान के साथ पृथ्वी पर गिर रहे थे। उन बाणों की संख्या गिनी नहीं जा सकती; मानो फागुन में पेड़ों से पत्ते टूट-टूटकर गिर रहे हों।

सवैया

रोष भर्‍यो रण मों रघुनाथ सु रावण को बहु बाण प्रहारे।
श्रौणन लैक लग्यो तिन के तन फोर जिरै तन प्राण पधारे।
बाजि, गजी, रथराज रथी, रण-भूमि गिरे इह भाँति सँघारे।
जानो वसन्त के अन्त समै कदलीदल पौन प्रचण्ड उखारे॥

श्री राम ने क्रोधित होकर रावण पर बहुत-से वाण चलाये। कान तक खींचकर मारे हुए बाण जिन्हें लगे, उनके शरीर चीरते हुए और कवच तोड़ते हुए पार निकल जाते थे। घोड़े, हाथी तथा उनके सवार, रथ और हाथी, रण-भूमि में इस प्रकार गिरे पड़ते थे, मानो वसन्त के अन्त में चलने-वाली वायु केलों को उखाड़कर फेंक रही हो।

धाइ परैं कर कोप वनेचर है तिन के जिय रोष जग्यो।
किलकार पुकार परे चहुँ धारन छाँड़ि हठी नहिं एक भग्यो।
गहि वाण, कमान, गदा, बरछी, उत तें दल रावण को उमग्यो।
भट जूझि अरूझि गिरे धरणी द्विजराज भ्रम्यो शिव ध्यान डिग्यो॥

बन्दरों को भी बहुत क्रोध आ गया। वे भी चारों ओर से किलकारी मारते हुए आक्रमण करने लगे। उनमें से एक भी वीर रण में से नहीं भागा। इधर तो यह हुआ, उधर रावण का दल भी अपने हाथों में वाण, कमान, गदा और बरछियाँ लेकर युद्ध के लिए आ पहुँचा। सभी वीर आपस में जूझकर पृथ्वी पर गिरने लगे। यह दृश्य देखकर चन्द्रमा चकरा गया और शंकर की समाधि टूट गई।

जूझि अरूझि गिरे भटवा तन घाइन घाइ घने भिभराने।
जम्बुक, गिद्ध, पिशाच, निशाचर, फूल फिरे रण मों हरषाने।
काँप उठी सुदिशा विदिशा दिग्पालन फेर प्रलय अनुमाने।
भूमि अकास उदास भए गण देव अदेव भ्रमे भहराने॥

शूर-वीर एक दूसरे के साथ भिड़कर गिरने लगे। उनके शरीर घाव लगने से वहुत भयानक प्रतीत होते थे। रण-भूमि में गीदड़, गिद्ध, पिशाच और राक्षस वहुत प्रसन्न हो रहे थे, वे सभी फूले-फूले फिरते थे। सभी दिशाएँ-विदिशाएँ काँप उठीं। सभी दिग्पाल प्रलय का अनुमान करने लगे। आकाश और पृथ्वी सभी मानो उदास हो गये। देवता और दानव भय से घवरा गये।

रावण रोष भस्यो रण मों रिस सों सर उग्घ प्रउग्घ प्रहारे।
भूमि अकास दिशा विदिशा सव ओर रुके नहिं जात निहारे।
श्री रघुराज शरासन लै छिन मों छुभ कै सर पुंज निवारे।
जानहु भान उदै निस कउ लखि कै सव ही तप तेज पधारे॥

इधर रावण भी क्रोध में भर गया और ढेरों के ढेर वाण चलाने लगा। उन वाणों से भूमि, आकाश, दिशाएँ-विदिशाएँ सभी रुक गईं। कहीं कुछ भी दिखाई नहीं देता था। तव श्रीराम ने क्रोध में भरकर सारा वाण-पुंज दूर कर दिया। ऐसा प्रतीत होता था कि सूर्य के उदित होते ही रात में चमकनेवाले तारे छिप गये हों।

रोष भरे रण मों रघुनाथ कमान लै वाण अनेक चलाये।
वाजि, गजी, गजराज घने रथराज वने करि रोष उड़ाये।
जे दुख देह कटे सिय के हित ते रण आज प्रतच्छ दिखाये।
राजिव-लोचन रामकुमार घनो रण घाल घने घर घाये॥

श्री राम ने क्रोध में भरकर हाथों में कमान (धनुष) लेकर अनेक वाण चलाये। उन्होंने अपने वाणों से घोड़े-हाथी के सवारों और बड़े-बड़े रथियों तथा राजाओं को उड़ा दिया। श्री राम ने सीता जी के लिए जो जो दुःख झेले थे, वे सभी मानो आज युद्ध में प्रत्यक्ष करके दिखा दिये। कमल-नयन राम ने युद्ध करके बहुत-से वीरों को मार गिराया।

रावण रोष भर्यो गरज्यो रण मों लहि कै सब सैन भजान्यो।
आपुहि हाक हथ्यार उठी गहि श्री रघुनंदन सों रण ठान्यो।
चाबुक मार कुदाइ तुरंगन जाइ पर्यो कछु त्रास न मान्यो।
बाणन तें बिंध वाहन ते मनु मारुत को रथ छोरि सिधान्यो॥

उधर रावण भी जब क्रोध में भरकर गर्जन करने लगा, तब वानरों की सेना डर के मारे भागने लगी। रावण ने शस्त्र लेकर ललकारते हुए श्रीराम से रण आरम्भ किया। वह अपने घोड़ों को चाबुक से मारता हुआ बेनिडर होकर युद्ध-क्षेत्र में घूमने लगा। तब श्रीराम ने अपने बाणों से उसके वाहनों (घोड़ों) को बींध दिया। तीर लगते ही घोड़े रथ छोड़कर इतनी तेजी से दौड़े कि मानो स्वयं पवन चल रहा हो।

श्री रघुनन्दन की भुज तें जब छोर सरासन बाण उड़ाने।
भूमि अकास पतार चहूँ चक पूर रहे नहिं जात पछाने।
तोर सनाह सुवाहन के तन आह करी नहिं पार पराने।
छेद करोटन ओटन कोट अटान मों जानकी बाण पछाने॥

श्री राम के हाथों से जब धनुष छोड़कर बाण चले, तब धरती, आकाश, पाताल सभी चारों ओर से भर गये। कोई स्थान पहचाना नहीं जाता था। शूर-वीरों के कवच छेदते हुए बाण इतनी शीघ्रता से पार हो जाते थे कि उनके मुँह से आह भी नहीं निकल पाती थी। करोटन (खोपड़ियों) की ओट (रक्षा) करनेवाले लोहे के टोप छेदते हुए बाण जब रावण की अटारियों में पहुँचे, तब सीता जी ने उन बाणों को पहचान लिया।

सीय सुरारिन के कर को जिन एक ही बाण बिषै तन चाख्यो।
भाज सक्यो न भिर्यो हठ कै भट एक ही धाइ धरा पर राख्यो।
छेद सनाह सुबाहन को सर ओटन कोट करोटन. नाख्यो।
सूर जुझार अपार हठी रण हार गिरे घर हाय न भाख्यो॥

सीता तथा देवताओं के शत्रु (रावण) के हाथों तथा शरीर को श्री राम

के एक ही वाण ने खाना आरम्भ कर दिया। रावण इससे भी भागा नहीं, बल्कि हठपूर्वक लड़ता ही रहा। तब राम ने एक ही वाण से रावण को पृथ्वी पर लोट-पोट कर दिया। श्री राम के वाण कवचों से युक्त वीरों के शरीर छेदते हुए, सिर की रक्षा करनेवाले टोप काटते हुए पार हो गये। अनेक शूर-वीर आपस में जूझते हुए रण-भूमि में गिर पड़े और उनके मुँह से आहें तक नहीं निकली।

आन अरे सु मरे सब ही भट जीत बचे रण छाँड़ि पराने।
देव अदेवन के जितया रण कोटि हते करि एक न जाने।
श्री रघुराज पराक्रम को लखि तेज समूह सबै भहराने।
ओटन कूद करोटन फाँद सु लंकहि छाँड़ि बिलंक सिधाने॥

उस समय जो वीर श्री राम के सामने आकर अड़ा, वही मारा गया; परन्तु जो भाग निकला, वह अवश्य बच गया। रण में देवताओं ने दानवों को जीत लिया, करोड़ों दानव मारे गये, उन करोड़ों की संख्या को एक करके भी नहीं माना गया (अर्थात् देवताओं ने फिर भी उन्हें तुच्छ समझा)। श्री राम के पराक्रम का तेज-पुंज देखकर सभी राक्षस डर गये और काँपने लगे तथा ओट (मोरचेबन्दी का स्थान) और करोट या करोटन* (खाइयाँ ?) फाँदते हुए लंका छोड़कर सागर के उस पार जा पहुँचे।

रावण रोष भर्यो रण भोगहि बीसहुँ बाँहि हथ्यार प्रहारे।
भूमि, अकास, दिशा, विदिशा चकि चार रुके नहिं जात निहारे।
फोकन तैं फल तैं मघ तैं अघ तैं बध कै रण-मण्डल डारे।
छत्र, धुजा, बर, बाजि, रथी, रथ काट सबै रघुराज उतारे॥

इधर रावण भी जब हाथों में शस्त्र लेकर प्रहार करने लगा, तब भूमि,

---

* 'करोटन' का अर्थ स्पष्ट नहीं है। ऊपर के दो छन्दों में प्रसंग से 'खोपड़ी' और यहाँ 'खाई' अर्थ जान पड़ता है।

आकाश, दिशा-विदिशाएँ चारों ओर से रुक गई और कुछ भी दिखाई नहीं देता था। श्री राम ने अपने तीरों के फलों से अध-बीच ही उन्हें काट गिराया और रावण का छत्र, ध्वजा, सुन्दर घोड़ा, रथ, सारथी आदि सभी काट गिराये। इस प्रकार रावण को रथ तथा सारथी-विहीन करके नीचे उतार दिया।

रावण चोप चल्यो चप कै निज वाजि विहीन जवै रथ जान्यो।
ढाल, त्रिशूल, गदा, वरछी गहि श्री रघुनंदन सों रण ठान्यो।
धाय पर्यो ललकार हठी कपि पुंजन को कछु त्रास न मान्यो।
अंगद आदि हनूवंत सों भट कोटिहु तें कर एक न जान्यो॥

जब रावण ने अपने रथ को घोड़ों से रहित जाना, तब वह पैदल ही हाथों में ढाल, त्रिशूल, गदा और बरछी लेकर राम से युद्ध करने चला और ललकारते हुए वीर रावण ने करोड़ों वानरों के समूह की भी कुछ परवाह न की, वल्कि वह आगे ही बढ़ता गया। अंगद, हनुमान आदि को श्री राम के साथ होते हुए भी उन्हें कुछ नहीं समझा (अर्थात् उनका तनिक भी भय नहीं किया)।

रावण को रघुराज जवै रण-मण्डल आवत मध्य निहार्यो।
बीस सिला सित सायक लै करि कोप वढ्यो उर मध्य प्रहार्यो।
भेद चले मर्मस्थल को सर श्रोण नदीसर वीच पखार्यो।
आगेहि रेंग चल्यो हठि कै भट धाम को भूल न नाम उचार्यो॥

जब श्री रामचन्द्र जी ने रावण को रण-भूमि में इस प्रकार आते देखा, तब शिला (सान) पर घिसे हुए अर्थात् तीखे बीस चमकीले बाण बहुत क्रोध में भरकर रावण के हृदय में मारे। वे बाण रावण का मर्म-स्थल भेदते हुए पार निकल गये। ऐसा प्रतीत होता था, मानो वे रक्त के सागर में स्नान करके निकले हों। रावण भी रेंगता हुआ राम की ओर बढ़ा। उसने भूल कर भी घर की ओर मुँह नहीं किया और घर का नाम भी नहीं लिया।

रोष भस्यो रण मों रघुनाथ सुपाण कै बीच सरासन लै कै ।
पाँचक पाइ हटाइ दियो तिह बीसहु बाँहि बिना उँह कै कै ।
दै दस बाण बिमान दसो सिर काट दिए शिवलोक पठै कै ।
श्री रघुराज बस्यो सिय को बहुस्यो जनु जुद्ध-स्वयंवर कै कै॥

तब श्रीराम ने क्रोध में भरकर हाथ में धनुष और बाण लेकर, रावण की बीसों भुजाएँ काटकर उसे पाँच-सात कदम पीछे हटा दिया और दस बाण-रूपी विमानों द्वारा उसके दसों सिर काट लिये तथा उसे शिवलोक भेज दिया। इस प्रकार श्री राम ने मानो युद्ध-रूपी स्वयंवर में फिर से सीता का वरण किया।

इति रावण-वधाध्यायः

अथ सीता-मिलन कथनम्

सवैया छन्द

इन्द्र डराकुल थो जिनके डर सूरज चन्द्र हुते भय-भीतो।
लूट लियो धन जौन धनेश को ब्रह्म हुते चित मों न निचीतो।
इन्द्र से भूप अनेक लरे इन सों फिरि कै गृह जात न जीतो।
सूरण आज भलैं रघुराज सु जुद्ध सुयंबर कै सिय जीतो॥

कवि कहते हैं—जिस रावण के डर से इन्द्र व्याकुल रहता था, सूर्य और चन्द्रमा भयभीत रहते थे, जिस रावण ने धनेश (कुवेर) का धन लूट लिया था, जिसके डर से ब्रह्मा भी निश्चिन्त नहीं था, तथा जिसके युद्ध करने पर इन्द्रादिक राजा जीवित घर जाने में असमर्थ थे, उस रावण को आज युद्ध में जीतकर श्री राम ने मानो युद्ध-रूपी स्वयंवर में फिर से सीता का वरण किया।

अलका छन्द

लटपट सैनं खटपट भाजे। झटपट जुझ्यो लख रण राजे॥
सटपट भाजे अटपट सूरं। झटपट बिसरी घटपट हूरं॥

रावण की यह दशा देखकर सेना में खलबली मच गई तथा जो राजा रण में जूझ रहे थे, वे सभी सरपट भागने लगे। कई शूर-वीर भाग निकले तथा अप्सराएँ भी अपने वस्त्रों तक की सुधि भूल बैठीं और भागने लगीं।

चटपट पैठे खटपट लंकं। रण तज सूरं सर धर बंकं॥
झलहल बारं नरवर नैनं। धकि धकि उच्चैं भकि भकि बैनं॥

उधर लंका में भी खलबली मच गई। कई धनुषधारी शूर-वीर रण छोड़ कर भाग गये। लोगों की आँखों में इस दृश्य से पानी भर आया। उन सब

के हृदय कुछ बोलते हुए-से धक-धक करने लगे। वे सभी कुछ कहते हुए घबराते थे।

नरवर रामं वरनर मारो। झट झट बाँहं कट कट डारो॥
तब सब भाजे रख रख प्राणं। खटपट मारे झटपट बाणं॥

नरवीर राम ने कई योद्धाओं को मार गिराया था और कइयों की भुजाएँ काट गिराई थीं। वे सभी शूर-वीर प्राणों की रक्षा के लिए लंका की ओर भागने लगे थे; परन्तु श्री राम के बाण बहुत शीघ्रता से उन्हें समाप्त कर रहे थे।

चटपट रानी सटपट धाईं। रटपट रोवैं अटपट आईं॥
चटपट लागीं अटपट पायं। नर-वर देखे रघुवर रायं॥

जब रावण के पतन का समाचार रानियों के पास पहुँचा, तब वे सभी रोती-पीटतीं अटपटी (बे-हाल) सी दौड़ी आईं। आने पर ज्योंही उन्होंने श्री राम को देखा, तो तुरन्त उनके चरणों में लोट गईं।

चटपट लोटैं अटपट धरणी। कसि कसि रोवैं वर-नर वरणी॥
पट पट डारैं अटपट केशं। वट हरि कूकैं नटवर वेशं॥

वे सभी दानव स्त्रियाँ सहसा पृथ्वी पर लोट गईं, फूट-फूटकर रोने लगीं तथा अपने बाल नोचने लगीं। उन दानवों के सुन्दर वेशधारी बालक और सेवक भी कूकें (चीखें) मार-मारकर रोने लगे।

चटपट चीरं अटपट पारैं। धर कर धूरं सिर पर डारैं॥
सटपट लोटैं अटपट भूमं। झटपट झूरैं घरहर घूमं॥

सभी रानियाँ अपने सुन्दर वस्त्र फाड़ने लगीं, अपने हाथों में धूल लेकर सिर पर डालने लगीं और तड़पती हुई-सी पृथ्वी पर लोटने लगीं। वे लटें नोचती हुई घबराई हुई-सी इधर-उधर घूमने लगीं।

रसावल छन्द

जबै राम देखे। महा रूप लेखे॥
रही नाइ सीसं। सबै नार ईसं॥

श्री राम का अत्यन्त सुन्दर रूप देखकर सभी रानियाँ सिर नवाने लगीं।

लखैं रूप मोहो। फिरी राम-दोही॥
दई ताहि लंका। जिमं राज टंका॥

भगवान राम का वह सुन्दर रूप देखकर सभी रानियाँ मोहित हो गईं। सारी लंका में श्री राम के नाम की दुहाई फिर गई। श्री राम ने प्रसन्न होकर विभीषण को लंका का राज्य दे दिया। उन्होंने इतना बड़ा लंका का राज्य इतनी सरलता से विभीषण को दे डाला, जैसे कोई राजा टका (पैसा) सरलता से दे देता है।

कृपा-दृष्टि भीने। तरे नेत्र कीने॥
झरै वार ऐसे। महा मेघ जैसे॥

रानियों को देखकर श्री राम ने कृपा-दृष्टि से भरे हुए नेत्र नीचे कर लिये, सहानुभूति में उनकी आँखों से इस प्रकार जल झरने लगा, जैसे बादल से पानी गिरता है।

छकी पेख नारी। सरं काम मारी॥
बिंधी रूप रामं। महा धर्म धामं॥

श्री राम की सुन्दरता देखकर रानियाँ काम की प्रेरणा से मोहित हो गईं। महान् धर्म के स्थान-रूप राम के रूप से वे सभी मानो बिंध गईं।

तजी नाथ प्रीतं। चुभे राम चीतं॥
रही जोर नैनं। कहैं मद्द बैनं॥

श्री राम की सुन्दरता के कारण उन रानियों ने अपने स्वामी का स्नेह

छोड़ दिया, क्योंकि श्री राम उनके हृदय में समा गये थे। वे सभी एक दूसरी को देखकर मद भरे वचन कहने लगीं।

सिया नाथ नीके। रहैं हार जी के॥
लिये जात चित्तं। मनो चोर वित्तं॥

श्री रामचन्द्र जी बहुत ही भले हैं, वे हृदय चुराने वाले हैं। वे हमारा मन इस तरह चुराकर लिये जा रहे हैं, जैसे कोई चोर धन चुराकर ले जाता है।

सबै पाँइ लागो। पतं द्रोह त्यागो॥
लगी धाइ पायं। सबै नारि आयं॥

(मंदोदरी, मुख्य रानी ने कहा) आओ, सभी स्त्रियाँ पति का वैर भुला कर श्री राम के पैरों में पड़ जाओ। तब सभी नारियाँ आ-कर श्री राम के चरणों में पड़ गईं।

महारूप जाने। चितं चोर माने॥
चुभे चित्त ऐसे। सितं साइ जैसे॥

उन्होंने श्री राम को महारूपवान् तथा चित-चोर समझा। सभी के हृदय में श्री राम मानो तीखे तीर के समान धँस गये, (अर्थात् उन्होंने सब को मोहित कर लिया)।

लगो रूप हेमं। सभै भूप भूमं॥
रँगे रंग नैनं। छके देव गैनं॥

उस समय श्री राम सोने की तरह दिखाई देते थे, मानो सब राजाओं के राजा हों। उनकी आँखें एक तरह की मस्ती से रँगी हुई प्रतीत हो रही थीं, जिन्हें देखकर आकाश के देवता भी मस्त हो रहे थे।

जिनै एक बारं। लखे रावणारं॥
रही मोह ह्वै कै। लुभा देख कै कै॥

सचमुच जिसने एक बार श्री राम को देख लिया, वह देखते ही मोहित हो गई। वह बार-बार देखने का लोभ करती थी।

छकी रूप रामं। गई भूल धामं॥
कियो राम बोधं। महा जुद्ध जोधं॥

श्री राम की सुन्दरता पर वे इतनी मुग्ध थीं कि घर-बार की सुध-बुध भुला बैठी थीं। तब महान् योद्धा श्री राम ने उनसे कहना आरम्भ किया—

मंदोदरी प्रति श्रीराम उवाच

सुनो राज-नारी। कहा भूल म्हारी॥
चितं चित्त कीजै। पुनर्दोष दीजै॥

हे राज-नारी, (मन्दोदरी) मेरी क्या भूल है? अपने हृदय में भी कुछ विचार करो, फिर मुझे किसी तरह का दोष देना।

मिलै मोहिं सीता। चलै धर्म-गीता॥
पठ्यो पौन-पूतं। हुतो अग्र दूतं॥

यदि हमें सीता मिल जाती तो तभी से धर्म का भाव आरम्भ हो जाता। इसी लिए हमने पवनपुत्र (हनुमान) को अपना अग्र-दूत बनाकर भेजा था, परन्तु रावण ने नहीं माना; इसी लिए यह युद्ध हुआ।

चल्यो धाइ कै कै। सिया सोध लै कै॥
हुती बाग माहीं। तरे बृच्छ छाहीं॥

हमारा अग्र-दूत हनुमान सीता की खोज में आया था और उसका पता लगाकर गया था कि वह एक उपवन में वृक्ष की छाया में बैठी है।

(इस प्रकार श्री राम ने अपने को निर्दोष सिद्ध किया, और फिर विभीषण के साथ हनुमान को सीता के लाने के लिए भेजा।)

पठ्यो जाइ पायं। सुनो सीय मायं॥
रिपं राम मारे। खरो तोहि द्वारे॥

हनुमान जाकर सीता के चरणों में गिरे और कहने लगे—हे माता, शत्रु (रावण) को श्री राम ने मार डाला। वे आपको ले जाने के लिए आपके द्वार पर आकर खड़े हैं।

चलो वेगि सीता। जहाँ राम जीता॥
सबै शत्रु मारे। भुवं भार तारे॥

हे सीते, जल्दी वहाँ चलो, जहाँ श्री राम ने युद्ध जीता है, और सभी शत्रुओं को मारकर इस पृथ्वी का भार हलका किया है।

चली मोद कै कै। हनू संग लै कै॥
सिया राम देखे। उही रूप लेखे॥

श्री सीता जी प्रसन्नता में भरकर हनुमान के साथ चल पड़ीं। सीता तथा श्री राम ने एक दूसरे को देखा, तो वही रूप दोनों को दिखाई दिया।

लगी आन पायं। लखी राम रायं॥
कह्यो कौंल-नैनी। बिधुं बाक बैनी॥

आते ही सीता जी श्री राम के चरणों से लिपट गईं। श्री राम ने उस कमल-नयना और चन्द्रमुखी की ओर देखकर कहा—

धँसो आग मद्धं। तवै होहि सुद्धं॥
लई मान सीसं। रच्यो पाव कीसं॥

हे सीता, पहले तुम आग में प्रवेश करो, तभी शुद्ध हो सकोगी। सीता ने यह आज्ञा शिरोधार्य की। तब वानरों ने पावक (आग) की रचना कर दी।

गई बैठ ऐसे। घनं बिज्जु जैसे॥
श्रुतं जेम गीता। मिली तेम सीता॥

सीता उस अग्नि में इस प्रकार बैठ गईं, जैसे बादलों में बिजली होती है। जैसे गीता के शुद्ध भाव वेदों में मिले हुए हैं, उसी प्रकार सीता भी आग

में प्रविष्ट हो गईं। वह श्री राम को पवित्र भाव से प्राप्त हुईं (अर्थात् श्री राम ने सीता को पवित्र गीता के भावों की तरह शुद्ध समझकर अपना लिया)।

धँसी धाइ कै कै। कढ़ी कुंद ह्वै कै॥
गरे राम लाई। कवं कृत्य गाई॥

इस तरह अग्नि-शुद्धि के बाद सीता जी कुंदन की तरह बनकर बाहर निकलीं। तब श्री राम ने उन्हें गले लगा लिया। कवियों ने इस कथा का बहुत गान किया है।

सबै साध मानी। तिहूँ लोक जानी॥
बजे जीत बाजे। तबै राम गाजे॥

सभी की साधना पूरी हुई और यह कथा तीनों लोकों को ज्ञात हुई। विजय के बाजे बजने लगे तथा श्री राम भी सच्चे अर्थों में राम (भगवान्) रूप में प्रकट हुए।

लई जीत सीता। महा शुभ्र गीता॥
सबै देव हर्षे। नभं पुष्प वर्षे॥

इस प्रकार पवित्र भावमयी सीता को श्रीराम ने जीता अर्थात् रावण से युद्ध करके सीता को प्राप्त किया। सभी देवता प्रसन्न हुए और आकाश से पुष्प-वर्षा करने लगे।

इति सीता-मिलनन्

अथ अयोध्या-आगमनम्

रसावल छन्द

तवै पुष्प पै कै। चढ़े जुद्ध जै कै ॥
सवै सूर गाजे। जयं गीत वाजे ॥

इसके अनन्तर श्री राम जी पुष्पक विमान पर चढ़कर, युद्ध जीतकर अयोध्या की ओर चले। सभी शूरवीरों ने गर्जना की और विजय के गीत गाये।

चले मोद ह्वै कै। कपी वाहिनी लै ॥
पुरी औध पेखी। श्रुतं स्वर्ग लेखी ॥

प्रसन्नतापूर्वक वानरों की सेना के साथ श्री राम अयोध्या की ओर चले। जो अयोध्या स्वर्ग के समान सुनी जाती थी, उसे देखा।

मकरा छंद

सिय लै सियेश आये। मंगल सुचार गाये ॥
आनन्द हिय बढ़ाए। शहरो अवध जुहारे ॥

जब इस तरह श्री राम अपने साथ सीता को लेकर आये, तो मंगलचार होने लगे। सबके हृदय में आनन्द छा गया, सारी अयोध्या ने उन्हें नमस्कार किया।

धाई लुगाइ आवैं। भीरो न बार पावैं ॥
आकिल खरे उघावैं। म्हारे ढोलन कहाँ रे ॥

स्त्रियाँ दौड़ दौड़कर आने लगीं। उनकी इतनी भीड़ थी कि द्वार तक पहुँचना भी कठिन था। बुद्धिमान् लोग वहाँ खड़े पूछ रहे थे कि हमारे ढोलन* (राम) कहाँ हैं ?

---

* पंजाब में 'ढोलन' शब्द प्रिय और दूल्हे का वाचक है।

जुलफैं अनूप जाँकी। नागिन सि स्याह बाँकी॥
अद्भुत अदाय ताँकी। ऐसो ढोलन कहाँ है ?॥

जिसकी बहुत सुन्दर और काली नागिन की-सी तिरछी लटें हैं, जिसकी निराली अदा है, वह प्रिय राम कहाँ हैं ?

सरवे सही चमन रा। परचस्त जाँ व तन रा॥
जिन दिल हरा हमारा। वह मन-हरण कहाँ है॥

जो चमन का सरो (एक प्रकार का सुन्दर सीधा पेड़) है, जो शरीर तथा प्राणों को चेतना देनेवाला है, जिसने हम लोगों का मन चुरा लिया है, वह मन-हारी राम कहाँ है ?

चित को चुराइ लीना। जालिम फिराक दीना॥
जिन दिल हरा हमारा। वह गुल-चिहर कहाँ है॥

हमारा चित्त चुरानेवाला, जिसने हमें यह कठोर वियोग दिया था, हमारा मन हरनेवाला फूल से मुँहवाला वह राम कहाँ है ?

कोऊ बताइ दै रे। चाहे सु आन लै रे॥
जिन दिल हरा हमारा। वह मन-हरण कहाँ है॥

चाहे कोई हमसे कुछ भी ले ले, परन्तु यह अवश्य बता दे कि हमारा मन हरनेवाला राम कहाँ है।

माते मनो अमल के। हरिया कि जाँ व तन के॥
आलम-कुशाय खूबी। वह गुल-चिहर कहाँ है॥

जिस राम की आँखें मानो नशे से मस्त हैं, जो शरीर तथा प्राणों को मोहित करनेवाला तथा संसार में अपनी विशेषताएँ प्रकट करनेवाला है, वह फूल से मुँहवाला प्रिय राम कहाँ है ?

जालिम अदाय लीए। खंजन खिसान कीए॥
जिन दिल हरा हमारा। वह मह-बदन कहाँ है॥

जिसकी अदाएँ जालिम हैं (अर्थात् जिसका देखने, बोलने आदि का ढंग आफत ढानेवाला है) तथा जिसने अपने नेत्रों से खंजन पक्षी को भी खिसियाना (लज्जित) कर दिया है, जिसने हमारा दिल चुराया है, वह चाँद से मुँहवाला राम कहाँ है ?

जालिम अदाय लीने। जानहु शराब पीने॥
रुखसार जहाँ-तावाँ। वह गुल-वदन कहाँ है॥

जिसकी भाव-भंगियाँ बहुत मनोहर हैं, जिसकी आँखें मानो मदिरा पिये हुए मस्त हैं, जिसके रुखसार (कपोल) संसार को प्रकाशित करनेवाले हैं, वह फूल-से कोमल शरीरवाला राम कहाँ है ?

जालिम जमाले खूबी। रौशन दिमाग अकसर॥
परवस्त जाँ जिगर रा। वह गुल-चिहर कहाँ है॥

जिसकी सुन्दरता तथा गुण बहुत प्रिय हैं, जो सदा रोशन-दिमाग (जिसका मस्तिष्क बहुत सूझ-बूझवाला है) है, जो हृदय तथा प्राणों को चेतना देनेवाला है, वह फूल से मुखवाला प्रिय राम कहाँ है ?

बालम विदेश आए। जीते जुआन जालिम॥
कामिल कमाल सूरत। वह गुल-चिहर कहाँ है॥

जो प्रिय राम विदेश से जालिम (जुआन=जवान) रावण को जीतकर आया है, जिसकी सूरत कमाल की है, वह फूल-से चेहरेवाला राम कहाँ है ?.

रोशन जहान खूबी। जाहिर कलीम हफतस्त॥
आलम-कुशाए जल्वा। वह गुल-चिहर कहाँ है॥

जिसकी विशेषता संसार में प्रकाशित है, जो सातों द्वीपों में प्रसिद्ध है, जिसकी सुन्दरता संसार को प्रसन्नता देती है, वह फूल-से चेहरेवाला प्रिय राम कहाँ है ?

जीते बजंग जालिम । कीने खुतंग पररा ॥
पुह्‌पक बिमान बैठे । सीता-रमण कहाँ है ॥

जिसने जंग में जालिम रावण को जीता है तथा जिसने (खुतंग = खदंग) बाण को पक्षी बना डाला था (अर्थात् बाणों को इतनी तेजी से चलाया, मानो वे पक्षी बनकर उड़ गये) वह पुष्पक विमान पर बैठनेवाले सीता-रमण श्री राम कहाँ है ?

मादर-खुशाल खातिर। कीने हजार छावर ॥
आतुर शिताब धाई। वह गुल-चिहर कहाँ है ॥

जिसने अपनी माता कैकेयी के लिए हजारों सुखों को न्योछावर कर डाला, जिस राम से मिलने के लिए माताएँ जल्दी-जल्दी आ रही हैं, बताओ, वह फूल-से चेहरेवाला प्रिय राम कहाँ है ?

अथ माता-मिलनम्

रसावल छन्द

सुने राम आए । सबै लोग धाए ॥
लगे आन पायं । मिले राम रायं ॥

अयोध्या के लोगों ने जब सुना कि श्री राम आ गये हैं, तो सभी लोग आ पहुँचे और श्री राम से मिले । सबने उनके चरणों पर सिर झुकाया ।

कऊ चौंर ढारैं । कऊ पान रव्वारैं ॥
परे मात पायं । लिये कंठ लायं ॥

कुछ लोग श्री राम पर चँवर डुलाने लगे और कुछ उन्हें पान खिलाने लगे । श्री राम भी सभी माताओं के पैरों पड़े । उन्होंने श्री राम को गले लगाया ।

मिलै कंठ रोवैं । मनो शोक धोवैं ॥
करैं वीर बातैं । सुनैं सर्व मातैं ॥

सब आपस में गले मिलकर रोने लगे, मानो चौदह वर्षों में जो शोक उत्पन्न हुए थे, उन्हें उसी समय धो डालना चाहते हों । श्री राम और लक्ष्मण अपनी माताओं को वीरता (युद्ध आदि) की बातें बताने लगे । सभी माताएँ सुनने लगीं ।

मिले लच्छ मातं । परे पाँइ भ्रातं ॥
कियो दान एतो । गनै कौन केतो ॥

श्री राम और लक्ष्मण जब लक्ष्मण की माता सुमित्रा से मिले, तब उसके चरणों में सिर झुकाया । सुमित्रा ने भी प्रसन्नता में भरकर इतना दान दिया कि उसकी गणना कोई नहीं कर सकता ।

मिले भर्तु मातं। कही सर्व बातं॥
धनं मात तोको। कियो उऋण मोको॥

जब भरत की माता कैकेयी से मिले, तो सारी बातें उसे सुनाईं और कहा—हे माता! तुम्हें धन्यवाद है, क्योंकि तुम्हारे ही कारण मैं ऋण से मुक्त हुआ हूँ।

कहा दोष तोरो। लिखा लेख मेरो॥
हुनी हो सु होई। कहै कौन कोई॥

इस कार्य में (वन भेजने में) तुम्हारा क्या दोष है! यह तो मेरे भाग्य में लिखा था। जो होना था, वही हुआ। कोई किसी को क्या कह सकता है?

कियो बोध मातं। मिल्यो फेरि भ्रातं॥
सुन्यो भरत धाए। पगं सीस लाए॥

इस प्रकार श्री राम ने कैकेयी को समझाया। इसके बाद फिर भाई शत्रुघ्न से मिले। उधर भरत ने भी जब श्री राम के आगमन का समाचार सुना, तो वह भी आये और उन्होंने भी श्री राम के चरणों पर सिर रखा।

भरे राम अंकं। मिटी सर्व शंकं॥
मिल्यो शत्रुहन्ता। सरं शास्त्र गंता॥

श्री राम ने भरत को अपनी गोद में ले लिया (अर्थात् अपने आलिंगन-पाश में बाँध लिया)। भरत के मन से सारा सन्देह दूर हो गया। फिर शस्त्र-शास्त्र के ज्ञाता शत्रुघ्न से भी इसी तरह स्नेह किया।

जटं धूर झारी। पगं राम रारी॥
करी राज अर्चा। द्विजं वेद चर्चा॥

रारी (शत्रुघ्न) ने श्री राम के पैरों की धूल अपने केशों से झाड़ी। राजाओं ने श्री राम का पूजन किया और ब्राह्मणों ने वेद मंत्रों से स्तुति की।

करैं गीत गानं। भरे वीर मानं॥
दियो राम राजं। सरे सर्व काजं॥

सभी श्री राम की वीरता भरी विजय के गीत गाने लगे। श्री राम को राज्य देने का आयोजन हुआ, बस मानो सारे काम पूरे हो गये।

बुलै विप्र लीने। श्रुतोच्चार कीने॥
भए राम राजा। बजे जीत बाजा॥

उस अवसर पर ब्राह्मणों को बुलाया गया। उन्होंने आकर वेदोच्चार किया। इसके बाद श्री राम को राजा घोषित कर दिया गया और विजय के बाजे बजने लगे।

भुजंग-प्रयात छन्द

चहूँ चक्र के छत्रधारी बुलाए।
धरे अस्त्र नीके पुरी औध आए॥
गहे राम पायं महा प्रीत कै कै।
मिले चत्र-देसी बड़ी भेंट दै कै॥

चारों ओर के राजा बुलाये गये। सभी आमन्त्रित राजा अस्त्रधारी योद्धा की तरह सजकर अयोध्या आ पहुँचे। उन्होंने बहुत प्रसन्नता से श्री राम के पाँव छूए और बड़ी-बड़ी भेंटें अर्पित कीं।

दिए चीन याचीन चीनंत देशं।
महा सुन्दरी चेरिका चारु केशं॥
मणं मानकं हीर चीरं अनेकं।
किये खोज पैये कहूँ एक एकं॥

कई राजाओं ने (चीनंत) चीन आदि देशों की सौगातें दीं। कइयों ने बहुत सुन्दर केशोंवाली दासियाँ भेंट कीं। इतने अच्छे मणि, मानिक, हीरे और वस्त्र भेंट किये कि यदि खोज की जाय तो कदाचित् ही कहीं उनमें की कोई एक-आध चीज मिल सके।

मणं मोतियं मानकं वाजिराजं।
दिए दन्त-पंती सजे सर्व साजं॥
रथं वेष्ठणं हीर चीरं अनन्तं॥
मणं मानकं वद्ध रद्धं दुरन्तं॥

किसी ने मणि और मानिक दिये तो किसी ने घोड़े। किसी ने सब तरह से सजे हुए हाथियों की पंक्तियाँ भेंट कीं तो किसी ने हीरों से मढ़े हुए कपड़ों-वाले रथ दिये, जिन पर अनेक प्रकार के मणि और मानिक जड़े हुए थे।

किते श्वेत ऐरावतं तूलि दंती।
दिए मोतियं साज सज्जे सुपंती॥
किते वाजिराजं जरी जीन संगं।
नचैं नट्ट मानो मचै रंग जंगं॥

कई राजाओं ने ऐरावत की तरह सफेद और बड़े-बड़े हाथी, जो मोतियों से सजे हुए थे, दिये। कइयों ने जरी से सजे हुए कोतल घोड़े दिये, जो इतने फूरतीले थे कि मानो नट की तरह नाचनेवाले और युद्ध-रंग (मस्ती) में भरे हों।

किते पक्खरे पील राजा प्रमाणं।
दिए वाजि राजं शिराजी नृपानं॥
दई रक्त नीलं मणी रंग रंगं।
लख्यो राम को अस्त्र-धारी अभंगं॥

कई राजाओं ने राज-हस्तियों की तरह पाखरों (झूलों) से सजे हुए बड़े बड़े मस्त हाथी भेंट किये और कई राजाओं ने शीराज देश के सुन्दर घोड़े दिये। कई राजाओं ने भिन्न-भिन्न रंगों के लाल और नीले रत्न भेंट किये, क्योंकि उन्होंने श्री राम को विशेष अस्त्रधारी (योद्धा) समझा।

किते पश्म पाटंबरं स्वर्ण चर्णं।
मिले भेंट लै भाँति भाँती अभर्णं॥

किते परम पाटम्बरं भानु तेजं।
दिये सीय धामं सवै भेज भेजं॥

कुछ राजाओं ने सोने की तरह चमकीले पशम तथा रेशम के वस्त्र दिये, तो कुछ ने तरह तरह के आभूषण दिये। कई राजाओं ने सूर्य की तरह चमकीले उत्तम वस्त्र दिये। श्री राम ने वे सब चीजें सीता के पास भेज दीं।

किते भूषणं भान तेजं अनन्तं।
पठे जानकी भेंट दै दै दुरन्तं॥
घने राम मातान की भेंट भेजे।
हरे चित्त के जाहि हेरे कलेजे॥

कइयों ने सूर्य के तेज की तरह दीप्तिवाले अनेक आभूषण सीता को भेंट दिये। कइयों ने मन को हरनेवाले आभूषणों आदि की भेंट राम की माताओं के पास भेजी।

घमं चक्र चक्रं फिरी राम-दोही।
मनो ब्योंत वागो तिमं सीय सोही॥
पठै छत्र दै दै छितं छोन-धारी।
हरे सर्व्व गर्व्व करे पर्व्व भारी॥

चारों ओर श्री राम की दोहाई फिर गई (उनके नाम का डंका बज गया)। श्री राम के साथ सीता इस प्रकार शोभा पा रही थीं, जैसे वस्त्र की युक्ति (मेल) शरीर पर शोभा पाती है। श्री राम ने आये हुए राजाओं को छत्र आदि देकर और उन सबके गर्व तोड़कर, उन्हें अपने अपने राज्य को भेजा। उन्होंने स्वयं कई बड़े बड़े पर्व (उत्सव, यज्ञ आदि) किये।

कढ्यो काल पर्वं भए राम-राजं।
फिरी आन रामं, सिरे सर्व राजं॥
फिरो जैत-पत्रं सिरं सेत छत्रं।
करे राज आज्ञा धरे वीर अत्रं॥

इस प्रकार समय बीतता गया और राम-राज्य स्थापित हो गया। सभी राजाओं के लिए राम की आज्ञा शिरोधार्य हुई। राम के सम्राट् स्वरूप उनके सिर पर श्वेत छत्र लगा। राजा रूप में राम जो आज्ञा करते थे, उसे मानने के लिए अस्त्र-शस्त्र-धारी वीरगण सदा तत्पर रहते थे।

दियो एक एकं अनेकं प्रकारं।
लखे सर्ब लोकं सही रावणारं॥
सही विष्णु देवारिणं द्रोहहर्त्ता।
चहूँ चक्र जान्यो सिया-नाथ भर्त्ता॥

श्री राम ने भी एक-एक को अनेक प्रकार के सिरोपाव (सिर से पैर तक के कपड़े) दिये। सभी लोगों ने श्री राम को देवताओं के साथ द्वेष करनेवाले राक्षसों का नाशक या विष्णु रूप स्वीकार कर लिया; तथा चारों दिशाओं में उन्हें अपना स्वामी स्वीकृत कर लिया गया।

सही विष्णु औतार के ताहि जान्यो।
सबै लोक-ख्याता विधाता पछान्यो॥
फिरी चार चक्रं चतुर्चक्र धारं।
भयो चक्रवर्त्ती भुवं रावणारं॥

सभी लोगों ने श्री राम को श्री विष्णु का अवतार समझा और सभी लोकों का विधाता माना। सब जगह प्रसिद्ध हो गया कि श्री राम चारों दिशाओं के स्वामी और चक्रवर्ती सम्राट् हैं।

लख्यो राम जोगेन्द्र नो जोग रूपं।
महादेव देवं लख्यो भूप भूपं॥
महाशत्रु शत्रुं महा साधु साधं।
महारूप रूपं महाव्याध व्याधं॥

श्री राम को योगियों ने महा-योगी, देवताओं ने महादेव, राजाओं ने

महाराज, शत्रुओं ने अपना परम शत्रु, मित्रों ने परम मित्र, रूपवानों ने महारूप-धारी और व्याधों ने अपने लिए महा-व्याध रूप जाना।

त्रियं देव तुल्लं नरं नार नाहं।
महा जोध जोधं महा बाहु बाहं॥
श्रुतं वेद कर्त्ता गणं रुद्र रूपं।
महा जोग जोगं महा भूप भूपं॥

स्त्रियों ने श्री राम को देवता, पुरुषों ने राजा, योद्धाओं ने योद्धा, महाबाहु वीरों ने महावीर, वेदों ने वेदकर्त्ता ईश्वर-रूप, गणों ने रुद्र रूप, योगियों ने महायोगी और राजाओं ने महाराज के रूप में देखा।

परं पारगंता शिवं सिद्ध रूपं।
बुधं बुद्धिदाता रिधं रिद्ध रूपं॥
जहाँ भाव कै येन जैसे विचारे।
तिसी रूप सों तौन तैसे निहारे॥

मुक्त पुरुषों ने मुक्ति रूप, सिद्धों ने शिव रूप, बुध (चतुर) लोगों ने बुद्धिदाता और रिद्धि चाहनेवालों ने रिद्धि रूप में श्री राम को देखा। जिस किसी ने जो भाव लेकर श्री राम का ध्यान किया, उसे श्री राम उसी रूप में दिखाई दिये।

सबै शस्त्रधारी लखे शस्त्रगन्ता।
दुरं देव-द्रोही लखे प्राणहन्ता॥
जिमी भाव सों जौन जैसे विचारे।
तिसी रंग के काछ काछे निहारे॥

शस्त्रधारियों ने श्री राम को शस्त्रज्ञ तथा देव-द्रोही दुष्टों ने अपने प्राण-बिनाशक रूप में देखा। जिसने जिस भाव से श्री राम का ध्यान किया, उसने उसी रंग-रूप में उन्हें पाया।

भिन्न-तुका भुजंग-प्रयात छन्द

कितो काल बीत्यो भयो राम राजं ।
सबै शत्रु जीते महा युद्ध याली ॥
फिरो चक्र चारो दिशा मध्य रामं ।
भयो नाम ताते महा चक्रवर्ती ॥

श्री राम को राज्य करते हुए कुछ समय बीत गया । इस बीच में सभी बड़े-बड़े योद्धा शत्रु जीत लिये गये । श्री राम की आज्ञा का चक्र चारों दिशाओं में व्याप्त हो गया, इसी लिए उनका नाम महा-चक्रवर्ती पड़ा ।

सबै विप्र आगस्त्य तें आदि लै कै ।
भृगं अंगिरा व्यास तें लै वशिष्ठं ॥
विश्वामित्र औ बाल्मीकं सु अत्रं ।
दुर्वासा सबै कश्प तें आदि लै के ॥

सभी ब्राह्मण, तथा अगस्त्य से लेकर भृगु, अंगिरा, व्यास, वशिष्ठ, विश्वामित्र और वाल्मीकि, अत्रि, दुर्वासा, कश्यप आदि सभी ऋषिगण श्री राम से मिलने के लिए आये ।

जबै राम देखे सबै विप्र आये ।
परो धाइ पायं सिया-नाथ रामं ॥
दियो आसनं अर्घ्यं पादं गृहीतं ।
दई आशिषं मोननेशं प्रसन्नं ॥

जब श्री राम ने देखा कि सभी ऋषिगण तथा विप्रगण आ गये हैं, तब सीतापति श्री राम ने उन सबको आसन आदि से सन्तुष्ट करके उनका चरणोदक लिया । सभी मुनीश्वरों ने प्रसन्न हो होकर आशीर्वाद दिये ।

भई रीख रामं बड़ी ज्ञान-चर्चा ।
कहौं सर्व जो पै बढ़ै एक ग्रन्था ॥

विदा विप्प कीन्हें घनी दच्छिना दै।
चले देश देशं महा चित्त हर्षं॥

श्री राम तथा ऋषियों में अनेक प्रकार की ज्ञान की बातें हुईं। यदि उनका वर्णन किया जाय तो एक ग्रन्थ और बन सकता है। इसके बाद श्री राम ने उन्हें अनेक तरह की दक्षिणा देकर विदा किया, और वे सभी मन में प्रसन्न होते हुए देश-देशान्तरों को (जहाँ से आये थे) चल पड़े।

इही बीच आयो मृतं सून विप्रयं॥
जिये बाल आजं नहीं तोहि शरपं।
सबै राम जानी चितं ताहि बाता।
दिशं वारुणी तैं विवानं हँकाख्यो॥

इसी बीच वहाँ एक ऐसा ब्राह्मण आया, जिसका पुत्र मर गया था। वह कहने लगा कि मेरा बालक आज ही जीवित हो जाना चाहिए; नहीं तो मैं तुम्हें (राम को) शाप दूँगा। (क्योंकि तुम जैसे राजा के राज्य में पिता के होते हुए पुत्र नहीं मरना चाहिए; उसके मरने का उत्तरदायित्व तुम पर है।) श्री राम ने भी मन में उसकी सब बातें समझ लीं, और उसी समय (उसका दुःख दूर करने के लिए) वारुणी (पश्चिम) दिशा से एक विमान मँगवाया।

हुतो एक शूद्रं दिशा उत्र मद्धं।
झुले कूप अद्धं पख्यो औंध मुख्खं॥
महा उग्र तेजा तपस्यात उग्रं।
हन्यो ताहि रामं असं आप हत्थं॥

उत्तर दिशा की ओर एक शूद्र रहता था, जो औंधा मुँह (नीचे सिर) किये हुए कूएँ में लटककर तपस्या कर रहा था। वह उग्र तपस्वी था। श्री राम ने उसकी अनधिकार चेष्टा समझकर तलवार लेकर अपने हाथ से उसे मार डाला।

जियो ब्रह्म-पुत्रं हर्‍यो ब्रह्म-शोकं।
बढ़ी कीर्ति रामं चतुष्कोण मद्धं॥
कर्‍यो वर्ष साहस्र लौं औध राजं।
फिरे चक्र चारो विषै राम-दोही॥

श्री राम के ऐसा करते ही वह मरा हुआ ब्राह्मण-पुत्र जी उठा। इससे श्री राम की कीर्ति चारों दिशाओं में व्याप्त हो गई। इस तरह श्री राम ने (अनधिकार चेष्टा करनेवाले लोगों को मारकर) दस हजार वर्ष तक राज्य किया। चारों दिशाओं में श्री राम का नाम हो गया (उनका जय-जयकार होने लगा)।

जिते देश देशं नरेशं तमामं।
महा युद्ध जेता तिहूँ लोक जान्यो॥
दयो मन्त्रि अत्रं महा भ्रात भर्तं।
कियो सैन-नाथं सुमित्रा-कुमारं॥

श्री राम ने देश-देशान्तरों के राजा-महाराजाओं को जीत लिया, तीनों लोकों ने उन्हें महायुद्ध-जेता समझा। उन्होंने भरत को मन्त्री का पद दिया और छोटे भाई लक्ष्मण को सेनानायक बना दिया।

अमृत-गति छन्द

सुमति महा रिष रघवर।
दुंदुभि बाजत दर दर॥
जग की अस धुन घर घर।
पूर रही धुन सुर पुर॥

श्री राम वास्तव में महर्षि थे। उनके प्रताप की दुंदुभी प्रत्येक द्वार पर बजती थी। उनके पास सारे संसार की, प्रत्येक घर की, सूचना पहुँचा करती थी। उनके नाम की ध्वनि देव-लोक तक पहुँच गई थी।

सुढर महा रघुनन्दन ।
जग पत मुनि गन वन्दन ॥
घर घर लौं नर चीन्हें ।
सुख दै दुख बिन कीन्हें ॥

श्री राम बहुत सुघड़ थे। सभी राजा और मुनिगण उनकी वन्दना करते थे। पृथ्वी से लेकर पर्वत की सीमाओं तक लोगों ने श्री राम को अपना आधार समझा। श्रीराम ने भी सभी लोगों के दुःख दूर करके उन्हें सुख पहुँचाया।

नर कर जाने अर-हर ।
माने सुख-कर दुख-हर ॥
पुर घर नर वर सेहै ।
रूप, अनूप अभै है ॥

सभी लोगों ने श्री राम को शत्रुओं का नाश करनेवाला समझा और दुःख-हारी तथा सुखकारी जाना। अयोध्या के निवासी श्री राम के अनुपम रूप की निर्भयतापूर्वक सेवा करते थे।

अनका छन्द

प्रभू है। अजू है॥ अजै है। अभै है॥
अजा है। अता है॥ अलै है। अजै है॥

श्री राम सभी लोकों के स्वामी हैं, अयोनि है, अजेय और अभय हैं अजन्मा तथा स्वयं-प्रकृति रूप हैं और अता (पुरुष) रूप भी हैं (अर्थात् वे प्रकृति तथा पुरुष दोनों के रूप हैं)। वे अलय हैं (अर्थात् कभी उनका लय विनाश नहीं हो सकता) और अजेय हैं।

भुजंग-प्रयात छन्द

बुल्यो चतुर्भ्रातं सुमित्रा-कुमारं।
कह्यो माथुरेशं तिसे रावणारं॥

तहाँ एक दैतं लवं उग्र तेजं।
दियो ताहि अप्पं शिवं शूल भेजं ॥

श्री राम ने भरत और लक्ष्मण को राज-पद देने के बाद अपने छोटे भाई सुमित्रा-कुमार शत्रुघ्न को मथुरा का राजा बना दिया। वहाँ लव (अथवा लवण) नामक दैत्य रहता था, जो बहुत तेजस्वी था। स्वयं शिव ने उसे अपना त्रिशूल प्रदान किया था।

पठ्यो तीर मंत्रं दियो एक रामं।
महा युद्धमालो महा धर्म-धामं ॥
शिवं शूल-हीनं जबै शत्रु जान्यो।
तबै संग ताके महा युद्ध ठान्यो ॥

श्री राम ने (उस राक्षस को मारने के लिए) अभिमन्त्रित किया हुआ एक तीर देकर महाधर्म के धाम रूप तथा युद्धकर्ता शत्रुघ्न के पास भेजा। शत्रुघ्न भी बहुत बड़े योद्धा थे। उन्होंने जब अपने शत्रु को शिव के त्रिशूल से रहित देखा, तब उसके साथ युद्ध ठान दिया।

लिये मंत्र तीरं चल्यो नाइ सीसं।
त्रिपुर युद्ध चल्ल्यो तबै जान ईशं ॥
लख्यो शूल-हीनं रिपं जौन कालं।
तबै कोप मंड्यो रणं बिक्करालं ॥

राम का दिया हुआ वह अभिमन्त्रित बाण लेकर शत्रुघ्न सिर झुकाकरउसे चलाने लगे। त्रैलोक्य तक को युद्ध में जीत लेनेवाले त्रिशूल से जब शत्रुघ्न ने अपने शत्रु को रहित देखा, तब क्रोधित होकर विकराल युद्ध आरम्भ किया।

भजे घाइ खायं अघामंत सूरं।
हँसैं कंक बंकं घुमी गैन हूरं ॥
उठे रोप टुक्कं कमानं प्रहारे।
रणं रोप्र गज्जे महाछत्र धारे ॥

घाव-रहित शूर-वीर घाव खाकर भाग निकले, चील तथा बगले मांस के लोभ से प्रसन्न होकर हँस पड़े और आकाश में अप्सराएँ घूमने लगीं। युद्ध में बाणों की चोट से शिरस्त्राण (खोद या टोप) टूट गये। बड़े बड़े छत्रधारी योद्धा रण में रोष करते हुए गर्जन करते थे।

फिर्यो अप्प दैतं महा रोष कै कै।
हने राम भ्रातं वहै बाण लै लै॥
रिपं नाश हेतं दियो राम आपं।
हन्यो ताहि सीसं दुगा जाप जापं॥

स्वयं वह लवण राक्षस महान् क्रोध में भरकर युद्ध-क्षेत्र में घूम रहा था। शत्रुघ्न ने श्री राम द्वारा दिया हुआ शत्रु-नाशक बाण दुर्गा का जप करते हुए उस राक्षस के सिर पर चलाया।

गिर्यो झूम भूमं मधू मै अधायं।
हन्यो शत्रु-हन्ता तिसै चोप चायं॥
गणं देव हर्षे प्रवर्षन्त फूलं।
हत्यो दैत द्रोही मिट्यो सर्व शूलं॥

जब लवण राक्षस चोट खाकर पृथ्वी पर लड़खड़ाकर गिर पड़ा, तब शत्रुघ्न ने बहुत उत्साह से उसे मार डाला। सभी देवता प्रसन्न होकर फूल बरसाने लगे, क्योंकि देव-विरोधी दैत्य मारा गया और सबके कष्ट दूर हुए।

लवंनासुरै कै लवं कीन्ह नाशं।
सबै संत हर्षे रिपं भे उदासं॥
भजे प्राण लै लै तज्यो नग्र-वासं।
कर्यो माथुरेशं पुरी वान वासं॥

जब शत्रुघ्न ने लवण असुर को मार डाला, तब सभी महात्मा प्रसन्न हुए और शत्रुओं पर उदासी छा गई। वे सभी नगर का रहना छोड़कर और

प्राण बचाकर भाग निकले। मथुरेश (शत्रुघ्न) ने मथुरा को दानवों या राक्षसों से रहित कर दिया।

भयो माथुरेशं लवन्नासु हन्ता।
सबै शस्त्र-गामी शुभं शास्त्र-गन्ता॥
भए दुष्ट दूरं करूरं सुठामं।
कर्‍यो राज तैसो जिमं औध रामं॥

लवणासुर को मारनेवाले तथा सभी प्रकार के शस्त्रास्त्रों का ज्ञान रखनेवाले शत्रुघ्न जब मथुरा के राजा बने, तब क्रूर और दुष्ट लोग दूर हो गये। शत्रुघ्न ने भी वहाँ वैसा ही राज्य किया, जैसा अयोध्या में श्री राम ने किया।

कर्‍यो दुष्ट नाशं पपातंत सूरं।
उठी जै धुनं पुर रही लोक पूरं॥
गई पार सिंधं सुबिंधं पहारं।
सुन्यो चक्र चारं लवं लावणारं॥

शत्रुघ्न सचमुच दुष्ट-नाशक और बड़े-बड़े शूर-वीरों को जीतनेवाले थे। लवण राक्षस के मरने पर उसके नाशक श्री शत्रुघ्न की जय-ध्वनि से सारा संसार भर गया। वह जय-ध्वनि विन्ध्य पर्वत पार करके समुद्र तक पहुँची। लवण के मरने का समाचार और शत्रुघ्न की विजय-कीर्ति चारों दिशाओं में फैल गई।

अथ सीता को वनवास देना

भुजंग-प्रयात छन्द

भई एम तौने इतै इक श्रृणारं।
कही जानकी सो सु कत्थं सुधारं॥
रचो एक बागं भिरामं सुशोभं।
लखे नन्दनं जौन की कांत छोभे॥

इधर सुनने योग्य एक यह बात हुई कि सीता जी ने श्री राम से कहा कि एक ऐसे बहुत सुन्दर उपवन की रचना करवाइये जो परम शोभाशाली हो और जिसके आगे नन्दन वन की शोभा भी फीकी हो।

सुनी राम वाणी सिया धर्म-धामं।
रच्यो एक बागं महा आभिरामं॥
मणी-भूषितं हीर चीरं अनन्तं।
लखे इन्द्र पत्थं लजे शोभवन्तं॥

धर्म के स्थान रूप श्री राम ने सीता जी की यह बात सुनकर एक सुन्दर बाग की रचना करवाई, जिसके रास्तों पर मणियों, हीरों और अनेक प्रकार के वस्त्रों आदि से सजावट की गई थी। उसे देखकर इन्द्र-पथ (स्वर्ग का रास्ता) भी लज्जित होता था।

मणी माल वज्रं सुशोभायमानं।
सवै देव देवं दुती स्वर्ग जानं॥
गए राम तामें सिया संग लीने।
कई कोट दासी सबै संग कीने॥

उस उपवन में मणियों और हीरों की शोभा व्याप्त थी, जिनके कारण देवता उस उपवन को दूसरा स्वर्ग समझने लगे। सीता को लेकर श्री राम उस बाग में पहुँचे। उनके साथ कई करोड़ (बहुत अधिक) दासियाँ थीं।

रच्यो एक भौनं महा शुभ्र ठायं।
कर्यो राम सैनं तहाँ धर्म-धामं ॥
करी एक खेलं सुबेलं सुभोगं।
हुतो जौन कालं समै जैस जोगं ॥

श्री राम ने एक भवन बनवाया। वहाँ उन्होंने समयानुसार अनेक प्रकार की केलियाँ और सुख-भोग किये और कुछ समय बिताया।

रह्यो सीय गर्भं सुन्यो सर्व वामं।
कह्यो एम सीता पुनर्बैन रामं ॥
फिरयो बाग बागं विदा नाथ दीजै।
सुनो प्राण प्यारे इहै काज कीजै ॥

इस प्रकार आनन्द मनाते हुए सीता ने गर्भ धारण किया। यह बात सभी स्त्रियों ने सुनी। एक दिन सीता जी ने श्री राम से जंगल में घूमने की इच्छा प्रकट की और कहा—महाराज, मुझे विदा दीजिए। हे प्राण-प्रिय, यह काम अवश्य कीजिए (गर्भिणी की इच्छा पूर्ण कीजिए)।*

---

* कई लेखकों ने धोबी आदि की कल्पना के द्वारा और कइयों ने स्वयं राम के मन में सन्देह उत्पन्न करा के सीता का परित्याग कराया है। परन्तु यहाँ हमारे कवि ने स्वयं सीता से वन जाने की इच्छा प्रकट करवाई है। उन्होंने सीता के परित्याग की कल्पना में यह भाव रखा है कि श्री राम सीता को वान-प्रस्थ लेने से पहले जंगल के दुःखों से परिचित करा देना चाहते थे। यद्यपि पहले भी सीता बहुत कुछ कष्ट उठा चुकी थीं, परन्तु राज्य पाने के बाद वह उन्हें भूल गई थीं। इसलिए श्री राम उन्हें पहले ही सचेत और सावधान कर देना चाहते थे। इसके अतिरिक्त उनका और कोई अभिप्राय नहीं था।

दियो राम संगं सुमित्रा-कुमारं।
दई जानकी संग ताके सुधारं॥
जहाँ घोर सालं तमालं विशालं।
तहाँ सीय को छोर आयो उताले॥

तब श्री राम ने सुमित्रा-कुमार लक्ष्मण को सीता के साथ कर दिया (अर्थात् सीता को वन में ले जाने के लिए कहा)। लक्ष्मण भी सीता जी को सालों और तमालों से भरे हुए गहन वन में छोड़कर लौट आये।

वनं निर्जनं देख कै कै अपारं।
वनंवास जान्यो दियो रावणारं॥
सरोदं सुर उच्च पातंत प्राणं।
रणे जेम वीरं लगे मर्म बाणं॥

उधर सीता ने जब निर्जन वन देखा, तो समझा कि शायद श्री राम ने मुझे वनवास दिया है। तब वह ऊँचे स्वर से रोने लगीं और रोते-रोते बेहोश होकर इस प्रकार गिर पड़ीं, जैसे युद्ध में मर्म-घातक बाण लगने पर कोई शूर-वीर गिरता है।

सुनी बालमीक श्रुतं दीन वाणी।
चल्यो चौंक चित्तं तजी मोन-धानी॥
सिया संग लीने गयो धाम आपं।
मनं वच्च कर्मं दुगा जान जापं॥

सीता जी की यह चीख-पुकार महर्षि वाल्मीकि ने सुनी। वे चौंक पड़े और अपना शान्त आश्रम छोड़कर उस तरफ चल पड़े। वहाँ जाकर वे सीता को अपने साथ ले आये और उसे दुर्गा समझकर मन, वाणी और कर्म से उन का जप करने लगे (अर्थात् उनकी सेवा में लग गये)।

भयो एक पुत्रं तहाँ जानकी कै।
मनो राम कीनो दुती राम लै लै॥

वहै चारु चिह्नं वहै उग्र तेजं।
मनो अप्प अंशं दुती काढि भेजं॥

वाल्मीकि के आश्रम में ही श्री सीता को एक पुत्र हुआ। मानो साक्षात् राम की दूसरी आकृति लेकर, राम का दूसरा रूप लेकर ही वह बालक उत्पन्न हुआ हो। उसमें सभी शुभ लक्षण थे, मानो स्वयं राम ने अपने अंश की कांति निकालकर अपने दूसरे रूप में सीता के पुत्र में रख दी थी।

दियो एक पालं सुबालं रिखीसं।
लसै चंद्र रूपं किधौं द्यौस ईसं॥
गयो एक दिवसं रिखी संधयानं।
लियो बाल संगं गई सीय न्हानं॥

तब ऋषीश्वर ने उस पुत्र के लिए एक पालना लाकर दिया। वह पालना भी उस बालक के कारण इतना सज उठा था कि मानो चन्द्रमा अथवा सूरज का रूप लिये हो। एक दिन सन्ध्या समय वाल्मीकि जी जब सीता की कुटिया के पास पहुँचे, उस समय बालक को साथ लेकर सीता जी स्नान करने के लिए गई थीं। (सीता जी सदा अपने बालक को मुनि के सपुर्द करके जाती थीं, परन्तु उस दिन ऐसा हुआ कि वाल्मीकि जी किसी ध्यान में थे और किसी अज्ञात भय से सीता बालक को अपने साथ ही ले गई थीं।)

रही जात सीता महा मौन जागे।
विना बाल पालं लख्यो शोक पागे॥
कुशा हाथ लेके रच्यो एक बालं।
तिसी रूप रंगं अनूपं उतालं॥

पहले जब कभी सीता जी कहीं जाती थीं, तब महर्षि सावधान रहते थे (अर्थात् बालक की रखवाली करते थे)। परन्तु आज पालने को बिना बालक के देखकर उन्हें शोक (कई प्रकार की शंकाओं) ने घेर लिया।

उन्होंने तुरन्त कुश हाथ में लेकर एक अन्य बालक की सृष्टि कर डाली, जो रूप, रंग और आकृति में बिलकुल उस पहले बालक की तरह था।

फिरी न्हाय सीता कहा आन देख्यो।
उही रूप बालं सुपालं त्रिसेख्यो॥
कृपा मोनराजं घनी जान कीनो।
दुती पुत्र ताते कृपा जान दीनो॥

इधर जब सीता जी स्नान करके लौटीं, तब आकर देखा कि पहले बालक की तरह का एक और बालक पालने में पड़ा है। सीता जी ने इसे महा-मुनि की परम कृपा समझी। उन्होंने सोचा कि मुनि ने कृपा करके मुझे दूसरा पुत्र प्रदान किया है।

उतै बाल पालै इतै औध राजं।
बुलै विप्र जज्ञं तज्यो एक बाजं॥
रिपं-नाश-हंता दियो संग ताके।
बड़ी फौज लीने चल्यो संग वाके॥

उधर (वन में) सीता जी बालकों के लालन-पालन में लगी थीं और इधर अयोध्या में अवध-राज श्री राम ने ब्राह्मणों को बुलाकर यज्ञ का आयोजन किया। उसके लिए एक अश्व (घोड़ा) छोड़ा गया। उस अश्व के साथ शत्रुघ्न बहुत बड़ी सेना देकर भेजे गये। शत्रुघ्न भी उस अश्व की रक्षा के लिए सेना सहित चल पड़े।

फिर्‍यो देश देशं नरेशान बाजं।
किनी नाहिं बाँध्यो मिले आन राजं॥
महा उग्र धन्वा बड़ी फौज लै कै।
परे आन पायं बड़ी भेंट दै कै॥

वह अश्व देश-देशान्तरों के राजाओं के राज्य में घूमा, परन्तु किसी ने उसे नहीं बाँधा (नहीं रोका)। सभी राजा शत्रुघ्न आदि का स्वागत करने

के लिए आ-आकर मिले। बड़े-बड़े योद्धा और धनुषधारी महान् सेना तथा बड़ी-बड़ी भेंटें और उपहार लेकर शरण में आये।

दिशा चार जीती फिर्‍यो फेरि बाजी।
गयो बालमीकी रिखी स्थान ताजी॥
जबै भाल पत्रं लवं छोर बाँच्यो।
बड़ो उग्र धन्वा रसं रौद्र राच्यो॥

चारों दिशाओं को इसी प्रकार विजय करता हुआ वह अश्व वाल्मीकि मुनि के आश्रम की ओर जा निकला। वहाँ सिया-पुत्र लव ने जब उसे देखा और उसके माथे पर लगा हुआ पत्र खोलकर पढ़ा, तब उग्र तेज-युक्त महा धनुषधारी लव रौद्र रस से भर गया।

वृछं बाजि बाँध्यो लख्यो शस्त्रधारी।
बड़ो नाद कै सर्व सेना पुकारी॥
कहाँ जात रे बाल लीने तुरंगं।
तजो नाहिं या के सजो आन जंगं॥

लव ने वह घोड़ा पकड़कर वृक्ष से बाँध दिया। यह देखकर शत्रुघ्न की ओर से सभी सेना कहने लगी—अरे बालक, तू इस घोड़े को लेकर कहाँ जाता है ? इसे छोड़ दे। नहीं तो हमारे साथ आकर युद्ध कर।

सुन्यो नाम जुद्धं जबै श्रोण शूरं।
महा शस्त्र सोढ़ा (?) महा लोह पूरं॥
हटे वीर हाठे सबै शस्त्र लै कै।
परो मध्य सैन्यं बड़ो नाद कै कै॥

जब शूर-वीर लव ने युद्ध का नाम सुना, तब महाशस्त्र-धारियों तथा बड़े-बड़े कवचधारियों की भी परवाह न करते हुए, वह ललकारता हुआ सेना के मध्य में आ पहुँचा।

भली भाँति मारे पछारे सु शूरं।
गिरे जुद्ध जोधा रही धूर पूरं॥
उठी शस्त्र झारं अपारंत वीरं।
भ्रमे रुण्ड मुण्डं तनं तच्छ तीरं॥

लव ने सेना में जाकर कई वीरों को पछाड़ा और कइयों को मार गिराया। उनके साथ लड़ते समय शस्त्रों से आग निकलती थी। लव ने अपने तीखे तीरों से कइयों के शरीर काट दिये। युद्ध में रुण्ड-मुण्ड लोटने लगे।

गिरे लुत्थ पत्थं सु जुत्थंत वाजी।
भ्रमें छूछ हाथी बिना स्वार ताजी॥
गिरे शस्त्र हीनं विअस्तंत शूरं।
हँसे भूत प्रेतं भ्रमी गैन हूरं॥

लाशों पर लाशें पट गईं, घोड़ों के झुण्ड गिरने लगे। हाथी और घोड़े सवारों से रहित होकर इधर-उधर भागने लगे। शस्त्रों और प्राणों से रहित होकर शूर-वीर गिरने लगे। यह युद्ध देखकर भूत-प्रेत हँसने लगे और आकाश में अप्सराएँ घूमने लगीं।

घनंघोर नीशान बज्जे अपारं।
खहे वीर धीरं उठी शस्त्र झारं॥
चले चारु चित्रं विचित्रंत बाणं।
रणं रोष रज्जे महा तेजवानं॥

बादलों की गरज की तरह अनेक प्रकार के धौंसे बजने लगे, धीर वीर योद्धा आपस में लड़ने लगे। लड़ते समय उनके शस्त्रों से आग निकलती थी। अनेक प्रकार के बाण चलने लगे। महा तेजस्वी योद्धा रण के रोष में भरे हुए युद्ध में जुट गये।

चाचरी छन्द

उठाई। दिखाई॥ नचाई। चलाई॥

'कई योद्धाओं ने अपनी तलवारें पकड़ीं और एक दूसरे (शत्रु) को दिखाकर नचाते हुए चलाई'।

भ्रमाई। दिखाई॥ कँपाई। चखाई॥

तलवार घुमा-घुमाकर एक दूसरे को दिखाई और उसे कँपाते हुए शत्रु को लड़ने का स्वाद चखा दिया।

कटारी। अपारी॥ प्रहारी। सुनारी॥

शत्रुओं पर चमकीली कटारें चलाईं।

पचारी। प्रहारी॥ हकारी। कटारी॥

अभिमान में भरकर कटारियाँ एक दूसरे की ओर फेंकी।

उठाये। गिराये॥ भगाये। दिखाये॥

अपने अपने शस्त्र उठाकर एक दूसरे को दिखाये और उनपर फेंककर शत्रुओं को भगा दिया।

चलाये। पचाये॥ त्रसाये। चुटाये॥

ललकारते हुए शत्रुओं को मार डाला। उन्हें डरा दिया और भगा दिया।

अनका छन्द

जब सर लागे। तब सब भागे॥
दलपत मारे। भट भटकारे॥

जब लव-कुश ने तीखे तीर चलाये, तब (राम की सेना के) सब शूर-वीर भाग गये। उन्होंने कई सेनापति मार डाले और कई शूर-वीर तड़पा दिये।

हय तज भागे। रघुवर आगे॥
बहु विधि रोवैं। समुहि न जोवैं॥

कई शूर-वीर अपने अपने घोड़े छोड़कर भाग निकले और श्रीराम के आगे जाकर नाना प्रकार से विलाप करने लगे। वे इतने डर गये थे कि सामने देखने में भी समर्थ न थे।

लव अरि मारे। तव दल हारे॥
द्वै सिसु जीते। नहिं भय भीते॥

(प्रार्थना करते हुए वे कहने लगे)—हे राम! लव ने अपने अरि (शत्रुघ्न) को खूब मारा है और आपकी सेना हार गई है। वे दोनों बालक युद्ध में जीत गये हैं, उन्हें किसी का भय नहीं है।

लछमन भेजा। बहु दल ले जा॥
जनि सिस मारू। मोहिं दिखारू॥

(तब श्रीराम ने कहा) लक्ष्मण! तुम जाओ और अपने साथ बहुत-सी सेना ले जाओ। परन्तु बालकों को मारना नहीं, उन्हें लाकर मुझे दिखलाओ।

सुन लघु भ्रातं। रघुवर बातं॥
सज दल चल्ल्यो। जल-थल हल्ल्यो॥

तब छोटे भाई लक्ष्मण ने श्रीराम की बात सुनी और वे सेना सजाकर चल पड़े। सेना के चलने से जल-थल काँपने लगे।

उठ दल धूरं। नभ झड़ पूरं॥
चहुँ दिस ढूके। हरि हरि कूके॥

सेना के चलने से इतनी धूल उड़ी कि आकाश में फैलने के कारण बादल-से छा गये और चारों दिशाएँ भर गईं। सेना के लोग 'हरो-हरो' अर्थात् 'मारो-मारो' की पुकार करने लगे।

बरसत बाणं। थिरकत ज्वानं॥
लह-लह धुजनं। खह-खह भुजनं॥

जब युद्ध में तीर चलने लगे, तब बड़े बड़े योद्धाओं के पैर उखड़ गये।

सेना में चारों ओर झण्डे-झण्डियाँ लहरा रही थीं और शूर-वीरों की भुजाएँ एक दूसरे से गुत्थम-गुत्था हो रही थीं अर्थात् भिड़ रही थीं।

हँसि हँसि ढूके। कसि कसि कूके॥
सुन सुन बालं। हठ तज उतालं॥

वे सभी हँसते हुए भिड़ रहे थे और जोर जोर से चिल्ला रहे थे—अरे बालको! सुनो, हठ छोड़कर शीघ्र शरण में आ जाओ।

दोहा

हम नहिं त्यागत बाजि वर, सुनि लछमना कुमार।
अपनो भर बल जुद्ध कर, अब ही संक बिसार॥

(लव कुश ने उत्तर दिया) हे लक्ष्मण! अच्छी तरह सुन लो कि हम यह घोड़ा नहीं छोड़ेंगे। तुम अपना सारा बल लगाकर आज निश्शंक होकर युद्ध करो।

अनका छन्द

लछमन गरज्यो। बड़ धनु सरज्यो॥
बहु सर छोरे। जनु घन ओरे॥

यह ललकार सुनकर लक्ष्मण क्रोध से गरजने लगे और विशाल धनुष सँभालकर उन्होंने अनेक बाण बरसाये। ऐसा प्रतीत होता था कि बादलों से ओले बरस रहे हों।

उत दिव देखैं। धन धन लेखैं॥
इत सर छूटैं। मस कण टूटैं॥

ऊपर आकाश में देवगण यह दृश्य देख रहे थे और 'धन्य धन्य' कह रहे थे। उधर बाण चल रहे थे और मांस के टुकड़े हो होकर गिर रहे थे।

भटवर गाजैं। दूँदभ बाजैं॥
सर वर छोरैं। मुख नहिं मोरैं॥

शूर-वीर ललकार रहे थे, दुंदुभियाँ बज रही थीं, तीर चल रहे थे, पर कोई शूर-वीर मुँह नहीं मोड़ रहा था।

शिशु प्रति लक्ष्मण उवाच

श्रणु श्रणु लरका। जनि कर करखा॥
दे मिलि घोरा। तुम्हि बल थोरा॥

लक्ष्मण ने कहा—अरे लड़को! सुनो, तुम युद्ध मत करो; क्योंकि तुम्हारा बल बहुत थोड़ा है। घोड़ा देकर हम से मिल जाओ।

हठि तज अइए। जनि समुँहइए॥
मिलि मिलि मो कों। डर नहिं तो कों'॥

हठ छोड़कर आ जाओ और हमारा सामना करने का प्रयत्न न करो, बल्कि आकर हम से मिल जाओ। हम तुम्हें कुछ न कहेंगे, तुम्हें किसी प्रकार का डर नहीं होना चाहिए।

सिस नहिं मानी। अति अभिमानी॥
गहि धनु गज्ज्यो। दु पग न भज्ज्यो॥

यह सुनकर भी वे बालक नहीं माने। वे बहुत अभिमानी थे; इसी लिए धनुष लेकर गरजने लगे और दो कदम भी पीछे न हटे।

अजबा छन्द

रुद्धे रण भाई। सर झड़ लाई॥
बरखे बाणं। परखे ज्वानं॥

दोनों भाई रण में डटे रहे और उन्होंने बाणों की झड़ी-सी लगा दी। इस प्रकार वे मानो शूर-वीरों को परखने लगे अर्थात् यह देखने लगे कि कौन शूर-वीर हमारे बाणों के सामने ठहरता है और कौन भागता है।

डिग्गे रण मद्धं । अद्धो अद्धं ॥
कट्टे अंगं । रुज्झे जंगं ॥

कई शूर-वीर चोट खाकर रण में गिर रहे थे और कई आधे कटे हुए थे। उन सबके अंग कट रहे थे; फिर भी वे युद्ध में लगे हुए थे।

बाणन झड़ लायो । सर्व रिसायो ॥
बहु अरि मारे । डील डरारे ॥

सभी शूर-वीरों ने क्रोध में भरकर बाणों की झड़ी लगा दी। लव ने भी कई ऐसे वीरों को मार गिराया जिनके डील-डौल भय उत्पन्न करनेवाले थे।

डिग्गे रण भूमं । नर वर घूमं ॥
रज्जे रण घायं । चुक्के चायं ॥

कई योद्धा रण भूमि में घूम-घूमकर गिर पड़े और कई शूर-वीरों को इतने घाव लगे कि उनमें और घाव सहने की शक्ति ही न रही। इसी लिए मानो उनका लड़ने का चाव भी ठण्डा हो गया।

अपूर्व छन्द

गनों केते । हनो जेते ॥
कई मारे । किते हारे ॥

कवि कहते हैं—किस किसको गिनें जो मारे जा चुके हैं। कई तो मारे जा चुके और कितने हार मानकर भाग निकले।

सबै भाजे । चितं लाजे ॥
भजे भै के । जियं लै के ॥

कई तो हार जाने से मन में इतने लज्जित हुए कि प्राण बचाने की इच्छा से डरकर भाग ही गये।

फिरे जेते । हने तेते ॥
किते घाए । किते धाए ॥

यदि कुछ लौटकर लड़ने के लिए आये भी तो वे सभी मारे गये; और उनमें से भी कई फिर घायल हो गये तथा कई फिर भाग निकले ।

सिसं जीते । भटं भीते ॥
महा क्रुद्धं । कियो जुद्धं ॥

बहुत क्रोध में भरकर युद्ध करनेवाले दोनों बालक जीत गये और अच्छे-अच्छे योद्धा डर गये ।

दुऊ भ्राता । खगं ख्याता ॥
महा जोधं । मँडे क्रोधं ॥

तलवार के धनी महायोद्धा क्रोध में भरे हुए दोनों भाई (लव तथा कुश) तलवारें चमका रहे थे ।

तजे बाणं । धनुं तानं ॥
मचे वीरं । भजे भीरं ॥

वे धनुष खींच खीचकर बाण छोड़ रहे थे । शूर-वीर रण में मस्त हो रहे थे, परन्तु कायर भाग रहे थे ।

कटे अंगं । भजे जंगं ॥
रणं रूझे । नरं जूझे ॥

कइयों के अंग कट गये, इसलिए वे रण से भाग निकले । परन्तु जो जूझ पड़े, वे वहीं समाप्त हो गये ।

भजी सैनं । बिना चैनं ॥
लषण वीरं । फिर्‍यो धीरं ॥

तब तो बे-चैन होकर सारी सेना भाग निकली । केवल लक्ष्मण धीरज से खड़े रहे ।

इकै बाणं । रिपं तानं ॥
हन्यो भालं । गिर्‍यो तालं ॥

तब रिपु (लव आदि) ने धनुष खींचकर एक बाण ऐसा मारा जो लक्ष्मण के माथे में लगा और वह तत्काल धरती पर गिर पड़े ।

अड्हा छन्द

भाज गयो दल त्रास कै कै ।
लछमनं रण-भूम दै कै ॥
खले रामचन्द्र हुते जहाँ ।
भट भाज भग्गल गे तहाँ ॥

लक्ष्मण को इस प्रकार गिरता देखकर 'सारी सेना भाग खड़ी हुई और जहाँ श्री राम खड़े (स्थित) थे, वहाँ भग्गल (भगोड़े) शूर-वीर पहुँचे ।

जब जाय बात कही उन्हैं ।
बहु भाँत शोक दियो तिन्हैं ॥
सुनि बैन मोन रहै बली ।
जनु चित्र पाहन की खली ॥

जब उन सबने लक्ष्मण के इस प्रकार गिरने का वर्णन किया, तो राम को बहुत शोक हुआ और वे उन योद्धाओं की वीरता की बातें सुनकर इस तरह सन्न हो गये, जेसे पत्थर की मूर्त्ति चुपचाप खड़ी रहती है ।

पुनि बैठ मंत्र विचारियो ।
तुम जाहु भरत उचारियो ॥
मुनि-बाल द्वै जनि मारियो ।
धरि आन मोहिं दिखारियो ॥

फिर शान्तिपूर्वक बैठकर श्री राम ने कुछ सोचा और तब भरत से कहा— भरत, तुम जाओ और उन मुनि-बालकों को पकड़ लाओ; परन्तु उन्हें मारना नहीं, बल्कि लाकर मुझे दिखलाना ।

सजि सैन भरत चले तहाँ।
रण बाल वीर मँडे जहाँ॥
वहु भाँति वीर सँघारहीं।
सर ओघ ओघ प्रचारहीं॥

भरत सेना प्रस्तुत करके उस युद्ध-भूमि की ओर चल पड़े, जहाँ उन दोनों बालकों ने युद्ध ठान रखा था। वे दोनों नाना प्रकार से तीरों की बौछारें करके वीरों का संहार कर रहे थे।

सुग्रीव और विभीषनं।
हनुमन्त अंगद रीछनं॥
बहु भाँति सैन बनाइ कै।
तिन पै चल्यो समुहाइ कै॥

सुग्रीव, विभीषण, हनुमान, अंगद और (रीछ) जाम्बवान आदि कई सेनापतियों से युक्त सेना सजाकर उन दोनों बालकों का सामना करने के लिए भरत चल पड़े।

रण-भूमि भरत गए जवै।
मुनि बाल दोइ लखे तवै॥
दुइ काक-पच्छा सोभहीं।
लख देव-दानौ लोभहीं॥

जब भरत युद्ध-भूमि में पहुँचे, तब उन्होंने उन दोनों बालकों को देखा जो काले और घुँघराले केशों के काक-पक्षवाले और अपनी अतुल शोभा से देवताओं और दानवों तक को मोहित कर लेनेवाले थे।

भरत उवाच लव सों

मुनि-बाल छाँड़हु गर्व।
मिलि आन मोहू सर्व॥

लै जाहिं राघव तीर।
तुहिं नीक दै कै चीर॥

भरत ने लव से कहा—अरे मुनि-कुमारो, अभिमान छोड़ दो और हर तरह से (मन से) मुझसे आ मिलो (अधीन हो जाओ)। मैं तुम्हें अच्छे-अच्छे वस्त्र पहनाकर श्री राम के पास ले चलूँगा।

सुनतै भरे सिस मान।
कर कोप तान कमान॥
बहु भाँति सायक छोर।
जनु अभ्र सावन ओर॥

भरत के ये वाक्य सुनकर वे दोनों बालक स्वाभिमान से भर गये और क्रोधित होकर धनुष तानकर अनेक प्रकार से इस तरह बाण चलाने लगे, मानो श्रावण के महीने में बादलों से ओले गिर रहे हों।

लागे सु सायक अंग।
गिर गे सुबाह उतंग॥
कहुँ अंग भंग सुबाह।
कहुँ चौंर चीर सनाह॥

उनके चलाये हुए वे तीखे बाण जिस किसी को लग गये, वही एक दम से उलटकर गिर पड़ा। कहीं किसी वीर का कोई अंग कट गया और कहीं चँवर और वस्त्र गिरने लगे।

कहुँ चित्र चारु कमान।
कहुँ अंग जोधन बाण॥
कहुँ अंग घाइ भभक्क।
कहुँ श्रोण-सरित छलक्क॥

कहीं विचित्र प्रकार की कमानें (धनुष) गिरने लगीं और कहीं बाणों से

छिदे हुए योद्धा गिरने लगे। कहीं फटे हुए अंगों से भक-भक करता हुआ रक्त बहने लगा और कहीं खून की नदियाँ चल पड़ीं।

कहुँ भूत-प्रेत भकंत।
कहुँ अध कवंध उठंत॥
कहुँ नाच वीर वताल।
सो वमत डाकन ज्वाल॥

कहीं भूत-प्रेत बोलने लगे और कहीं आधे कटे हुए धड़ (कबंध) उठ कर भागने लगे। कहीं वीर वैताल नाचने लगे तो कहीं डाकिनियाँ ज्वाला उगलने लगीं।

रण घाइ घाए वीर।
सव स्रोण भीगे चीर॥
इक वीर भाज चलंत।
इक आन जुद्ध जुटंत॥

युद्ध-भूमि में वीर घाव खा-खाकर गिर रहे थे। सभी के वस्त्र रक्त से भरे थे। कुछ वीर भाग रहे थे और कुछ उत्साह करके युद्ध में जुट (लग) रहे थे।

इक पैंच पैंच कमान।
तक वीर मारत बाण॥
इक भाज भाज मरंत।
नहिं सुरग तौन वसंत॥

कुछ शूर-वीर अपने धनुष खींच-खींचकर और निशाना साधकर बाण चलाने लगे और कुछ भागने लगे; कुछ वहीं गिरे और मर गये। सचमुच ऐसे योद्धाओं को स्वर्ग नहीं प्राप्त हो सकता।

गज-राज बाजि अनेक।
जुज्झे, न बाँचा एक॥

तब आन लंका-नाथ ।
जूझ्यो सिसुन के साथ ॥

अनेक हाथी, घोड़े उस युद्ध में मारे गये । जूझनेवाला एक भी जीवित न बचा । यह देखकर लंकानाथ विभीषण ने स्वयं आकर उन बालकों से युद्ध आरम्भ किया ।

बहोड़ा छन्द

लंकेश के उर मों तक्क बाण ।
मार्‍यो राम-सिस तजि कान ॥
तब गिर्‍यो दानव सु भूमि मद्ध ।
तेहि बिसुध जान नहिं कियो बद्ध ॥

इधर श्री राम-पुत्र लव ने ताककर विभीषण की छाती में निर्भयतापूर्वक बाण मारा । बस वह दानव (विभीषण) उसी समय भूमि पर गिर पड़ा । उसे बेसुध समझकर बालकों ने उसका वध नहीं किया ।

तब रुक्यो तासु सुग्रीव आन ।
कहँ जात बाल नहिं पैस जान ॥
तब हन्यो बाण तिह भाल तक्क ।
तिह लग्यो भाल मों रह्यो चक्क ॥

तब क्रोध में भरकर सुग्रीव आगे बढ़ा और उन बालकों को ललकार कर कहने लगा—अरे ! कहाँ जाते हो ! अब तुम बचकर नहीं जाने पाओगे । लव ने उसका मस्तक ताककर ऐसा बाण मारा कि वह चक्कर खाकर गिर पड़ा ।

चप चली सैन कपनी सु क्रुद्ध ।
नल नील हनू अंगद सु जुद्ध ॥
तब तीन तीन लै बाल बाण ।
तिह हने भाल मों रोष ठान ॥

तब गुस्से में भरकर सारी वानर सेना, जिसमें नल, नील, हनुमान, अंगद आदि वीर थे, उन बालकों की ओर बढ़ी। उन्होंने भी तीन-तीन बाण हाथों में लेकर और क्रोध में भरकर उनके मस्तक पर मारे।

जो गए सूर सो रहे खेत।
जो बचे भाज ते हुइ अचेत॥
तब तकि-तकि सिस कस्सि बाण।
दल हत्यो राघवी तज्जि कान॥

जो शूर-वीर लड़ने आया, वही मारा गया; परन्तु जो भाग निकला अथवा अचेत हो गया, वह बच गया। बालकों ने और भी कस कसकर तीर चलाये और श्री रामचन्द्र जी की सारी सेना को मौत की नींद सुला दिया।

अनूप नराच छन्द

सु कोप देखि कै बलं सुक्रुद्ध राघवी सिसं।
विचित्र चित्रितं सरं ववर्ष वर्षणो रणं॥
भभज्ज आसुरी सुतं उठंत भै-करी धुनं॥
भ्रमन्त कुण्डली कृतं पपीड़ दारुणं सरं॥

श्री राम-पुत्र लव और कुश राम की सेना का कोप देखकर बहुत क्रोध करते थे और विचित्र प्रकार से बाणों की वर्षा करते थे। आसुरी सुत (विभीषण) की सेना भाग रही थी। भयानक कोलाहल हो रहा था। परन्तु वे दोनों बालक घेरे में चारों ओर घुम रहे थे और तीखे बाणों से शत्रुओं को पीड़ित कर रहे थे।

घुमंत घाइलो घनं ततच्छ बाणनो बरं।
भभज्ज कातरो कितं गजंत जोधनो जुधं॥
चलन्त तीछनो असं खिमंत धार उज्जलं।
पपात अंग्द केसरी हनूव सुग्रिवं बलं॥

कई वीर घाव खा-खाकर घूम रहे थे और कई तीरों द्वारा काटे जा रहे थे। कई कायर की तरह भाग रहे थे, परन्तु सच्चे योद्धा रण में गरज रहे थे। तेज तलवारें चल रही थीं और उनकी सफेद धारें चमक रही थीं। अंगद और हनुमान जैसे सिंह तथा सुग्रीव आदि महाबली भी गिर पड़े।

गिरन्त आसुरं रणं भभर्म आसुरी सिसं।
तजंत स्वामिनो धरं भजंत प्राण लै भटं॥
उठन्त अन्ध धुन्धनो कबंध बंधता कटं।
लगंत बाणनो वरं गिरंत भूम आइवं॥

दानवाधिपति रण में गिर रहे थे और दानव-पुत्र भागे फिरते थे। सभी वीर अपना स्वामि-धर्म छोड़-छोड़कर प्राण बचा-बचाकर भाग रहे थे। हाथ-पैर कटे हुए कबंध अन्धाधुन्ध भाग रहे थे और कई जीवित वीर बाण लगने से युद्ध-भूमि में गिर रहे थे।

पपात वृच्छनं धरं बवेग मारुतं जनं।
भरन्त धूर भूरनं वमन्त स्रोणतं मुखं॥
चिकार चाँवडी नभं ठिकन्त फिकरी फिरं।
भकार भूत प्रेतनं डकार डाकिनी डुलं॥

शूर-वीर योद्धा रण-भूमि में इस प्रकार गिर रहे थे, मानो वायु ने अपने वेग से पेड़ों को गिरा दिया हो। कई शूर-वीर धूल से भरे हुए थे और कई मुँह से रक्त वमन कर रहे थे। ऊपर आकाश में चूड़ैलें घूम रही थीं और धरती पर श्रृगालिकाएँ (गीदड़ियाँ) घूम रही थीं। भूत-प्रेत बोल रहे थे तथा डाकिनियाँ डकार रही थीं।

गिरै धरं धुरन्धरं धराधरं धरं जिवं।
भभज्जि श्रोणतो तनं उटन्त भैकरी धुनं॥
उठन्त गद्द सद्दनं ननद्द नाफिरं रणं।
ववर्ष सायकं सितं घुमन्त जोधनो व्रणं॥

बड़े-बड़े धुरन्धर योद्धा भी पृथ्वी पर इस तरह गिर रहे थे, मानो पर्वत धड़धड़ाकर गिर रहे हों। उन सबके शरीर रक्त से भरे हुए थे और उनकी चीख-पुकार से भयंकर कोलाहल हो रहा था। कहीं बड़ी-बड़ी नफीरियों के बजने की भयंकर आवाज आ रही थी, कहीं चमकीले तीर बरस रहे थे और कहीं योद्धा घाव खा-खाकर घूम रहे थे।

भजंत भैधरं भटं विलोक भर्तनो रणं।
चल्यो चिराइ कै चपी ववर्ष सायको सितं॥
सक्रुद्ध सायकं सिसं ववद्ध भालनो भटं।
पपात पृथ्वियं हठी ममोह आश्रमं गतं॥

कई शूर-वीर डरकर भाग रहे थे, और जाते हुए पीछे मुड़कर भरत की ओर देखते जाते थे। कई शूर-वीर क्रोध में भरकर आगे की ओर बढ़ते थे और तीखे बाणों की वर्षा करते थे। उधर वे बालक भी क्रोध में भरकर उनके माथे में तीर मारते थे। उनका तीर लगने से भरत-सा योद्धा भी तुरन्त युद्ध-भूमि में गिर पड़ा।

भभज्ज भीतनो भटं ततञ्ज भर्तनो भुअं।
गिरन्त लूथतं उठं सरोद राघवं तटं॥
जुझे सु भ्रात भर्तनो सुनन्त जानकीपतं।
पपात भूमिनो तलं अपीड़ पीड़तं दुखं॥

यह देखकर कि भरत जैसा योद्धा भी गिर पड़ा, सभी शूर-वीर उन्हें अकेला छोड़कर भाग निकले। उस युद्ध-भूमि में जो लाशें पड़ी थीं, उन्हें उठाने का ध्यान छोड़कर वे सभी वीर श्री राम के पास जाकर रोने लगे। जब सीतापति श्री राम ने भरत का यह हाल सुना, तब वह स्वयं भी दुःखी हो कर पृथ्वी पर गिर पड़े।

ससज्ज जोधनं जुधी सक्रुद्ध बद्धनो बरं।
ततज्ज जग्ग मण्डलं अदण्ड दण्डनो नरं॥

सुगज्ज बज्ज बाजनो उठन्त भैघरी सुरं ।
सनद्ध वद्ध कै दलं सबद्ध जोधनो वरं ॥

(कुछ समय बाद) श्री राम अनेक योद्धाओं को सज्जित करके क्रोध में भरकर और इस जगत की (जीने की) आशा छोड़कर, उन लोगों को, जिन्हें अब तक कोई दण्ड नहीं दे सका था, दण्ड देने के लिए बाजे बजाते हुए और उनसे भयंकर ध्वनि करते हुए, सेना तैयार करके लव कुश से लड़ने के लिए चले ।

चचक्क चाँवड़ी नभं फिरंत फिकरी धरं ।
भखन्त मास हारनं वमन्त ज्वाल दुर्गयं ।
पुअन्त पावती सिरं नचन्त ईसनो रणं ।
भकन्त भूत प्रेतनो वकन्त वीर वैतलं ॥

आकाश में चुड़ैलें और पृथ्वी पर गीदड़ियाँ चीखती हुई घूम रही थीं । मांसाहारी मांस खा रहे थे और दुर्गा साक्षात् रण-चण्डी बनकर मुँह से ज्वाला उगल रही थी । पार्वती अपने ईश महादेव जी के लिए रुण्ड-मुण्डों की माला पिरो रही थीं । स्वयं शिव रण में ताण्डव कर रहे थे । भूत-प्रेत बोल रहे थे और वैताल चिल्ला रहे थे ।

तिलका छन्द

जुट्टे वीरं । टुट्टे तीरं ॥
फुट्टे अंग । तुट्टे तंगं ॥

रण में जब वीर लड़ने लगे, तब तीर चलने लगे । लोगों के अंग फूट गये और घोड़ों के साज-सामान टूट गये ।

भग्गे वीरं । लग्गे तीरं ॥
पिख्खे रामं । धर्मं धामं ॥

तीर लगने से जब शूर-वीर भागने लगे, तब धर्म-धाम श्री राम चकित होकर उन्हें देखने लगे ।

जुज्झे जोधं । मच्चे क्रोधं ॥
बन्धो बालं । वीर उतालं ॥

क्रोध में भरकर लड़ते हुए योद्धाओं से श्री राम ने कहा—वीरो ! इन बालकों को जल्दी ही पकड़ लो ।

ढुक्के ढेर । लीने घेर ॥
वीरैं बाल । ज्यूँ ह्वै काल ॥

तब उन्होंने उन शूर-वीरों को घेर लिया और उनके पास पहुँच गये । वे दोनों बालक उन शूर-वीरों को काल के समान प्रतीत हो रहे थे ।

तज्जो कान । मारे बाण ॥
डिग्गे वीर । भग्गे धीर ॥

वे दोनों बड़ों की मर्यादा का ध्यान छोड़कर बाण चला रहे थे । उनके बाण लगने से कई वीर मर जाते थे तो कई प्राण बचाकर भाग जाते थे ।

कट्टे अंग । डिग्गे जंग ॥
सुद्धं सूर । भिन्ने नूर ॥

अंग कटने से कई वीर रण में गिर पड़े और कइयों के शरीर और मुँह रक्त से भर गये ।

लक्खै नाहिं । भग्गे जाहिं ॥
तज्जे राम । धर्म धाम ॥

कई इतना डरे कि पीछे देखने का साहस भी नहीं करते थे और श्री राम को छोड़कर भागे जा रहे थे ।

औरे भेष । खुल्ले केश ॥
शस्त्रं छोर । दै दै कोर ॥

पहचाने जाने के भय से वे और ही प्रकार का वेश बनाकर अर्थात् शस्त्र छोड़कर, केश खोलकर और युद्ध की ओर पीठ करके भाग रहे थे ।

१५

दोहा

दुहूँ दिसन जोधा हरै, पर्यो जुद्ध द्वै जाम।
जूझ सकल सेना गई, रहि गए एकल राम॥

दोनों ओर के अनेक योद्धा हार गये और यह सब केवल दो पहर में हो गया। श्री राम की प्रायः सारी सेना समाप्त हो गई, अकेले राम बच रहे।

तिहूँ भ्रात बिनु भै हन्यो, अरु सब दलहि सँघार।
लव अरु कुश जूझन निमित, लीने राम हँकार॥

जिन्होंने निर्भय होकर तीनो भाइयों (लक्ष्मण, भरत और शत्रुघ्न) को तथा सारी सेना को मार गिराया था, अब उन्होंने श्री राम को भी युद्ध करने के लिए ललकारा।

सेना सकल जुझाइ कै, कत बैठे छप जाय।
अब हम सों तुमहूँ लरो, सुनि सुनि कोशलराय॥

हे राम! सारी सेना को मरवाकर तुम आप कहाँ छिपे बैठे हो? सामने आओ और हमसे स्वयं युद्ध करो।

निरख बाल निज रूप प्रभु, कहे बैन मुसकाय।
कवन तात बालक तुमै, कवन तिहारी माय॥

तब श्री राम ने उन बालकों को अपने सामने पाकर हँसते हुए पूछा—अरे बालको, तुम्हारे पिता कौन हैं और तुम्हारी माता कौन है?

अकरा छन्द

मिथिला पुर राजा। जनक सुभाजा॥
तिह सिस सीता। अति शुभ गीता॥

बालकों ने कहा—हे राम! मिथिला पुरी के राजा जनक की कन्या अत्यन्त पवित्र सीता है।

सो बनि आए। तिह हम जाए ॥
द्वै दुई भाई। सुनु रघुराई ॥

वह सीता जब वन में यहाँ आई, तब उसी से हम उत्पन्न हुए। हम दोनों भाई हैं।

सुनि सिय रानी। रघुबर जानी ॥
चित पहचानी। मुख न बखानी ॥

श्री राम यह सुनकर और उन्हें सीता के पुत्र जानकर और अपने पुत्र समझकर बहुत प्रसन्न हुए, परन्तु मुँह से कुछ न बोले।

तिह सिस मान्यो। अति बल जान्यो ॥
हठि रण कीनो। कहि नहिं दीनो ॥

उन्हें अपना पुत्र जानकर भी तथा उन्हें अत्यन्त बलशाली समझते हुए भी उन्होंने हठपूर्वक युद्ध आरम्भ कर दिया और मुँह से कुछ नहीं कहा।

कसि सर मारे। सिस नहिं हारे ॥
बहु विध बाणं। अति धनु तानं ॥

श्री राम ने कस-कसकर बाण चलाये, परन्तु वे बालक फिर भी नहीं हारे। वे धनुष खींचकर अनेक प्रकार से बाण चलाने लगे।

अँग अँग वेधे। सब तन छेदे ॥
सब दल सूझे। रघुवर जूझे ॥

उधर लव तथा कुश ने श्री राम का अंग-अंग बेध डाला और इस तरह सारा शरीर छेद डाला। थोड़ी ही देर में सारी सेना को यह पता लग गया कि श्री राम भी समाप्त हुए।

जब प्रभु मारे। सब दल हारे ॥
बहु विधि भागे। द्वै सिस आगे ॥

जब श्री राम समाप्त हुए, तब सारी सेना हारी और उन दोनों बालकों के आगे से भाग निकली।

फिर न निहारैं। प्रभु न चितारैं॥
गृह दिस लीना। असरण कीना॥

सेना के वीरों ने पीछे फिरकर झाँकने का भी साहस नहीं किया, अपने प्रभु राम को भी न देखा और अपने प्राणों की रक्षा के लिए वे घर की ओर भागे। सचमुच बालकों का युद्ध था ही इस तरह का।

चौपाई

तब दुहुँ बाल अयोधन देखा।
मनहुँ रुद्र क्रीड़ा बन पेखा॥
काट धुजन के वृच्छ सवारे।
भूषण अंग अनूप उतारे॥

तब उन दोनों बालकों ने भी उस युद्ध-स्थल को रुद्र के क्रीड़ा-स्थल की तरह देखा अर्थात् गर्व से दृष्टिपात किया। जिस प्रकार वन में वृक्ष होते हैं, उसी प्रकार कटी हुई ध्वजाएँ वृक्षों के रूप में खड़ी थीं। उन्होंने सबके आभूषण उतार लिये।

मूर्छे भए सब लिए उठाई।
बाजि सहित तहँ गे जहँ माई॥
देखि सिया पति-मुख रो दीना।
कह्यो पूत विधवा मुहिं कीना॥

सभी संज्ञाहीन शूर-वीरों को उठवाकर और घोड़े को साथ लेकर दोनों भाई वहाँ पहुँचे, जहाँ उनकी माता सीता जी थीं। जब सीता ने अपने पति श्री राम का मुख देखा, तब वह रो पड़ीं और शोक में भरकर अपने पुत्रों से बोलीं—अरे! तुमने तो मुझे विधवा कर दिया!

इति विचित्र नाटके लव बाजि बाँधनो अध्यायः

अथ सीतां ने सब जिवाये कथनम्

चौपाई

अब मो कउँ कासठ दे आना।
जरउँ लागि पति होउँ मसाना॥
सुनि मुनिराज बहुत विधि रोए।
इन बालन हमरे सुख खोए॥

सीता ने कहा—अरे बेटा ! अब मुझे भी लकड़ियाँ ला दो। मैं भी पति के साथ ही जलकर मरूँगी। उधर वाल्मीकि भी यह सुनकर विलाप करने लगे और बोले—हाय, इन बालकों ने हमारा सभी सुख नष्ट कर डाला।

जब सीता तन चहा कि काढूँ।
जोग अगिनि उपराज सु छाँडूँ॥
तब इमि भई गगन तें बाणी।
कहा भई सीता तैं अयानी॥

इधर जब सीता ने अपने शरीर से योगाग्नि प्रकट करके अपने आपको भस्म करना चाहा, तब आकाशवाणी हुई—हे सीते ! क्या तू बालक हो गई है ? (अर्थात् बालकों की सी चेष्टाएँ क्यों करती है ?)

अरूपा छन्द

सुनी बाणी। सिया रानी।
लया आनी। करै पानी॥

जब सीता ने यह वाणी सुनी, तब उसने जल मँगवाकर हाथ में लिया।

सीता उवाच मन में

दोहा

जो मन बच करमन सहित, राम बिना नहिं और ।
तउ ए राम सहित जिएँ, कह्यो सिया तिह ठौर ॥

हाथ में जल लेकर सीता ने कहा—हे ईश्वर, यदि मैंने मन, वाणी और कर्म से श्री राम के सिवा किसी और का ध्यान न किया हो, तो श्री राम के साथ सभी शूर-वीर जीवित हो जायँ।

अरूपा छन्द

सबै जागे । भ्रमं भागे ॥
हठं त्यागे । पगं लागे ॥

बस तुरन्त सभी लोग जीवित हो गये, सब का भ्रम दूर हो गया। हठ छोड़कर सभी (श्री राम के) पैरों पर गिर पड़े।

सिया आनी । जगं रानी ॥
धर्म धानी । सती मानी ॥

श्री राम ने भी सीता को बुलाया और उसे जगद्वंदनीया, धर्मस्थाना तथा सती समझा।

मनं भाई । उरं लाई ॥
सती जानी । मनं मानी ॥

श्री राम ने मन-भावनी पत्नी-रूपा सीता को हृदय से लगाया और उसे सच्ची सती समझकर मन में उसका बहुत आदर किया।

दोहा

बहु विधि सियहिं सँबोध कर, चले अजुध्या देश ।
लव कुश दोउ पुत्रन सहित, श्री रघुवीर नरेश ॥

तब श्री राम ने सीता को अनेक प्रकार से ढारस दिया और समझा-बुझा-कर तथा अपने दोनों पुत्रों को साथ लेकर अयोध्या की ओर प्रस्थान किया।

चौपाई

बहुत भाँति कर सिसन सँबोधा।
सिय रघुवीर चले पुर औधा॥
अनिक वेष से शस्त्र सुहाए।
जानहु तीन राम बनि आए॥

श्री राम ने अपने पुत्रों को भी अनेक तरह से धीरज दिया और वे सीता सहित अयोध्या की ओर चले। तीनों (राम, लव तथा कुश) अनेक प्रकार के अस्त्र-शस्त्र धारण किये हुए थे। वे ऐसे प्रतीत हो रहे थे मानो तीन राम हों।

इति सेना सहित तीन भ्राता जीवनाध्यायः

सीता और दुहुँ पुत्रन सहित अवध-प्रवेश कथनम्

चौपाई

तिहूँ मात कंठन सों लाए। दोऊ पुत्र पायन लपटाए॥
बहुरि आन सीता पग परी। मिट गई तहँ दुःखन की घरी॥

तीनों माताओं (कौशल्या, सुमित्रा और कैकेयी) ने अपने पोतों को गले लगाया और वे दोनों उनके चरणों से लिपट गये। फिर सीता भी अपनी सासों के चरणों में पड़ीं, बस उसी समय दुःख की घड़ी समाप्त हो गई।

बाजि-मेध पूरन किय जग्गा। कोशलेश रघुवीर अभग्गा॥
गृह सपूत दो पूत सुहाए। देश विदेश जीत गृह आए॥

फिर अश्वमेध यज्ञ पूर्ण किया गया, क्योंकि श्री राम अजेय हो चुके थे और उनके दोनों पुत्र देश-देशान्तरों को विजय करके घर आ गये थे।

जेतक कहे सु जग्ग विधाना। विधि पूरब कीने ते नाना॥
एक घाट सत कीने जग्गा। चट पट चक्र इन्द्र उठ भग्गा॥

संसार में जितने यज्ञों का प्रचलन है, और शास्त्र में जितने यज्ञों का विधान है, वे सभी विधिपूर्वक पूरे किये गये। इस प्रकार जब कुल सौ यज्ञ पूरे हुए, तब इन्द्र को चिन्ता हुई और वह भी अपना इन्द्रासन छोड़कर भाग खड़ा हुआ।

राजसूय कीन्हें दस बारा।
बाजि-मेध इक्कीस प्रकारा॥
गवालम्भ अजमेध अनेका।
भूम मद्ध कर्म किए अनेका॥

दस बार तो राजसूय यज्ञ किये और अश्वमेध यज्ञ इक्कीस तरह के

किये। गवालम्भ, अजमेध आदि अनेक तरह के यज्ञ पूर्ण किये और इस प्रकार अनेक (शुभ) कर्म किये।

नाग मेध षट जग्म कराए।
जौन करे जनमेजय पाए॥
औरे गनत कहाँ लगि जाऊँ।
ग्रन्थ वढ़न तें हिए डराऊँ॥

नागमेध यज्ञ छः बार किये जो उनके बाद जन्मेजय ही कर सके। और यज्ञों की तो गणना ही क्या करूँ, क्योंकि (कवि कहते हैं) मुझे इस ग्रन्थ के बढ़ने का डर है।

दस सहस्र दस वर्ष प्रमाना।
राज करा पुर अउध निधाना॥
तब लौं काल दशा नियराई।
रघुवर सिर मृत डंक बजाई॥

दस हजार वर्षों तक श्री राम ने अयोध्या का राज्य किया। इसके बाद उनका अन्त समय निकट आ गया और मृत्यु ने उनके सिर पर डंका बजाया।

नमस्कार तिह विविध प्रकारा।
जिन जग जीत कियो बश सारा॥
समनहि सीस डंक तिह बाजा।
जीत न सका रंक अरु राजा॥

उस काल रूप मृत्यु को बार-बार नमस्कार है, जिसने इस सारे ब्रह्मांड को जीतकर अपने वश में कर रखा है। सभी के सिर पर उसका डंका बज रहा है, परन्तु उसे आज तक कोई राजा या रंक जीत नहीं सका।

दोहा

जे तिनकी सरनी परे, कर दै लए बचाय।
यों नहिं कोऊ बाँचिया, किसन बिसन रघुराय॥

जो उस काल की शरण में पड़े हैं, उन्हें वह हाथ देकर (सहारा देकर) बचा भी लेता है। परन्तु और किसी तरह कोई नहीं बच सकता। उस काल से कृष्ण, विष्णु, रामचन्द्र आदि भी नहीं बचे।

चौपाई

बहु विधि करो राज को साजा।
देश देश के जीते राजा॥
साम दाम अरु दण्ड सभेदा॥
जिह विधि हुती सासना वेदा॥

राम ने बहुत प्रकार से राज-साज किये और देश-देशान्तरों के राजाओं को जीता। जिस प्रकार शासन-विधान की विधियाँ हैं, उसी प्रकार उन्होंने साम, दाम, भेद और दण्ड के द्वारा पूरी तरह से राज्य भोगा।

बरन बरन अपनी कृत लाए।
चार चार ही बरन चलाए॥
छत्री करैं विप्र की सेवा।
वैस लखैं छत्री कहँ देवा॥

चार वर्णों को अपने अपने काम में लगाया और चारों वर्णों के चार प्रकार के कार्य चलाये। क्षत्री ब्राह्मणों की सेवा करते थे और वैश्य क्षत्रियों को अपना देव (पूज्य) समझते थे।

सूद्र सबन की सेव कमावैं।
जहँ कोउ कहै तहीं वहि जावैं॥
जे सक हुती वेद की ससना।
निकसा तैस राम की रसना॥

शूद्र वर्ण के लोग सभी की सेवा में लगा दिये गये। उन्हें जहाँ कोई ब्राह्मण या क्षत्री बैठने के लिए कहता था, वहीं वह बैठते थे। जो कुछ वेद ने विधान किया है, वही श्री राम की जिह्वा से निकलता था।

रावणादि रण हाँक सँघारे।
भाँत भाँत सेवक गण तारे॥
लंका दई टंक जनु दीनो।
इह विधि राज जगत मों कीनो॥

उन्होंने रावण आदि अत्याचारियों को ललकारकर मारा और अपने सेवक विभीषण आदि को हर प्रकार से पार किया और उसे लंका का राज्य इस प्रकार दे दिया, जैसे कोई टका दे दिया जाता है। इस प्रकार श्री राम ने जगत में राज्य किया।

दोहा

बहु वर्षन लौं राम जी, राज करा अरि टाल।
ब्रह्म रंध्र कँठ फोर कै, भयो कौशल्या काल॥

श्री राम ने बहुत वर्षों तक राज्य किया और शत्रुओं का नाश किया। बहुत दिनों बाद ब्रह्म-रन्ध्र (कपाल) को फोड़कर कौशल्या के प्राण ज्योति में समा गये अर्थात् उनकी मृत्यु हो गई।

चौपाई

जैस मृतक के हुते प्रकारा।
तैसेइ करे वेद अनुसारा॥
राम सपूत जाहि घर माहीं।
ता कहुँ तोट कोऊ कहूँ नाहीं॥

जिस तरह मृत व्यक्ति के संस्कार होने चाहिएँ, उसी तरह श्री राम ने वेद की विधि के अनुसार अपनी माता के संस्कार किये। सचमुच जिस घर में श्री राम जैसा सुपुत्र होता है, उस घर में किसी तरह की कमी नहीं रहती।

बहु विधि गति कीनी प्रभु माता।
तब लौं भई केकई शांता॥

ताके मरत सुमित्रा मरी ।
देखहु काल क्रिया कस करी ॥

श्री राम ने हर तरह से माता कौशल्या की गति की। फिर कुछ दिनों के बाद कैकेयी और सुमित्रा भी परम धाम को सिधारीं। यह सब काल का ही खेल था।

एक दिवस जानकि त्रिय सिखा।
भीत भये रावण कँह लिखा॥
जब रघुवर तिह आन निहारा।
कछुक कोप इमि बचन उचारा॥

एक दिन सीता ने स्त्रियों के पूछने पर एक दीवार पर रावण का चित्र बना दिया। जब श्री राम ने आकर देखा, तब मन में कहा—

राम उवाच मन में

याको कछु रावण सौं हेता।
तातें चित्त चित्र के देखा॥
बचन सुनत सीता भइ रोषा।
प्रभु मोहिं अजहुँ लगावत दोषा॥

श्री राम ने मन में विचार किया कि शायद सीता रावण से कुछ प्रेम करती है; इसी लिए उसका चित्र दीवार पर बनाकर इसने देखा है। सीता ने जब इस तरह विचार करते हुए श्री राम को देखा, तब उन्हें क्रोध आया और उन्होंने सोचा कि अभी तक श्री राम मुझे दोष लगा रहे हैं।

दोहा

जउ मेरे मन बच क्रमन, हृदय बसत रघुराय।
पृथवि पैंड मुहिं दीजिए, लीजै मोहिं मिलाय॥

सीता ने उनका सन्देह दूर करने के लिए पृथ्वी से प्रार्थना की—हे पृथ्वी, अगर मन, वाणी और कर्म द्वारा मैंने अपने हृदय में सदा श्री राम का ही चिन्तन किया हो, तो मुझे रास्ता दो और अपने शरीर में मिला लो।

चौपाई

सुनत वचन धरनी फट गई।
लोप सिया तिह भीतर भई॥
चकृत रहे निरखि रघुराई।
राज करन की आस चुकाई॥

सीता की पुकार सुनते ही पृथ्वी एक दम से फट गई और सीता उसी में समा गईं। वह दृश्य देखकर श्री राम चकित हो गये। बस तभी से उन्होंने राज्य करने की आशा छोड़ दी।

दोहा

इह जग धुँअरो धउलहरि, किह के आयो काम।
रघुवर बिन सिय ना जियैं, सिय बिन जियैं न राम॥

यह जगत एक धूएँ के महल की तरह है (अर्थात् जो देखते देखते बनता और बिगड़ जाता है) और किसी के काम नहीं आता। जब सीता श्री राम के बिना नहीं रह सकीं, तो राम भी सीता के बिना नहीं रह सकते।

चौपाई

द्वारे कह्यो बैठ लछमना।
पैठ न कोऊ पावै जना॥
अन्तहि पुरहि आप पग धारा।
देह छोर मृत लोक सिधारा॥

तब श्री राम ने लक्ष्मण से कहा—हे लक्ष्मण, तुम द्वार पर बैठो; किसी को अन्दर मत आने देना। लक्ष्मण को यह आज्ञा देकर श्री राम स्वयं अन्तःपुर में गये और योगाभ्यास द्वारा नश्वर शरीर छोड़कर परम धाम चले गये।

दोहा

इन्दुमती हित अज नृपति, जिमि गृह तज लिय जोग ।
तिमि रघुवर तन को तजा, श्रीजानकी वियोग ॥

जिस प्रकार राजा अज ने अपनी रानी इन्दुमती के लिए राज्य त्याग दिया था और घर छोड़कर योग लिया था*, उसी तरह श्री रामचन्द्र ने भी सीता के वियोग में अपना शरीर त्याग दिया ।

चौपाई

रौर परी सगरे पुर माहीं ।
काहू रही कछू सुधि नाहीं ॥
नर नारी डोलत दुखियारे ।
जानकु गिरे जूझि जुझियारे ॥

सारे शहर में शोर मच गया । किसी को किसी की सुध न रही । सभी नर नारी दुखिया बनकर इधर उधर घूमने लगे; मानो युद्ध में जूझनेवाले घूम रहे हों ।

सगर नगर महिं परि गई रौरा ।
व्याकुल गिरे हस्त अरु घोरा ॥
नर नारी मन रहत उदासा ।
कहा राम कर गए तमासा ॥

---

* रघुवंशी महाराज अज ने एक बार अपनी रानी इन्दुमती की परीक्षा लेने के लिए शिकार खेलते हुए किसी जीव के रक्त में अपना दुपट्टा भिगोकर सेवक के हाथ रानी के पास भेज दिया और कहलाया कि राजा को सिंह ने मार डाला । यह सुनकर रानी इन्दुमती ने वहीं प्राण त्याग दिये । जब राजा अज को यह मालूम हुआ, तो उन्होंने राज्य छोड़कर संन्यास ले लिया ।

सारे नगर में कोलाहल मच गया। यहाँ तक कि घोड़े-हाथी भी गिर पड़े। सब नर-नारियों के मन उदास हो गये और वे उसाँस लेकर कहने लगे—हाय, श्री राम यह क्या कर गये !

भरतौ जोग साधना साजी।
जोग अगन तन तैं उपराजी॥
ब्रह्म रन्ध्र झट दै करि फोरा।
प्रभु सौं चलत अंग नहिं मोरा॥

जब भरत ने श्रीराम का परम धाम-गमन सुना, तब उन्होंने भी योग-साधना की और अपने शरीर से योग की अग्नि उत्पन्न करके अपना ब्रह्म-रन्ध्र फोड़ लिया और इस प्रकार वह भी प्रभु के चलने के साथ ही चल दिये—उन्होंने भी अंग नहीं मोड़ा (पीछे नहीं रहे, पूरा साथ दिया)।

सकल जोग के किए विधाना।
लछमन तजे तैसही प्राणा॥
ब्रह्म रंध्र लवअरि फुन फूटा।
प्रभु चरणन तर प्राण निखूटा॥

इसके बाद लक्ष्मण ने भी योग का साधन किया और उसी प्रकार अपने प्राण विसर्जित किये। फिर (लवअरि) शत्रुघ्न ने भी अपना ब्रह्म-रन्ध्र फोड़कर अपने को परम धाम का अधिकारी बनाया और इस प्रकार वह भी प्रभु राम के चरणों में जा पहुँचे।

लव कुश दोउ तहाँ चल गए।
रघुबर सिअहिं जरावत भए॥
अरु पितु-भ्रात तिहूँ कहँ दहा।
राज-छत्र लव के सिर रहा॥

इसके बाद लव और कुश वहाँ आये जहाँ सीता, राम आदि पड़े थे।

इन्होंने उनका (माता-पिता का) दाह संस्कार किया और अपने चाचाओं का भी संस्कार किया। इसके बाद लव ने राज-छत्र धारण किया।

तिहुँवन की इस्त्री तहँ आईं।
संगि सती ह्वै सुरग सिधाईं॥
लव सिर धरा राज का साजा।
तिहुँअन तिहुँ कुँट (?) कीयन राजा॥

उस समय तीनों की नारियाँ (पत्नियाँ) भी वहीं आ गईं और अपने अपने पति के साथ सती होकर वे भी स्वर्ग में पहुँच गईं। राज्य यद्यपि लव ने सँभाल लिया था, परन्तु तीनों की सन्तानों ने राज्य चलाया।

उत्तर देश आप कुश लीआ।
भरत-पुत्र कहँ पूरब दीआ॥
दच्छिन दीअ लखन के बाला।
पच्छम शत्रुघ्न सुत बैठाला॥

कुश ने स्वयं उत्तर देश लिया और भरत के पुत्र को पूर्व दिशा का राज्य दे दिया। लक्ष्मण के पुत्र को दक्षिण का राज्य दिया गया और शत्रुघ्न के पुत्र को पश्चिम में बैठा दिया गया (इस प्रकार चारों दिशाओं में राम के वंशजों का राज्य हो गया)।

दोहा

राम-कथा जुग जुग अटल, सब कोइ भाखत नेत।
सुरग-वास रघुवर करा, सगरी पुरी समेत॥

कवि कहते हैं—श्री राम की कथा हर युग में अटल रहेगी। यह कथा सब लोग अनेक प्रकार से गाते हैं। अन्त में रघुवर ने सारी अयोध्या पुरी के साथ स्वर्गवास किया।

चौपाई

जो इह कथा सुनै अरु गावै। दुःख पाप तिह निकट न आवै॥
विष्णु भक्ति कीए फल होई। आधि व्याधि छ्वै सकै न कोई॥

जो यह राम-कथा सुनता है और इसका गायन करता है, दुःख पाप आदि उसके पास भी नहीं आते। विष्णु-भक्ति का फल भी उसे प्राप्त होता है और आधि-व्याधि उसे छू भी नहीं सकती।

संमत सत्रह सहस पचावन। हाड़ वदी प्रथमा सुख-दावन॥
तव प्रसाद करि ग्रन्थ सुधारा। भूल परी लहु लेहु सुधारा॥

विक्रम संवत १७५५ आषाढ़ कृष्ण प्रतिपदा को, हे भगवान्, तेरी प्रसन्नता से यह ग्रन्थ पूर्ण किया है। यदि कोई भूल हो गई हो तो उसे सुधार लेना।

दोहा

नेत्र तुंग के चरण तर शतद्रव तीर तरंग।
श्री भगवत पूरन कियो रघुवर-कथा प्रसंग॥

नयना देवी के पहाड़ के नीचे सतलज के किनारे (आनन्दपुर साहब में) भगवत या भगवान् की कृपा से रघुवीर की कथा का प्रसंग लेकर पूर्ण किया।

साध असाध जानों नहीं वाद सुवाद विवाद॥
ग्रन्थ सकल पूरन कियो भगवत-कृपा प्रसाद॥

अक्षरों की रचना साधु (अच्छी) है या असाधु (बुरी) और उसके गुण-अवगुण क्या हैं, यह मैं नहीं जानता। हाँ इतना अवश्य है कि ईश्वर की कृपा से ही यह ग्रन्थ पूर्ण कर सका हूँ।

सवैया

पाँय गहे जबते तुमरे तबते कोउ आँख तरे नहिं आन्यो।
राम रहीम पुरान कुरान अनेक कहैं मत एक न मान्यो॥

सिम्रति शास्तर वेद सबै बहु भेद कहैं हम एक न जान्यो।
श्रीअसपान कृपा तुमरी करि मैं न कह्यो सब तोहिं बख्यान्यो॥

हे असि-पाणि या खड्गधारी ईश्वर (वीर रूप) ! जब से तुम्हारे चरणों का आश्रय लिया, तब से किसी को मैं आँखों के नीचे नहीं लाया (अर्थात् कुछ नहीं गिना)। राम, रहीम, पुरान और कुरान आदि माननेवाले अनेक मत हैं, परन्तु मैंने एक भी नहीं माना। स्मृति, शास्त्र और वेद आदि तेरे अनेक भेद बतलाते हैं, पर मैंने एक नहीं जाना; अर्थात् कुछ नहीं गिना। यह सब तेरी ही कृपा से पूर्ण हुआ है। मैंने इसमें कुछ नहीं कहा, यह तो सब तुम्हीं ने स्वयं बखान किया है।

दोहा

सकल द्वार कौ छाँड़ि के गह्यो तुम्हारो द्वार।
बाँह गहे की लाज अस गोविंद दास तुम्हार॥

सभी द्वार छोड़कर केवल तुम्हारे द्वार का आश्रय लिया है। हे ईश्वर ! बाँह पकड़े की लाज तुम्हारे हाथ है। यह गोविन्द (श्री गुरुगोविन्द सिंह) तुम्हारा दास है।

॥ इति गोविन्द रामायणम् ॥

प्रामाणिक हिन्दी कोश

सम्पादक

श्री रामचन्द्र वर्म्मा

(हिन्दी भाषा का वस्तुतः प्रामाणिक और सर्व-श्रेष्ठ शब्द-कोश)

इस कोश में आपको हजारों ऐसे नये शब्द, हजारों ऐसी नयी व्याख्याएँ और हजारों ऐसे नये अर्थ मिलेंगे जो हिन्दी के किसी और कोश में नहीं आये हैं। हिन्दी के अन्यान्य कोशों में बीसियों प्रकार की जो हजारों भूलें भरी पड़ी हैं, उन सबका इसमें बहुत अधिक विचार और परिश्रम-पूर्वक सुधार किया गया है। यह कोश सभी दृष्टियों से सचमुच प्रामाणिक है। विद्यार्थियों, अध्यापकों, लेखकों, सम्पादकों और राजकीय, न्याय तथा शासन-विभाग के अधिकारियों और कार्यकर्ताओं के काम के सभी आवश्यक शब्द अपने मानक रूप में ठीक-ठीक अर्थ सहित इसमें दिये गये हैं। इधर हाल में राजकीय व्यवहार के लिए जो हजारों नये शब्द बने हैं, वे सब भी उपयुक्त व्याख्या और अर्थ सहित इसमें आ गये हैं। अन्त में प्रायः पाँच हजार शब्दों की अंग्रेजी-हिन्दी शब्दावली भी है, जिससे मुख्य-मुख्य अंग्रेजी शब्दों के हिन्दी पर्याय जाने जा सकते हैं। अजमेर, आसाम, बिहार, मदरास आदि के शिक्षा विभागों द्वारा परम प्रशंसित और स्कूल-कालेजों के लिए स्वीकृत। दूसरा संशोधित और परिवर्द्धित संस्करण। पक्की सुन्दर जिल्द बँधी हुई; पृष्ठ-संख्या १६०० से ऊपर; मूल्य १२॥) वी० पी० खर्च २॥)। वी० पी० से स्तक मँगाते समय कम से कम २) दो रुपये पेशगी भेजना परम आवश्यक है। विवरण पत्र और नमूना मुफ्त मँगावें।

साहित्य-रत्न-माला कार्यालय,

२० धर्म्म कूप, बनारस।

अच्छी हिन्दी

लेखक—श्री रामचन्द्र वर्म्मा

क्या आप जानते हैं कि आप जो हिन्दी बोलते या लिखते हैं, उसमें कहाँ-कहाँ और कितने प्रकार की अशुद्धियाँ होती हैं ? क्या आपको मालूम है कि समाचार-पत्रों और पुस्तकों में आप जो हिन्दी पढ़ते हैं, वह कितनी अशुद्ध और बे-मुहावरे होती है ? क्या आप जानते हैं कि कोई शब्द जरा-सा आगे-पीछे हो जाने से या एकाध मात्रा हट-बढ़ जाने से ही वाक्यों के अर्थ और भाव में कितना अन्तर पड़ जाता है ? क्या आप जानते हैं कि आपकी भाषा में से हिन्दीपन किस प्रकार निकलता जा रहा है और उसमें अँगरेजियत कितनी बढ़ती जा रही है ? यदि नहीं, तो इन बातों का पूरा ज्ञान प्राप्त करने के लिए "अच्छी हिन्दी" पढ़िए।

लेखकों और कवियों के लिए, सम्पादकों और संवाददाताओं के लिए, अध्यापकों और विद्यार्थियों के लिए, व्याख्यानदाताओं और जन-सेवकों के लिए व्यापारियों और कर्मचारियों के लिए, न्यायालयों के अधिकारियों और वकीलों के लिए 'अच्छी हिन्दी' पढ़ना आवश्यक ही नहीं, बल्कि अनिवार्य भी है। 'अच्छी हिन्दी' का अध्ययन सभी तरह के लोगों के लिए इतना अधिक लाभदायक है कि शब्दों में उसका वर्णन नहीं हो सकता।

सभी समाचार-पत्रों और मासिक-पत्रों ने, हिन्दी के छोटे और बड़े सभी विद्वानों ने और शिक्षा-विभाग के अनेक बड़े-बड़े अधिकारियों ने मुक्त-कंठ से 'अच्छी हिन्दी' की प्रशंसा की है, और एक स्वर से कहा है कि सभी हिन्दी पढ़ने-लिखनेवालों को "अच्छी हिन्दी" का अध्ययन अवश्य करना चाहिए।

सातवाँ संशोधित और परिवर्द्धित संस्करण; पृष्ठ संख्या २८२, दाम ३)

साहित्य-रत्न-माला कार्यालय,

२० धर्म्म कूप, बनारस।

कबीर साहित्य का अध्ययन

लेखक—श्री पुरुषोत्तमलाल श्रीवास्तव, एम० ए०

यों तो अब तक महात्मा कबीरदास जी और उनके साहित्य से सम्बन्ध रखनेवाली कई पुस्तकें हिन्दी में निकल चुकी हैं, पर यह पुस्तक कई दृष्टियों से सर्व-श्रेष्ठ और उन सबसे कहीं आगे बढ़ी-चढ़ी है, और इसी लिए उत्तर प्रदेश की सरकार ने इस पर लेखक को ८००) का पुरस्कार प्रदान किया है। इसमें बिल्कुल नये ढंग से और नये दृष्टि-कोण से संत कबीर के सब ग्रन्थों और कबीर-सम्बन्धी हिन्दी, उर्दू, संस्कृत, अंग्रेजी के सैकड़ों ग्रन्थों के विशाल साहित्य का बहुत ही सूक्ष्म दृष्टि से पूरा-पूरा अनुशीलन करके उनकी बहुत मार्मिक आलोचना की है; और कबीर तथा उनके साहित्य के मर्म तक पहुँचने का बहुत ही अभूतपूर्व और सफल प्रयत्न किया है। पृष्ठ-संख्या ४००; मूल्य ४॥)

'प्रसाद' का विकासात्मक अध्ययन

लेखक—श्री किशोरीलाल गुप्त, एम० ए०

यही एक ऐसी पुस्तक है जिसमें 'प्रसाद' की आदि से अन्त तक की गद्य और पद्य सभी प्रकार की कृतियों और रचनाओं का ऐसा विशद और सफल विवेचन हुआ है, जो ऐतिहासिक दृष्टि से बहुत अधिक महत्त्व का है। इसमें 'प्रसाद' की अनेक ऐसी कृतियों की चर्चा मिलेगी, जो उनके किसी आलोचनात्मक ग्रन्थ में नहीं आई है। इसे पढ़कर आप अच्छी तरह समझ सकेंगे कि 'प्रसाद' की प्रतिभा और विचार-धारा किन-किन बातों से किस प्रकार प्रभावित होकर किस क्रम से विकसित हुई और उनकी कला किस क्रम से निखरती हुई उत्कर्ष की चरम सीमा तक पहुँची थी। 'प्रसाद' के समस्त साहित्य का क्रमिक विकास समझने और उनकी आत्मा तक पहुँचने में इस ग्रन्थ से आपको जितनी अधिक सहायता मिलेगी, उतनी अन्यत्र मिलना सम्भव नहीं। पृष्ठ-संख्या २७०; सुन्दर जिल्द, मूल्य ३॥)

साहित्य-रत्न-माला कार्यालय,

२० धर्म्म कूप, बनारस।

रूपक-विकास

लेखक—श्री वेदमित्र 'व्रती' साहित्यालंकार

इस पुस्तक में नाट्य-शास्त्र सम्बन्धी जानने योग्य सभी मुख्य-मुख्य बातें के विस्तृत विवेचन, हिन्दी के सभी प्रकार के नाटकों का आलोचनात्मक विवेचन और नाटककारों का संक्षिप्त परिचय, बंगला, मराठी, गुजराती आदि के प्रमुख नाटकों और नाटककारों का संक्षिप्त परिचय दिया गया है। दाम २॥

हास्य रस

लेखक—रामचन्द्र वर्म्मा

इसमें सुभाषित और विनोद अथवा हास्य रस का तात्त्विक, दार्शनिक तथा शास्त्रीय सभी दृष्टियों से बहुत ही पांडित्यपूर्ण और विशद विवेचन हुआ है और यह बतलाया गया है कि विनोद या परिहास की उत्पत्ति कैसे होती है उसका व्यवहारिक उपयोग क्या और कैसा होना चाहिए और भारतीय तथा पाश्चात्य साहित्य-शास्त्रों के विचार से भी और इन्द्रिय विज्ञान के विचार से भी उसका वास्तविक स्वरूप क्या है। स्थान-स्थान पर हिन्दी साहित्य शास्त्र के ग्रंथों से बहुत से उदाहरण तथा उपयोगी पाद-टिप्पणियाँ देकर पुस्तक को और भी अधिक उपयोगी बना दिया है। हिंदी में हास्य रस के विस्तृत शास्त्रीय विवेचन की यह एक ही पुस्तक है। दूसरा संस्करण। दाम १॥)

हिन्दी भाषा का विकास

लेखक—स्व० डा० श्यामसुन्दरदास, बी० ए०

इसमें यह बतलाया गया है कि आरम्भ से अब तक हमारी हिन्दी भाषा संस्कृत, प्राकृत, पाली, अपभ्रंश आदि के द्वारा होती हुई कैसे अपने वर्तमान रूप तक पहुँची है। इसमें पुरानी हिन्दी का स्वरूप और पश्चिमी हिन्दी, पूर्वी हिन्दी, राजस्थानी, अवधी, व्रज भाषा और खड़ी बोली आदि भेद और विशेषताएँ बतलाई गई हैं। पृष्ठ-संख्या ११७, दाम १)

हिन्दी प्रयोग

लेखक—श्री रामचन्द्र वर्म्मा

'अच्छी हिन्दी' तो महाविद्यालयों या कालेजों के आरम्भिक वर्गों के विद्यार्थियों के लिए है; पर यह पुस्तक विशेष रूप से हाई स्कूलों के नवें-दसवें और हिन्दी स्कूलों के आठवें वर्ग के अथवा इनसे मिलते-जुलते अन्य वर्गों के विद्यार्थियों के उपयोग के लिए लिखी गई है। जो विद्यार्थी हिन्दी भाषा और व्याकरण की मुख्य-मुख्य बातें और हिन्दी के शुद्ध प्रयोग बहुत सहज में सीखना चाहते हों, उनके लिए यह पुस्तक एक अमूल्य रत्न है। इसे उत्तर प्रदेश, विहार, राजपूताने तथा मध्य-भारत की हाई स्कूल परीक्षाओं, पूर्वी पंजाब की हिन्दी भूषण, प्रयाग महिला विद्यापीठ की विद्या-विनोदिनी तथा हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग की प्रथमा परीक्षा के पाठ्य-क्रम में स्थान मिल चुका है। पाँचवाँ संस्करण, पृष्ठ १८२, दाम १)

रूपक-रत्नावली

लेखक—श्री रामचन्द्र वर्म्मा

इसमें आपको स्वप्न-वासवदत्ता, मालविकाग्निमित्र, विक्रमोर्वशी, शकुन्तला, प्रियदर्शिका, नागानन्द, रत्नावली, मालती-माधव, उत्तर-रामचरित, मुद्रा राक्षस, कर्पूर-मंजरी और चण्ड-कौशिक संस्कृत के परम उत्कृष्ट और जगत्-प्रसिद्ध बारह नाटकों की सभी अच्छी और जानने योग्य बातें बहुत ही सुन्दर और मनोहर कहानियों के रूप में मिलेंगी। इसके सिवा इस पुस्तक में आपको ऊँचे दरजे की, परम विशुद्ध और आदर्श हिन्दी का जो नमूना मिलेगा, उससे आपको शुद्ध, सुन्दर और अच्छी हिन्दी लिखने में भी बहुत सहायता मिलेगी। पृष्ठ-संख्या ४३२, दाम ३॥)

कोश-कला

लेखक—श्री रामचन्द्र वर्म्मा

हिन्दी शब्द-कोश-रचना की कार्य-प्रणाली, नियमों और सिद्धान्तों से सम्बन्ध रखनेवाली यह पुस्तक साहित्य जगत में अनुपम और अद्वितीय है। भाषा-शास्त्र के अनेक गूढ़ तथ्यों का यह सुन्दर विवेचन लेखक की ५० वर्षों की हिन्दी-सेवा का स्वादिष्ट फल है। हिन्दी भाषा के स्वरूप, प्रवृत्तियों तथा अन्य अनेक ऐसे गूढ़ तत्वों से सम्बन्ध रखनेवाली तथा जानने योग्य बहुमूल्य बातें इसमें हैं, जिनका विवेचन आज तक कहीं नहीं हुआ। ग्रन्थ क्या है, एक अद्भुत ज्ञान का भंडार है, जो आपको मुग्ध कर देगा। मूल्य १॥

हिन्दी काव्य दर्शन

(दो भाग)

लेखक—श्री हीरालाल तिवारी

इस पुस्तक के पहले भाग में आपको भक्ति काल और रीति काल तथा दूसरे भाग में आधुनिक काल के श्रेष्ठतम कवियों की कृतियों का तो आलोचनात्मक परिचय मिलेगा ही; इन तीनों कालों की प्रवृत्तियों तथा विशेषताओं का भी बहुत ही गम्भीर तथा सूक्ष्म दृष्टि से अंकित किया हुआ चित्र भी मिलेगा। विद्यापति, कबीर, जायसी, सूर, तुलसी, मीराँ, केशव, बिहारी, भूषण, देव, घनानन्द, भारतेन्दु, रत्नाकर, हरिऔध, मैथिलीशरण गुप्त, प्रसाद, निराला, पन्त, महादेवी वर्म्मा, दिनकर इन बीस स्वनाम-धन्य कवियों की समस्त कृतियों की जैसी अनोखी और विलक्षण आलोचना इसमें मिलेगी, जैसी अब तक कहीं नहीं हुई है। अनेक कवियों के सम्बन्ध में अब तक जो धारणाएँ बन चुकी हैं, उनमें से अनेक धारणाओं पर इसमें बिलकुल नये दृष्टि-कोण से प्रकाश डाला गया है। प्रत्येक आलोच्य कवि की आत्मा तक पहुँचने और उसका विशुद्ध स्वरूप जानने के लिए इससे बढ़कर सहायक ग्रन्थ आपको और कहीं न मिलेगा। इसका एकाध पृष्ठ पढ़ते ही आप स्वयं समझ लेंगे कि यह एक होनहार प्रतिभाशाली लेखक की बिलकुल नई और अनोखी सूझ का शुभ फल है जो काव्यों के आलोचनात्मक अध्ययन की एक बिलकुल नई दिशा की ओर संकेत करता है। पुस्तक क्या है, समस्त हिन्दी काव्य-धारा को मथकर निकाला हुआ अद्भुत नवनीत है। सुन्दर कागज पर बढ़िया छपाई; पक्की जिल्द। मूल्य प्रत्येक भाग का ३)

साहित्य-रत्न-माला कार्यालय,
२० धर्म्म कूप बनारस

लागी

पिति के सोधि फ.ंज